स्वर्गवासी साधुचरित श्रीमान् डालचन्दजी सिंघी



जन्म	स्वर्गवास
वि. सं. १९२१, मार्ग वदि ६	वि. सं. १९८४, पोष सुदि ६

सिंघी जैन ग्रन्थमाला

तृतीय (३) मणि



श्रीमेरुतुङ्गाचार्यरचित

प्रबन्धचिन्तामणि

[हिन्दी भाषान्तर]

सिंघी जैन ग्रन्थमाला

जैन आगमिक, दार्शनिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, कथात्मक–इत्यादि विविधविषयगुम्फित
प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राचीनगूर्जर, राजस्थानी आदि नाना भाषानिबद्ध
बहु उपयुक्त पुरातनवाङ्मय तथा नवीन संशोधनात्मक
साहित्यप्रकाशिनी जैन ग्रन्थावलि ।

कलकत्तानिवासी स्वर्गस्थ **श्रीमद् डालचन्दजी सिंघी** की पुण्यस्मृतिनिमित्त
तत्पुत्र **श्रीमान् बहादुरसिंहजी सिंघी** कर्तृक
संस्थापित तथा प्रकाशित

सम्पादक तथा सञ्चालक

जिन विजय मुनि

[सम्मान्य सभासद-भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर पूना, तथा गुजरात साहित्यसभा अहमदाबाद; भूतपूर्वाचार्य–गुजरात पुरातत्त्वमन्दिर अहमदाबाद; जैनवाङ्मयाध्यापक विश्वभारती, शान्तिनिकेतन; प्राकृतभाषादि–प्रधानाध्यापक भारतीय विद्या भवन बंबई; तथा, जैन साहित्यसंशोधक ग्रन्थावलि–पुरातत्त्वमन्दिर ग्रन्थावलि–भारतीय विद्या ग्रन्थावलि–अन्तर्गत संस्कृत–प्राकृत–पाली–अपभ्रंश–प्राचीनगूर्जर–हिन्दी–आदि भाषामय अनेकानेक ग्रन्थ संशोधक–सम्पादक ।]

ग्रन्थांक ३

प्राप्तिस्थान

व्यवस्थापक - सिंघी जैन ग्रन्थमाला

अनेकान्त विहार, ९, शान्तिनगर; पो० साबरमती, अहमदाबाद

सिंघी सदन, ४८, गरियाहाट रोड; पो० बालीगंज, कलकत्ता

स्थापनाब्द]

[वि० सं० १९८६

श्री मेरुतुङ्गाचार्यविरचित

प्रबन्धचिन्तामणि

संस्कृत ग्रन्थका

हिन्दी भाषान्तर

अनुवादक

पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी

[आचार्य-हिन्दी शिक्षापीठ, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन]

सम्पादक

जिन विजय मुनि

[प्राकृत भाषादि प्रधानाध्यापक-भारतीय विद्या भवन, बम्बई,
सम्पादक-भारतीय विद्या-त्रैमासिक पत्रिका-इत्यादि]

प्रकाशन-कर्ता

संचालक-सिंघी जैन ग्रन्थमाला

अहमदाबाद-कलकत्ता

विक्रमाब्द १९९७] प्रथमावृत्ति, पञ्चशत प्रति। [१९४० क्रिस्ताब्द

प्रबन्धचिन्तामणिकी संकलना।

इस ग्रन्थका संकलन और प्रकाशन निम्न प्रकारसे, ५ भागोंमें, पूर्ण होगा।

(१) प्रथम भाग–

भिन्न भिन्न प्रतियोंके आधारपर संशोधित – विविध पाठान्तर समवेत – मूल ग्रन्थ; १ परिशिष्ट; मूलग्रन्थ और परिशिष्टमें आये हुये संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषामय पद्योंकी अकारादिक्रमानुसार सूचि; पाठ संशोधनके लिये काममे लाई गई पुरातन प्रतियोंका सचित्र वर्णन। (छप गया)

(२) द्वितीय भाग–

प्रबन्धचिन्तामणिगत प्रबन्धोंके साथ सम्बन्ध और समानता रखनेवाले अनेकानेक पुरातन प्रबन्धोंका संग्रह; पद्यानुक्रमसूचि; विशेषनामानुक्रम; विस्तृत प्रस्तावना और प्रबन्ध संग्रहोंकी मूल प्रतियोका सचित्र परिचय। (छप गया)

(३) तृतीय भाग–

प्रबन्ध चिन्तामणिके मूल संस्कृतका शुद्ध और सरल संपूर्ण हिन्दी भाषान्तर, विशिष्ट प्रास्ताविक वक्तव्यके साथ। (प्रस्तुत ग्रन्थ)

(४) चतुर्थ भाग–

पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह नामक द्वितीय भागका संपूर्ण हिन्दी भाषान्तर। (छप रहा है)

(५) पञ्चम भाग–दो विभागोंमें

(१) पहले विभागमें – शिलालेख, ताम्रपत्र, पुस्तक प्रशस्ति आदि जितने समकालीन साधन और ऐतिह्य प्रमाण उपलब्ध होते हैं उनका एकत्र संग्रह और तत्परिचायक उपयुक्त विस्तृत विवेचन; प्राक्कालीन और पश्चात्कालीन अन्यान्य ग्रन्थोंमें उपलब्ध प्रमाणभूत प्रकरणों, उल्लेखों और अवतरणोका संग्रह; कुछ शिलालेख, ताम्रपत्र और प्राचीन ताडपत्रोंके चित्र – इत्यादि।

(२) दूसरे विभागमें – प्रबन्धचिन्तामणिग्रथित सब विषयोंका विवेचन करनेवाली विस्तृत प्रस्तावना – जिसमे तत्कालीन ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक और राजकीय परिस्थितिका सविशेष ऊहापोह और सिंहावलोकन किया जायगा। साथमें प्राचीन मन्दिर, मूर्तियां, पोथियां इत्यादिके अनेक चित्र भी दिये जायँगे।

समर्पण

*

परमधामप्रस्थित
पितृपादकी पुण्यप्रतिमाको
प्रणाति पूर्वक



प्रबन्धचिन्तामणि विषयानुक्रम

—तीसरा प्रकाश—

— चतुर्थ प्रकाश —

—पंचम प्रकाश—

पुरातन प्रवन्ध संग्रह

प्रस्तुत प्रवन्धचिन्तामणिके भाषान्तरके साथ पुरातन-प्रवन्ध-संग्रहका भाषान्तर भी विद्वानोंको अवश्य अवलोकनीय है। इस संग्रहमें, ऐसे अनेक छोटे-छोटे और-और प्रवन्ध भी संगृहीत हैं जो प्र० चिं० में बिल्कुल नहीं है; अथवा जिनमेंकी ऐतिहासिक वातें विशेष ज्ञातव्य है और जो प्र० चिं० की पूरक हैं। खास करके वस्तुपाल-तेजपाल प्रवन्धके साथ सम्बन्ध रखनेवाली कितनकि वहुत ही महत्त्वकी ऐतिहासिक घटनाओंका इसमें सविशेष वर्णन किया गया है। वीरधवलकी मृत्युके वाद किस तरह वीसलदेवको राजगादी मिली और किस तरह मंत्री तेजपालने उसको गुजरातके साम्राज्यका स्वामी वनाया यह वात इसमें वड़ी स्पष्टता और विश्वसनीय ढंगसे वताई गई है। तदुपरान्त, नाडोलके राव लाखण, काशीके राजा जयचन्द्र, दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान आदिके विषयके भी कितने ही महत्त्वके उल्लेख इस संग्रहमें प्राप्त होते हैं।

इस तरह प्र० चि० वर्णित व्यक्तियोंके विषयकी कई नवीन वातें इस संग्रहके अवलोकनसे ज्ञात होंगी। अतएव इतिहासके अभ्यासि-योंके लिय यह संग्रह अवश्य अवलोकनीय है।

प्रास्ताविक वक्तव्य।

श्री मेरुतुङ्गाचार्यरचित प्रबन्धचिन्तामणि नामक प्रसिद्ध ऐतिहासिक-प्रबन्ध-सग्रहात्मक सस्कृत ग्रथका यह हिन्दी भाषातर, आज सहर्ष हम हिन्दी भाषाभाषियोंकी सेवामें उपस्थित करते हैं।

१. प्रबन्धचिन्तामणिका महत्त्व और प्रामाण्य।

गुजरातके प्राचीन इतिहासकी विशिष्ट श्रुति और स्मृतिके आधारभूत जितने भी प्रबन्धात्मक और चरितात्मक ग्रथ-निबन्ध इत्यादि प्राकृत, सस्कृत या प्राचीन देशी भाषामें रचे हुए उपलब्ध होते हैं, उन सबमें इस प्रबन्धचिन्तामणिका स्थान सबसे विशिष्ट और अधिक महत्त्वका है।

उस प्राचीन समयसे ही—जबसे इसकी रचना हुई है तबसे ही—इस ग्रन्थकी प्रतिष्ठा विद्वानोंमें खूब अच्छी तरह हो गई थी और जिनको कुछ ऐतिहासिक वृत्तान्तोंके जाननेकी उत्कण्ठा होती थी वे प्राय इसका वाचन और अध्ययन किया करते थे। पिछले कई ग्रथकारोंने इस ग्रथका अपनी रचनाओंमें अच्छा उपयोग भी किया है, और आदरपूर्वक इसका उल्लेख भी किया है। इन ग्रन्थकारोंमें, सबसे पहले शायद जिनप्रभ सूरि हैं जो प्राय इनके समकालीन थे। यद्यपि उन्होंने इनका कहीं नामोल्लेख नहीं किया है तथापि अपने महत्त्वके ग्रन्थ, विविधतीर्थकल्पमें, जैसा कि हमने उसकी प्रस्तावनामें (पृ० ३, पक्ति ४-५ पर) सूचित किया है, इस ग्रन्थका सर्व प्रथम उपयोग किया है। इसके बाद, इन जिनप्रभ सूरिके उत्तरावस्थाके समकालीन और इन्हींके पास कुछ गहन शास्त्रोंका अध्ययन भी करनेवाले मलधारी राजशेखर सूरिने, अपने प्रबन्धकोषमें, इस ग्रथका जैसा उपयोग किया है, उसका परिचय हमने, प्रबन्धकोषकी प्रस्तावनामें, 'प्रबन्ध चिन्तामणि और प्रबन्धकोष' इस शीर्षकके नीचे (पृ० २, कण्डिका ४ में) कराया है। राजशेखर सूरिने तो प्रकट रूपसे इस ग्रथका नामोल्लेख भी किया है। हेमचन्द्र सूरिके वृत्तान्तमें उन्होंने कहा है कि—'इन आचार्यके जीवनके सम्बन्धमें जो जो बातें प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थमें लिखी गई हैं, उनका वर्णन हम यहा पर नहीं करना चाहते। ऐसा करना चर्वित-चर्वण मात्र होगा।'—इत्यादि। (देखो, प्र० को० पृ० ४७, प्रकरण ५८, पक्ति १२-१६) सवत् १४२२ में समाप्त होनेवाले जयसिंह-सूरि-रचित कुमारपालचरितमें, तथा सवत् १४६४ के पूर्वमें लिखे गये कुमारपालप्रबोधप्रबन्धमें (—यह ग्रन्थ शीघ्र ही प्रस्तुत ग्रथमालामें प्रकाशित होनेवाला है), और सवत् १४९२ में सकलित, जिनमण्डनोपाध्यायके कुमारपालप्रबन्धमें, इस ग्रथका खूब उपयोग किया गया है। स० १४९७ में परिपूर्ण होनेवाले जिनहर्षगणीकृत वस्तुपालचरित्रमें भी इसका यथेष्ट आधार लिया गया है। स० १५०० के बाद, प्राय १०-१५ वर्षके बीचमें जिसकी रचना हुई जान पड़ती है, उस उपदेशतरंगिणी नामक ग्रन्थमें तो इस ग्रथमेंसे प्राय सैंकड़ों ही पद्य उद्धृत किये गये हैं और इसके अनेक प्रबन्धोंका बहुत कुछ सार लिया गया है। एक जगह तो ग्रन्थकारने इसका प्रकट नामनिर्देश भी कर दिया है और लिख दिया है कि—'सर्वेऽपि प्रबन्धाः प्रबन्धचिन्तामणितो ज्ञेयाः।' (बनारस आवृत्ति, पृ० ५८) इसके बादके श्राद्धविधि, उपदेशसप्ततिका आदि १६ वीं शताब्दीमें बने हुए ग्रथोंमें, उनके कर्ताओंने भी अपने अपने ग्रथोंमें इस ग्रथका जहां-तहां आधार लिया है और इसमें वर्णित ऐतिहासिक उल्लेखोंका सार उद्धृत किया है। १७ वीं सदीमें, अकबरके समयमें होनेवाले हीरविजय सूरिके प्रसिद्ध सहपाठी और अनुगामी विद्वान् महोपाध्याय धर्मसागर गणीने अपनी सुप्रचलित तपागच्छपट्टावलि और अन्य ग्रथोंमें भी

इस ग्रन्थके कई उल्लेखोंका आधार लिया है। इसी तरह १८ वीं शताब्दीमें बने हुए वस्तुपालरास, कुमारपाल-रास आदि भाषा ग्रन्थोंके रचयिताओंने भी अपनी अपनी कृतियोंमें इस ग्रन्थका बहुत कुछ उपयोग किया है, जिनका विशेष वर्णन करना आवश्यक नहीं है।

इस कथनसे ज्ञात होता है कि उस पुरातन समयसे ही मेरुतुङ्ग सूरिके इस महत्त्वके ग्रन्थकी अच्छी ख्याति और उपयोगिता स्थापित हो गई थी।

२. प्रबन्धचिन्तामणिकी वर्तमान नवीन युगमें प्रसिद्धि और उपयोगिता।

प्रवर्तमान नवीन कालके प्रारंभमें, सबसे पहले इंग्रेज विद्वान् श्री **एलेक्झेंडर किन्लॉक फॉर्ब्स** साहबको इसका परिचय हुआ और उन्होंने गुजरातके इतिहास विषयकी अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक '**रासमाला**' में इसका सर्वप्रथम उपयोग किया। अपने ग्रन्थमें लिखे गये गुजरातके प्राचीन इतिहासका मुख्य ढांचा उन्होंने इसी ग्रन्थ परसे तैयार किया। वे अपने ग्रन्थमें, इस ग्रन्थका पद पद पर उल्लेख करते हैं और इसमें लिखी गई बातोंका संपूर्ण उपयोग करते हैं। उनके पीछे, भारतीय पुरातत्त्वके प्रखर पण्डित, जर्मन विद्वान्, डॉ० व्युहलरने इस ग्रन्थका खूब बारीकीके साथ अध्ययन किया और इसमें वर्णित ऐतिहासिक तथ्योंका सविशेष ऊहापोह किया। 'इन्डियन ऐन्टीक्वेरी' नामक भारतीय-विद्या विषयक सुप्रसिद्ध पत्रिकाके सन् १८७७ के जुलाई मासके अंकमें उन्होंने 'अनहिलवाडके चालुक्योंके ११ दानपत्र' (Eleven land-grants of the Chalukyas of Anhilvad) इस शीर्षक नीचे, अणहिलपुरके राजकीय इतिहास पर प्रकाश डालनेवाला एक महत्त्वका लेख लिखा जिसमें इस प्रबन्धचिन्तामणि कथित बातोंका अच्छा अवलोकन किया। फिर उसके बादमें, डॉ० व्युहलरने, जर्मन भाषामें Uber das Leben des Jaina Monches Hemacandra इस नामसे, आचार्य हेमचन्द्रका सविस्तर जीवनचरित्र लिखा, जिसमें उन्होंने प्रस्तुत प्रबन्धचिन्तामणिका पूरा पूरा उपयोग किया*। इसके बाद, बंबई सरकारने, बॉम्बे गेझेटियरके लिये जब गुजरातका प्राचीन इतिहास तैयार करवाया, तो उसके संकलनकर्ता प्रसिद्ध गुजराती पुरातत्त्वज्ञ डॉ० भगवानलाल इन्द्रजीने, इस ग्रन्थका बहुत सूक्ष्मताके साथ सांगोपांग निरीक्षण किया और गुजरातके राजकीय इतिहासके साथ संबन्ध रखने वाली प्रायः सारी ऐतिह्य उक्तियों और श्रुतियोंका जो जो इसमें निर्देश मिलता है उन सबका ठीक ठीक पर्यालोचन कर, यथायोग्य उनका उपयोग किया। तदुपरान्त, गुजरातके इतिहास विषयक भिन्न भिन्न प्रकारके पुस्तकों और निबन्धोंके रचयिता एतद्देशीय और विदेशीय सैंकडो ही विद्वानोंने जहां-तहां इस ग्रन्थका अनेकशः आधार लिया है और उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थकी ऐसी सार्वजनिक उपयोगिताको लक्ष्य कर, रासमालाके कर्ता विद्वान् फॉर्बस् साहबकी, और तदनुसार डॉ० व्युहलरकी भी, यह खास इच्छा रही कि विस्तृत टीका-टिप्पणियोंके साथ इस ग्रन्थका संपूर्ण इंग्रेजी अनुवाद किया जाय। डॉ० व्युहलरकी इस इच्छाको, कथासरित्सागर आदि प्रसिद्ध संस्कृत कथाग्रन्थोंके सिद्धहस्त इंग्रेजी अनुवादक, इंग्रेज विद्वान्, श्रीयुत सी. एच्. टॉनी, एम्. ए. ने पूरा किया। उन्होंने इस ग्रन्थका सुन्दर और संपूर्ण इंग्रेजी अनुवाद किया जिसको कलकत्ताकी एसियाटिक सोसाइटीने सन् १९०१ में छपा कर प्रकाशित किया। डॉ० व्युहलरकी उत्कण्ठा थी कि वे टॉनीके इस भाषान्तरके साथ, ऐतिहासिक और भौगोलिक विषयोंकी परिचायक ऐसी अपनी टीका-टिप्पणियाँ दे कर, इस ग्रन्थकी उपादेयताका महत्त्व बढावेंगे; पर दुर्दैवसे इस कार्यके पूर्ण होनेके पहले ही उनका स्वर्गवास हो गया और उनकी वह इच्छा यों ही अपूर्ण रह गई। विद्वान् टॉनीने अपने इंग्रेजी अनुवादकी प्रस्तावनाके प्रारंभमे, जो इस बारेमे कुछ लिखा है, उसका भावार्थ यह है–

* डॉ० व्युहलरका यह बडे महत्त्वका ग्रन्थ है। इसका इंग्रेजी अनुवाद The Life of Hemacandracarya इस नामसे, हमने अपने सहकारी मित्र डॉ. मणिलाल पटेल Ph. D. (मारबुर्ग–जर्मनी) द्वारा करवा कर, इसी सिंघी जैन ग्रन्थमालाके १२ वें नंबरमें प्रकाशित किया है। इंग्रेजी ज्ञाता विद्वानोंके लिये यह ग्रन्थ अवश्य पठनीय है।

" राजतरंगिणीके अकेले अपवादको बाद किया जाय तो, संस्कृत साहित्यमें ऐतिहासिक कहलाने लायक एक भी कोई ग्रंथ नहीं है–ऐसा जो आक्षेप वारवार किया जाता है, वह इस प्रबंधचिंतामणि जैसे ग्रन्थके अस्तित्वसे, किसी अंशमें मोंटा पाडा जा सकता है। इस आक्षेपको निःसार सिद्ध करना यह स्वर्गगत हो प्राय प्रोफेसर ब्युह्लरकी जीवन भरकी अभिलाषा थी। ग्रन्डरिस्स् डेर इन्डो आरिशेन् फिलोलोगी (Grundriss der Indo-Arischen Philologie) नामक ग्रन्थमालाके लिये, डॉ० ब्युह्लरकी रसप्रद जीवन कथाका आलेखन करनेवाले प्रो० जोलीने (Jolly), ई० स० १८७७ में श्रीयुत न्योल्डेके (Noldeke) नामक विद्वान् पर लिखे हुए ब्युह्लरके एक पत्रमेंसे अवतरण दिया है, जिसमें उन्होंने लिखा था कि– ' भारतवासियोंके पास कुछ भी ऐतिहासिक साहित्य नहीं है इस प्रकारकी मान्यता रखनेमें आपलोग, वर्तमान समयसे कुछ थोडेसे पिछडे हुए मालूम दे रहे हैं। पिछले बीस वर्षोंमें ठीक ठीक विस्तृत ऐसे पाँच ऐतिहासिक ग्रंथ मिल आये हैं, जो उनमें वर्णित घटनाओंके समकालीन ग्रंथकारोंके बनाये हुए हैं। इनमेंसे ४ तो, जिनके नाम **विक्रमांकचरित, गउडवहो, पृथ्वीराजदिग्विजय** और **कीर्तिकौमुदी** हैं, खुद मैंने खोज निकाले हैं। और एक दर्जनसे भी अधिक अन्य और ग्रंथ खोज निकालनेकी तलाशमें हूँ। ' यह प्रोफेसर ब्युह्लर ही के श्रमका फल है कि जो इतने सारे ऐतिहासिक वृत्तांत, इतने ऐतिहासिक काव्य और इतनी ऐतिहासिक कथायें संपादित हो सकीं। इस ग्रंथके इंग्रेजी अनुवादके करनेका काम जो मैंने हाथमें लिया वह भी डॉ० ब्युह्लर-ही-की सूचनाका परिणाम है, और जो कोई पाठक मेरी टिप्पणियोंके पढनेका कष्ट उठायेगा उसे स्पष्ट ज्ञात हो जायगा, कि उन्हींके उत्तेजन और साहाय्यके विना मेरा यह काम अपने अन्तको न प्राप्त कर सकता। इस अनुवादके साथ ऐतिहासिक और भौगोलिक विषयोंकी पूर्ति करनेवाली टिप्पणियाँ लिखनेका उनका खास इरादा था। अगर यह बन पाता तो इस ग्रंथकी उपयोगितामें खूब महत्त्वकी वृद्धि हो पाती, पर इस विचारके, कार्यरूपमें परिणत होनेके पहले ही, दुर्दैवसे उनका अवसान हो गया और अब यह बात ' मनकी बात मनमें ही रही ' जैसी कहावतके योग्य हो गई। भारतके इतिहास विषयक साहित्यके बारेमें और उसमें भी खास करके गुजरातके इतिहासके साथ संबद्ध साहित्यके संबंधमें, हरएक इंग्रेज विद्यार्थीको एक और नामका स्मरण हो आना चाहिए और वह नाम है रासमालाके कर्ता श्री एलेक्झेंडर किन्लॉक फॉर्बस्‌का। मि. ए. जे. नैर्ने, बी. सी. एस. (Mr A J Nairne, B C S) ने फॉर्बस् साहबका जीवनचरित लिखा है, जो कर्नल वॉटसन् द्वारा संपादित और सन् १८७८ में प्रकाशित, **रासमालाकी** आवृत्तिके प्रारंभमें मुद्रित है। श्री फॉर्बस् साहब एक ऐसे इंडियन सिवीलियन थे, जिनको अपने भाग्यका पासा जिन लोगोंके साथ डाला गया हो उन लोगोंके इतिहास, वाङ्मय और पुरातत्त्वके विषयमें पूरा रस रहता हो। इस विषयकी उनकी, उत्कण्ठा और सत्यनिष्ठापूर्ण अध्ययनशीलताकी प्रतीति, **रासमालाके** प्रत्येक पृष्ठ पर होती रहती है। जिन अनेक मूलभूत आधारोंके ऊपरसे उन्होंने अपना ग्रंथ तैयार किया, उनमेंका यह एक प्रबंधचिन्तामणि है। इस ऐतिहासिक ग्रंथका उन्होंने इतना तो संपूर्ण उपयोग किया है कि जिसे देख कर मेरे मनमें, अपने इस अनुवादके करते समय, वारवार यह उठ आता था कि मैं निरर्थक ही यह श्रम कर रहा हूँ। किन्तु प्रो० ब्युह्लरने मुझसे कहा था कि इस ग्रंथका संपूर्ण इंग्रेजी अनुवाद हो ऐसी इच्छा स्वयं फॉर्बस्‌ने अनेक बार प्रदर्शित की थी*। और यही मेरे इस परिश्रमकी उपयोगिताका आधार है। लेकिन, मैं अपने मनको इस तरह भी प्रोत्साहित रखना चाहता हूँ कि–मध्यकालीन इस जैन यतिने लिख रखी हुई इन श्रुतपरंपराओंमें, जिनका विवरण या दृढीकरण करनेसे इनके मूलमें रही हुई आधी मोहकता नष्ट हो जाती है, न केवल भारतके इतिहासके अभ्यासियों ही-को, किन्तु तदुपरान्त लोककथाओंके ज्ञाताओंको और मानव-नीति शास्त्रके विद्वानोंको भी, रस प्राप्त होगा। ग्रंथकार स्वयं भी कहता है कि–इस रचनाके करनेमें मेरा उद्देश जनमन रंजन करनेका है। " इत्यादि।

*

३. प्रबन्धचिन्तामणिके मूल संस्कृत ग्रन्थका प्रथम प्रकाशन और गुजराती भाषान्तर।

जैसा कि हमने, अपनी मूल आवृत्तिके प्रारम्भमें दिये हुए ' **किंचित् प्रास्ताविक** ' शीर्षक वक्तव्यमें लिखा है, इस ग्रंथके संस्कृत मूलका प्रथम प्रकाशन, गुजरातके शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथ नामक विद्वान्‌ने, संवत्

* फॉर्बस् साहबकी ऐसी इच्छा ही नहीं थी, बल्कि उन्होंने तो इसका पूरा इंग्रेजी अनुवाद खुद ही सबसे पहले कर लिया था और फिर उसका उपयोग रासमालामें किया था, ऐसा बम्बईकी फॉर्बस् सभामें जो उनका ग्रंथसंग्रह विद्यमान है उससे मालूम होता है। बम्बईके इस संग्रहमें फॉर्बस् साहबकी हाथकी लिखी हुई एक नोटबुक है जिसमें इस ग्रंथके ३,४ और ५ वें प्रकाशका इंग्रेजी भाषान्तर लिखा हुआ है। पहले दो प्रकाशोंका भाषान्तर, शायद किसी दूसरी नोटबुकमें लिखा हुआ होगा जो अब उपलब्ध नहीं है। श्री टॉनीको इसकी खबर न होनेसे, शायद उन्होंने वैसा लिखा होगा। अथवा वह भाषान्तर वैसा पूर्ण और शुद्ध न होगा जिससे फॉर्बस्‌को संतोष रहा हो, और इसीलिये उन्होंने इसका एक उत्तम भाषान्तर, योग्य संस्कृतज्ञ पण्डितके हाथसे हो, ऐसी इच्छा डॉ० ब्युह्लरके आगे प्रदर्शित की हो।

इस ग्रन्थके कई उल्लेखोंका आधार लिया है। इसी तरह १८ वीं शताब्दीमें बने हुए वस्तुपालरास, कुमारपाल-रास आदि भाषा ग्रन्थोंके रचयिताओंने भी अपनी अपनी कृतियोंमें इस ग्रन्थका बहुत कुछ उपयोग किया है, जिनका विशेष वर्णन करना आवश्यक नहीं है।

इस कथनसे ज्ञात होता है कि उस पुरातन समयसे ही मेरुतुङ्ग सूरिके इस महत्त्वके ग्रन्थकी अच्छी ख्याति और उपयोगिता स्थापित हो गई थी।

२. प्रबन्धचिन्तामणिकी वर्तमान नवीन युगमें प्रसिद्धि और उपयोगिता।

प्रवर्तमान नवीन कालके प्रारंभमें, सबसे पहले इंग्रेज विद्वान् श्री **एलेक्झेंडर किन्लॉक फॉर्ब्स** साहबको इसका परिचय हुआ और उन्होंने गुजरातके इतिहास विषयकी अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक '**रासमाला**' में इसका सर्वप्रथम उपयोग किया। अपने ग्रन्थमें लिखे गये गुजरातके प्राचीन इतिहासका मुख्य ढांचा उन्होंने इसी ग्रन्थ परसे तैयार किया। वे अपने ग्रन्थमें, इस ग्रन्थका पद पद पर उल्लेख करते है और इसमें लिखी गई बातोंका संपूर्ण उपयोग करते है। उनके पीछे, भारतीय पुरातत्त्वके प्रखर पण्डित, जर्मन विद्वान्, डॉ० ब्युहलरने इस ग्रन्थका खूब बारीकीके साथ अध्ययन किया और इसमें वर्णित ऐतिहासिक तथ्योंका सविशेष ऊहापोह किया। 'इन्डियन ऐन्टीक्वेरी' नामक भारतीय-विद्या विषयक सुप्रसिद्ध पत्रिकाके सन् १८७७ के जुलाई मासके अंकमें उन्होने 'अनहिलवाडके चालुक्योंके ११ दानपत्र' (Eleven land-grants of the Chalukyas of Anhilvad) इस शीर्षक नीचे, अणहिलपुरके राजकीय इतिहास पर प्रकाश डालनेवाला एक महत्त्वका लेख लिखा जिसमें इस प्रबन्धचिन्तामणि कथित बातोंका अच्छा अवलोकन किया। फिर उसके बादमें, डॉ० ब्युहलरने, जर्मन भाषामें Uber das Leben des Jaina Monches Hemacandra इस नामसे, आचार्य हेमचन्द्रका सविस्तर जीवनचरित्र लिखा, जिसमें उन्होंने प्रस्तुत प्रबन्धचिन्तामणिका पूरा पूरा उपयोग किया*। इसके बाद, बंबई सरकारने, बॉम्बे गेझेटियरके लिये जब गुजरातका प्राचीन इतिहास तैयार करवाया, तो उसके संकलनकर्ता प्रसिद्ध गुजराती पुरातत्त्वज्ञ डॉ० भगवानलाल इन्द्रजीने, इस ग्रन्थका बहुत सूक्ष्मताके साथ सांगोपांग निरीक्षण किया और गुजरातके राजकीय इतिहासके साथ संबन्ध रखने वाली प्रायः सारी ऐतिह्य उक्तियों और श्रुतियोंका जो जो इसमें निर्देश मिलता है उन सबका ठीक ठीक पर्यालोचन कर, यथायोग्य उनका उपयोग किया। तदुपरान्त, गुजरातके इतिहास विषयक भिन्न भिन्न प्रकारके पुस्तकों और निबन्धोंके रचयिता एतद्देशीय और विदेशीय सैंकडों ही विद्वानोंने जहां-तहां इस ग्रन्थका अनेकशः आधार लिया है और उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थकी ऐसी सार्वजनिक उपयोगिताको लक्ष्य कर, रासमालाके कर्ता विद्वान् फॉर्बस् साहबकी, और तदनुसार डॉ० ब्युहलरकी भी, यह खास इच्छा रही कि विस्तृत टीका-टिप्पणियोंके साथ इस ग्रन्थका संपूर्ण इंग्रेजी अनुवाद किया जाय। डॉ० ब्युहलरकी इस इच्छाको, कथासरित्सागर आदि प्रसिद्ध संस्कृत कथाग्रन्थोंके सिद्धहस्त इंग्रेजी अनुवादक, इंग्रेज विद्वान्, श्रीयुत सी. एच्. टॉनी, एम्. ए. ने पूरा किया। उन्होंने इस ग्रन्थका सुन्दर और संपूर्ण इंग्रेजी अनुवाद किया जिसको कलकत्ताकी एसियाटिक सोसाइटीने सन् १९०१ में छपा कर प्रकाशित किया। डॉ० ब्युहलरकी उत्कण्ठा थी कि वे टॉनीके इस भाषान्तरके साथ, ऐतिहासिक और भौगोलिक विषयोंकी परि-चायक ऐसी अपनी टीका-टिप्पणियाँ दे कर, इस ग्रन्थकी उपादेयताका महत्त्व बढावेगे; पर दुर्दैवसे इस कार्यके पूर्ण होनेके पहले ही उनका स्वर्गवास हो गया और उनकी वह इच्छा यों ही अपूर्ण रह गई। विद्वान् टॉनीने अपने इंग्रेजी अनुवादकी प्रस्तावनाके प्रारंभमे, जो इस बारेमें कुछ लिखा है, उसका भावार्थ यह है—

---

* डॉ० ब्युहलरका यह बडे महत्त्वका ग्रन्थ है। इसका इंग्रेजी अनुवाद The Life of Hemacandracarya इस नामसे, हमने अपने सहकारी मित्र डॉ. मणिलाल पटेल Ph. D. (मारबुर्ग–जर्मनी) द्वारा करवा कर, इसी सिंघी जैन ग्रन्थ-मालाके १२ वें नंबरमें प्रकाशित किया है। इंग्रेजी ज्ञाता विद्वानोंके लिये यह ग्रन्थ अवश्य पठनीय है।

" राजतरंगिणीके अकेले अपवादको बाद किया जाय तो, संस्कृत साहित्यमें ऐतिहासिक कहलाने लायक एक भी कोई ग्रंथ नहीं है–ऐसा जो आक्षेप वारवार किया जाता है, वह इस प्रबन्धचिंतामणि जैसे ग्रंथके अस्तित्वसे, किसी अंशमें मोंटा पाडा जा सकता है। इस आक्षेपको निःसार सिद्ध करना यह स्वर्गगत डॉक्टर प्रोफेसर ब्युहलरकी जीवन भरकी अभिलाषा थी। ग्रुन्डरिस्स् डेर इन्डो आरिशेन् फिलोलोगी (Grundriss der Indo-Arischen Philologie) नामक ग्रंथ-मालाके लिये, डॉ० ब्युहलरकी रसप्रद जीवन कथाका आलेखन करनेवाले प्रो० जोलीने (Jolly), ई० स० १८७७ में श्रीयुत न्योल्डेके (Noldeke) नामक विद्वान् पर लिखे हुए ब्युहलरके एक पत्रमेंसे अवतरण दिया है, जिसमें उन्होंने लिखा था कि–' भारतवासियोंके पास कुछ भी ऐतिहासिक साहित्य नहीं है इस प्रकारकी मान्यता रखनेमें आपलोग, वर्तमान समयसे कुछ थोडेसे पिछडे हुए मालूम दे रहे हैं। पिछले तीस वर्षोंमें ठीक ठीक विस्तृत ऐसे पाँच ऐतिहासिक ग्रंथ मिल आये हैं, जो उनमें वर्णित घटनाओंके समकालीन ग्रंथकारोंके बनाये हुए हैं। इनमेंसे ४ तो, जिनके नाम विक्रमाकचरित, गउडवहो, पृथ्वीराज-दिग्विजय और कीर्तिकौमुदी हैं, खुद मैंने खोज निकाले हैं। और एक इससे भी अधिक अन्य और ग्रंथ खोज निकालनेकी तलाशमें हूँ।' यह प्रोफेसर ब्युहलर ही के श्रमका फल है कि जो इतने सारे ऐतिहासिक वृत्तांत, इतने ऐतिहासिक काव्य और इतनी ऐतिहासिक कथायें संपादित हो सकीं। इस ग्रंथके इंग्रेजी अनुवादके करनेका काम जो मैंने हाथमें लिया वह भी डॉ० ब्युहलर-ही-की सूचनाका परिणाम है, और जो कोई पाठक मेरी टिप्पणियोंके पढनेका कष्ट उठायेगा उसे स्पष्ट ज्ञात हो जायगा, कि उन्हींके उत्तेजन और साहाय्यके बिना मेरा यह काम अपने अन्तको न प्राप्त कर सकता। इस अनुवादके साथ ऐतिहासिक और भौगोलिक विषयोंकी पूर्ति करनेवाली टिप्पणियाँ लिखनेका उनका खास इरादा था। अगर यह बन पाता तो इस ग्रंथकी उपयोगितामें खूब महत्त्वकी वृद्धि हो पाती, पर इस विचारके, कार्यरूपमें परिणत होनेके पहले ही, दुर्दैवसे उनका अवसान हो गया और अब यह बात ' मनकी बात मनमें ही रही ' जैसी कहावतके योग्य हो गई। भारतके इतिहास विषयक साहित्यके बारेमें और उसमें भी खास करके गुजरातके इतिहासके साथ संबद्ध साहित्यके संबन्धमें, हरएक इंग्रेज विद्यार्थीको एक और नामका स्मरण हो आना चाहिए और वह नाम है रासमालाके कर्ता श्री एलेक्झेंडर किन्लॉक फॉर्बस्का। मि. ए. जे. नैर्ने, बी सी एस (Mr A J Nairne, B C S) ने फॉर्बस् साहबका जीवनचरित लिखा है, जो कर्नल वॉटसन् द्वारा संपादित और सन् १८७८ में प्रकाशित, रासमालाकी आवृत्तिके प्रारंभमें मुद्रित है। श्री फॉर्बस् साहब एक ऐसे इंडियन सिवीलियन थे, जिनको अपने भाग्यका पासा जिन लोगोंके साथ डाला गया हो उन लोगोंके इतिहास, वाङ्मय और पुरातत्त्वके विषयमें पूरा रस रहता हो। इस विषयकी उनकी, उत्कण्ठा और सत्यनिष्ठापूर्ण अध्ययनशीलताकी प्रतीति, रासमालाके प्रत्येक पृष्ठ पर होती रहती है। जिन अनेक मूलभूत आधारोंके ऊपरसे उन्होंने अपना ग्रंथ तैयार किया, उनमेंका यह एक प्रबन्धचिन्तामणि है। इस ऐतिहासिक ग्रंथका उन्होंने इतना तो संपूर्ण उपयोग किया है कि जिसे देख कर मेरे मनमें, अपने इस अनुवादके करते समय, वारवार यह उठ आता था कि मैं निरर्थक ही यह श्रम कर रहा हूँ। किन्तु प्रो० ब्युहलरने मुझसे कहा था कि इस ग्रंथका संपूर्ण इंग्रेजी अनुवाद हो ऐसी इच्छा स्वयं फॉर्बस्ने अनेक वार प्रदर्शित की थी*। और यही मेरे इस परिश्रमकी उपयोगिताका आधार है। लेकिन, मैं अपने मनको इस तरह भी प्रोत्साहित रखना चाहता हूँ कि–मध्यकालीन इस जैन यतिने लिख रखी हुई इन श्रुतपरंपराओंमें, जिनका विवरण या स्पष्टीकरण करनेसे इनके मूलमें रही हुई भावी मोहकता नष्ट हो जाती है, न केवल भारतके इतिहासके अभ्यासियों ही-को, किन्तु तदुपरान्त लोककथाओंके ज्ञाताओंको और मानव-नीति शास्त्रके विद्वानोंको भी, रस प्राप्त होगा। ग्रंथकार स्वयं भी कहता है कि–इस रचनाके करनेमें मेरा उद्देश जनमन रंजन करनेका है। " इत्यादि।

*

३. प्रबन्धचिन्तामणिके मूल संस्कृत ग्रन्थका प्रथम प्रकाशन और गुजराती भाषान्तर।

जैसा कि हमने, अपनी मूल आवृत्तिके प्रारम्भमें दिये हुए ' किंचित् प्रास्ताविक ' शीर्षक वक्तव्यमें लिखा है, इस ग्रन्थके संस्कृत मूलका प्रथम प्रकाशन, गुजरातके शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथ नामक विद्वान्ने, संवत्

---

* फॉर्बस् साहबकी ऐसी इच्छा ही नहीं थी, बल्कि उन्होंने तो इसका पूरा इंग्रेजी अनुवाद खुद ही सबसे पहले कर लिया था और फिर उसका उपयोग रासमालामें किया था, ऐसा बम्बईकी फॉर्बस् सभामें जो उनका ग्रंथसंग्रह विद्यमान है उससे मालूम होता है। बम्बईके इस संग्रहमें फॉर्बस् साहबकी हाथकी लिखी हुई एक नोटबुक है जिसमें इस ग्रंथके ३, ४ और ५ वें प्रकाशका इंग्रेजी भाषान्तर लिखा हुआ है। पहले दो प्रकाशोंका भाषान्तर, शायद किसी दूसरी नोटबुकमें लिखा हुआ होगा जो अब उपलब्ध नहीं है। श्री टॉनीको इसकी खबर न होनेसे, शायद उन्होंने वैसा लिखा होगा। अथवा वह भाषान्तर वैसा पूर्ण और शुद्ध न होगा जिससे फॉर्बस्को संतोष रहा हो, और इसीलिये उन्होंने इसका एक उत्तम भाषान्तर, योग्य संस्कृतज्ञ पण्डितके हाथसे हो, ऐसी इच्छा डॉ० ब्युहलरके आगे प्रदर्शित की हो।

इस ग्रन्थके कई उल्लेखोका आधार लिया है। इसी तरह १८ वीं शताब्दीमें बने हुए वस्तुपालरास, कुमारपाल-रास आदि भाषा ग्रन्थोंके रचयिताओने भी अपनी अपनी कृतियोंमे इस ग्रन्थका बहुत कुछ उपयोग किया है, जिनका विशेष वर्णन करना आवश्यक नहीं है।

इस कथनसे ज्ञात होता है कि उस पुरातन समयसे ही मेरुतुङ्ग सूरिके इस महत्त्वके ग्रन्थकी अच्छी ख्याति और उपयोगिता स्थापित हो गई थी।

२. प्रबन्धचिन्तामणिकी वर्तमान नवीन युगमें प्रसिद्धि और उपयोगिता।

प्रवर्तमान नवीन कालके प्रारंभमें, सबसे पहले इंग्रेज विद्वान् श्री **एलेक्झेंडर किन्लॉक फॉर्बस्** साहबको इसका परिचय हुआ और उन्होंने गुजरातके इतिहास विषयकी अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक '**रासमाला**' में इसका सर्वप्रथम उपयोग किया। अपने ग्रन्थमें लिखे गये गुजरातके प्राचीन इतिहासका मुख्य ढांचा उन्होंने इसी ग्रन्थ परसे तैयार किया। वे अपने ग्रन्थमे, इस ग्रन्थका पद पद पर उल्लेख करते हैं और इसमें लिखी गई बातोंका संपूर्ण उपयोग करते है। उनके पीछे, भारतीय पुरातत्त्वके प्रखर पण्डित, जर्मन विद्वान्, डॉ० ब्युहलरने इस ग्रन्थका खूब बारीकीके साथ अध्ययन किया और इसमें वर्णित ऐतिहासिक तथ्योंका सविशेष ऊहापोह किया। 'इन्डियन ऐन्टीकेरी' नामक भारतीय-विद्या विषयक सुप्रसिद्ध पत्रिकाके सन् १८७७ के जुलाई मासके अंकमें उन्होंने 'अनहिलवाडके चालुक्योंके ११ दानपत्र' (Eleven land-grants of the Chalukyas of Anhilvad) इस शीर्षक नीचे, अणहिलपुरके राजकीय इतिहास पर प्रकाश डालनेवाला एक महत्त्वका लेख लिखा जिसमें इस प्रबन्धचिन्तामणि कथित बातोंका अच्छा अवलोकन किया। फिर उसके बादमें, डॉ० ब्युहलरने, जर्मन भाषामें Uber das Leben des Jaina Monches Hemacandra इस नामसे, आचार्य हेमचन्द्रका सविस्तर जीवनचरित्र लिखा, जिसमें उन्होंने प्रस्तुत प्रबन्धचिन्तामणिका पूरा पूरा उपयोग किया*। इसके बाद, बंबई सरकारने, बॉम्बे गेझेटियरके लिये जब गुजरातका प्राचीन इतिहास तैयार करवाया, तो उसके संकलनकर्ता प्रसिद्ध गुजराती पुरातत्त्वज्ञ डॉ० भगवानलाल इन्द्रजीने, इस ग्रन्थका बहुत सूक्ष्मताके साथ सांगोपांग निरीक्षण किया और गुजरातके राजकीय इतिहासके साथ संबन्ध रखने वाली प्रायः सारी ऐतिह्य उक्तियों और श्रुतियोंका जो जो इसमें निर्देश मिलता है उन सबका ठीक ठीक पर्यालोचन कर, यथायोग्य उनका उपयोग किया। तदुपरान्त, गुजरातके इतिहास विषयक भिन्न भिन्न प्रकारके पुस्तको और निबन्धोंके रचयिता एतद्देशीय और विदेशीय सैंकडों ही विद्वानोंने जहा-तहां इस ग्रन्थका अनेकशः आधार लिया है और उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थकी ऐसी सार्वजनिक उपयोगिताको लक्ष्य कर, रासमालाके कर्ता विद्वान् फॉर्बस् साहबकी, और तदनुसार डॉ० ब्युहलरकी भी, यह खास इच्छा रही कि विस्तृत टीका-टिप्पणियोंके साथ इस ग्रन्थका संपूर्ण इंग्रेजी अनुवाद किया जाय। डॉ० ब्युहलरकी इस इच्छाको, कथासरित्सागर आदि प्रसिद्ध संस्कृत कथाग्रन्थोंके सिद्धहस्त इंग्रेजी अनुवादक, इंग्रेज विद्वान्, श्रीयुत सी. एच्. टॉनी, एम्. ए. ने पूरा किया। उन्होंने इस ग्रन्थका सुन्दर और संपूर्ण इंग्रेजी अनुवाद किया जिसको कलकत्ताकी एसियाटिक सोसाइटीने सन् १९०१ में छपा कर प्रकाशित किया। डॉ० ब्युहलरकी उत्कण्ठा थी कि वे टॉनीके इस भाषान्तरके साथ, ऐतिहासिक और भौगोलिक विषयोंकी परिचायक ऐसी अपनी टीका-टिप्पणियाँ दे कर, इस ग्रन्थकी उपादेयताका महत्त्व बढावेंगे; पर दुर्दैवसे इस कार्यके पूर्ण होनेके पहले ही उनका स्वर्गवास हो गया और उनकी वह इच्छा यों ही अपूर्ण रह गई। विद्वान् टॉनीने अपने इंग्रेजी अनुवादकी प्रस्तावनाके प्रारंभमे, जो इस बारेमें कुछ लिखा है, उसका भावार्थ यह है—

---

* डॉ० ब्युहलरका यह बडे महत्त्वका ग्रन्थ है। इसका इंग्रेजी अनुवाद The Life of Hemacandracarya इस नामसे, हमने अपने सहकारी मित्र डॉ. मणिलाल पटेल Ph. D. (मारबुर्ग–जर्मनी) द्वारा करवा कर, इसी सिंघी जैन ग्रन्थमालाके १२ वें नंबरमें प्रकाशित किया है। इंग्रेजी ज्ञाता विद्वानोंके लिये यह ग्रन्थ अवश्य पठनीय है।

" राजतरंगिणीके अकेले अपवादको बाद किया जाय तो, संस्कृत साहित्यमें ऐतिहासिक कहलाने लायक एक भी कोई ग्रन्थ नहीं है–ऐसा जो आक्षेप वारवार किया जाता है, वह इस प्रबन्धचिन्तामणि जैसे ग्रन्थके अस्तित्वसे, किसी अंशमें भोंटा पाड़ा जा सकता है। इस आक्षेपको निःसार सिद्ध करना यह स्वर्गगत हो ग्राम प्रोफेसर व्युह्लरकी जीवन भरकी अभिलाषा थी। ग्रुन्डरिस्स् डेर इन्डो आरिशेन् फिलोलोगी (Grundriss der Indo-Arischen Philologie) नामक ग्रन्थमालाके लिये, डॉ० व्युह्लरकी रसप्रद जीवन कथाका आलेखन करनेवाले प्रो० जोलीने (Jolly), ई० स० १८७७ में श्रीयुत न्योल्डेके (Noldeke) नामक विद्वान् पर लिखे हुए व्युह्लरके एक पत्रमेंसे अवतरण दिया है, जिसमें उन्होंने लिखा था कि– 'भारतवासियोंके पास कुछ भी ऐतिहासिक साहित्य नहीं है इस प्रकारकी मान्यता रखनेमें आपलोग, वर्तमान समयसे कुछ थोडेसे पिछडे हुए मालूम दे रहे हैं। पिछले बीस वर्षोंमें ठीक ठीक विस्तृत ऐसे पाँच ऐतिहासिक ग्रन्थ मिल आये हैं, जो उनमें वर्णित घटनाओंके समकालीन ग्रन्थकारोंके बनाये हुए हैं। इनमेंसे ४ तो, जिनके नाम विक्रमाङ्कचरित, गउडवहो, पृथ्वीराजदिग्विजय और कीर्तिकौमुदी हैं, खुद मैंने खोज निकाले हैं। और एक डझनसे भी अधिक अन्य और ग्रन्थ खोज निकालनेकी तलाशमें हूँ।' यह प्रोफेसर व्युह्लर ही के श्रमका फल है कि जो इतने सारे ऐतिहासिक वृत्तान्त, इतने ऐतिहासिक काव्य और इतनी ऐतिहासिक कथायें संपादित हो सकीं। इस ग्रन्थके इंग्रेजी अनुवादके करनेका काम जो मैंने हाथमें लिया वह भी डॉ० व्युह्लर-ही-की सूचनाका परिणाम है, और जो कोई पाठक मेरी टिप्पणियोंके पढनेका कष्ट उठायेगा उसे स्पष्ट ज्ञात हो जायगा, कि उन्हींके उत्तेजन और साहाय्यके विना मेरा यह काम अपने अन्तको न प्राप्त कर सकता। इस अनुवादके साथ ऐतिहासिक और भौगोलिक विषयोंकी पूर्ति करनेवाली टिप्पणियाँ लिखनेका उनका खास इरादा था। अगर यह बन पाता तो इस ग्रन्थकी उपयोगितामें खूब महत्त्वकी वृद्धि हो पाती, पर इस विचारके, कार्यरूपमें परिणत होनेके पहले ही, दुर्दैवसे उनका अवसान हो गया और अब यह बात 'मनकी बात मनमें ही रही' जैसी कहावतके योग्य हो गई। भारतके इतिहास विषयक साहित्यके बारेमें और उसमें भी खास करके गुजरातके इतिहासके साथ संबद्ध साहित्यके संबन्धमें, हरएक इंग्रेज विद्यार्थीको एक और नामका स्मरण हो आना चाहिए और वह नाम है रासमालाके कर्ता श्री एलेक्झेंडर किन्लॉक फॉर्बस्का। मि. ए. जे. नैर्ने, बी. सी. एस. (Mr A J Nairne, B C S) ने फॉर्बस् साहबका जीवनचरित लिखा है, जो कर्नल वॉटसन् द्वारा संपादित और सन् १८७८ में प्रकाशित, रासमालाकी आवृत्तिके प्रारंभमें मुद्रित है। श्री फॉर्बस् साहब एक ऐसे इंडियन सिवीलियन थे, जिनको अपने भाग्यका पासा जिन लोगोंके साथ डाला गया हो उन लोगोंके इतिहास, वाङ्मय और पुरातत्त्वके विषयमें पूरा रस रहता हो। इस विषयकी उनकी, उत्कण्ठा और सत्यनिष्ठापूर्ण अध्ययनशीलताकी प्रतीति, रासमालाके प्रत्येक पृष्ठ पर होती रहती है। जिन अनेक मूलभूत आधारोंके ऊपरसे उन्होंने अपना ग्रन्थ तैयार किया, उनमेंका यह एक प्रबन्धचिन्तामणि है। इस ऐतिहासिक ग्रन्थका उन्होंने इतना तो संपूर्ण उपयोग किया है कि जिसे देख कर मेरे मनमें, अपने इस अनुवादके करते समय, वारवार यह उठ आता था कि मैं निरर्थक ही यह श्रम कर रहा हूँ। किन्तु प्रो० व्युह्लरने मुझसे कहा था कि इस ग्रन्थका संपूर्ण इंग्रेजी अनुवाद हो ऐसी इच्छा स्वयं फॉर्बस्ने अनेक वार प्रदर्शित की थी*। और यही मेरे इस परिश्रमकी उपयोगिताका आधार है। लेकिन, मैं अपने मनको इस तरह भी प्रोत्साहित रखना चाहता हूँ कि–मध्यकालीन इस जैन यतिने लिख रखी हुई इन श्रुतपरंपराओंमें, जिनका विवरण या स्पष्टीकरण करनेसे इनके मूलमें रही हुई आधी मोहकता नष्ट हो जाती है, न केवल भारतके इतिहासके अभ्यासियों-ही-को, किन्तु तदुपरान्त लोककथाओंके ज्ञाताओंको और मानव-नीति-शास्त्रके विद्वानोंको भी, रस प्राप्त होगा। ग्रन्थकार स्वयं भी कहता है कि–इस रचनाके करनेमें मेरा उद्देश जनमनरंजन करनेका है।" इत्यादि।

*

३. प्रबन्धचिन्तामणिके मूल संस्कृत ग्रन्थका प्रथम प्रकाशन और गुजराती भाषान्तर।

जैसा कि हमने, अपनी मूल आवृत्तिके प्रारम्भमें दिये हुए 'किंचित् प्रास्ताविक' शीर्षक वक्तव्यमें लिखा है, इस ग्रन्थके संस्कृत मूलका प्रथम प्रकाशन, गुजरातके शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथ नामक विद्वान्ने, संवत्

---

* फॉर्बस् साहबकी ऐसी इच्छा ही नहीं थी, बल्कि उन्होंने तो इसका पूरा इंग्रेजी अनुवाद खुद ही सबसे पहले कर लिया था और फिर उसका उपयोग रासमालामें किया था, ऐसा बम्बईकी फॉर्बस् सभामें जो उनका ग्रन्थसंग्रह विद्यमान है उससे मालूम होता है। बम्बईके इस संग्रहमें फॉर्बस् साहबकी हाथकी लिखी हुई एक नोटबुक है जिसमें इस ग्रन्थके ३,४ और ५ वें प्रकाशका इंग्रेजी भाषान्तर लिखा हुआ है। पहले दो प्रकाशोंका भाषान्तर, शायद किसी दूसरी नोटबुकमें लिखा हुआ होगा जो अब उपलब्ध नहीं है। श्री टॉनीको इसकी खबर न होनेसे, शायद उन्होंने वैसा लिखा होगा। अथवा वह भाषान्तर वैसा पूर्ण और शुद्ध न होगा जिससे फॉर्बस्को संतोष रहा हो, और इसीलिये उन्होंने इसका एक उत्तम भाषान्तर, योग्य संस्कृतज्ञ पण्डितके हाथसे हो, ऐसी इच्छा डॉ० व्युह्लरके आगे प्रदर्शित की हो।

१९४४ में, बम्बईसे किया था। उसीके साथ उन्होने, इसका गुजराती भाषामें अनुवाद भी छपवा कर प्रकाशित किया था। शास्त्रीजीका यह अनुवाद – जिसे अनुवाद नहीं लेकिन एक तरहका विवरण कहना चाहिए – पुराने ढंगसे और पुरानी शैलीकी भाषामें किया गया था और इसमें उन्होंने अपनी तरफसे भी बहुतसे वाक्य और विचार, जो मूलमे सर्वथा नहीं थे, खूब फैला फैला कर लिख दिये थे। परन्तु साथमें कोई ऐतिहासिक पर्यालोचनकी दृष्टिसे उपयुक्त ऐसा कुछ भी नहीं लिखा गया था। अनुवादमें – खास करके प्राकृत गाथाओं और सुभाषित रूपसे उद्धृत पद्योंके भाषान्तरमे – तो अनेकानेक बड़ी बड़ी भद्दी भूलें भी की गई हैं, जिनका यहाँ पर दिग्दर्शन कराना निरर्थक है। यहाँ पर इतना यह अवश्य कहना चाहिये कि इस उपयोगी ग्रन्थको सर्वसाधारणके लिये सुलभ बनानेका श्रेयस्कर कार्य, सबसे प्रथम उन्हीं शास्त्रीजीने किया और तदर्थ उनकी स्मृति सदैव आदरकी दृष्टिसे की जानी चाहिए।

जैसा कि, प्रथम भागरूप मूल ग्रन्थकी प्रस्तावनामे सूचित किया है, गुजरातके इतिहासकी दृष्टिसे इस ग्रन्थका महत्त्व लक्ष्यमें रख कर, हमने अहमदाबादके गुजरात पुरातत्त्व मन्दिरकी ओरसे – जिसके कि हम सर्व प्रधान संचालक और नियामक थे – इसकी एक सर्वांगपूर्ण सुविस्तृत आवृत्ति, विशुद्ध मूल और उत्तम गुजराती भाषान्तर आदिके साथ, प्रकट करनेका प्रयत्न करना शुरू किया था। यथानुक्रम, मूलका कुछ भाग संशोधित और संपादित कर, बम्बईके सुप्रसिद्ध कर्णाटक प्रेसमें छपनेको भी भेज दिया था और उसमें प्रायः प्रथमके दो प्रकाश जितना भाग छप भी चुका था। उसी बीचमें हमारा युरोप जाना हुआ और वह कार्य कुछ समयके लिये स्थगित रहा। करीब दो वर्षके बाद, वहाँसे हम जब वापस आये तो, देशमें राष्ट्रीय आन्दोलन बड़े जोरोंसे शुरू हुआ और हम भी उसमें संलग्न हो गये। सन् १९३० के अप्रेलमें, धारासणाके विख्यात नमक-सत्याग्रहमे सम्मीलित होनेके लिये, अहमदाबादसे ६०–७० जितने सत्याग्रहियोंकी एक जबर्दस्त टोली ले कर हमने प्रस्थान किया। पर अहमदाबादसे दूसरे ही स्टेशन पर, सरकारने हमको गिरफ्तार कर लिया और वहीं जंगल-ही-में मॅजिस्ट्रेटने हमको छ महिनेकी सजा दे कर, पहले बम्बई और फिर वहाँसे नासिक जेलमें भेज दिया।

इधर पीछेसे, गुजरात पुरातत्त्व मन्दिरको भी – गुजरात विद्यापीठके साथ – सरकारने कब्जे कर, उसके विशाल ग्रन्थसमूहको जब्त कर लिया और उसकी वह सब स्थिति छिन्न-भिन्न हो गई। इस तरह प्रबन्धचिन्तामणिके विस्तृत प्रकाशनका जो आयोजन हमने गुजरात पुरातत्त्व मन्दिरकी ओरसे किया था, वह एक प्रकारसे उन्मूलित हो गया। इस परिस्थितिको जान कर, बंबईकी **'फॉर्बस् गुजराती साहित्य सभा'**ने, जिसका भी प्रधान ध्येय गुजरातकी प्राचीन संस्कृतिके विविध साधनोंको प्रकाशमें लानेका है, इस ग्रन्थके प्रकाशनका कार्य हाथमें लिया और हमारे विद्वान् मित्र एवं गुजरातके इतिहासके एक विशिष्ट अभ्यासी, साक्षर श्रीदुर्गाशंकर केवलराम शास्त्रीको वह कार्य सौंपा गया। यह जान कर हमने शास्त्रीजीको हमारे मूलके छपे हुए उक्त उन दो प्रकाशोंके एडवान्स फार्म भी उनके उपयोगके लिये भेज दिये। शास्त्रीजीने यथाशक्ति परिश्रम कर, पहले ग्रन्थका मूल भाग तैयार कर उसे प्रकट करवाया और फिर उसका शुद्ध गुजराती भाषान्तर, कितनीक ऐतिहासिक टीका-टिप्पणियोंके साथ संपादित कर, उक्त सभाकी ही ओरसे प्रकाशित कराया।

४. प्रबन्धचिन्तामणिका हमारा प्रकाशन।

जेलनिवाससे मुक्त होने पर कैसे दानवीर बाबू श्री बहादुरसिंहजीकी प्रियकर प्रेरणासे हमारा जाना शान्तिनिकेतन – विश्वभारतीमें हुआ और वहाँ पर रहते हुए कैसे इस **'सिंघी जैन ग्रन्थमाला'** के प्रकाशनका कार्य प्रारंभ किया गया – इत्यादि बातें हमने, संक्षेपमें, इसके पहले भागमें उल्लिखित कर दीं हैं जिनको यहाँ पर दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है।

उक्त रीतिसे फॉर्बस् सभाकी ओरसे इस ग्रन्थका, गुजराती भाषान्तर समेत, प्रकाशन होना चाहा था, तब भी हमारे मनमें इसके प्रकाशनकी यह जो पूर्व कल्पना थी और इसके लिये जो साधन-सामग्री हमने बीसों वर्षोंसे इकट्ठी करनी शुरू की थी, उसका खयाल कर, हमने अपने उसी ढंगसे, इस ग्रन्थका पुनः संपादन करना प्रारंभ किया। और चूंकि इसका गुजराती भाषान्तर, हमारे साक्षरमित्र श्री दुर्गाशंकर शास्त्री कर चुके हैं, इसलिये हमने इसका हिन्दी भाषान्तर प्रकट करनेका मनोरथ किया। हिन्दी भाषा, यों भी सबसे अधिक व्यापक भाषा है और फिर अब तो यह राष्ट्रकी सर्व प्रधान भाषा बन रही है, इसलिये सिंघी जैन ग्रन्थमालाके कार्यका लक्ष्य हिन्दीकी ओर ही अधिक रखा गया है।

इंग्रेजी और गुजरातीमें एकसे अधिक भाषान्तर होने पर भी हिंदीमें इसका कोई भाषान्तर आज तक नहीं हुआ था, और इसकी कमी कई हिंदी भाषाभाषी विद्वज्जनोंको बहुत अर्सेसे खटक भी रही थी। हिन्दीके स्वर्गवासी प्रसिद्ध पण्डित और पुरातत्त्वज्ञ विद्वान्, चन्द्रधर शर्मा गुलेरीने बहुत वर्ष पहले हमसे अनुरोध किया था, और शायद नागरीप्रचारिणी पत्रिकाके एक लेखमें उन्होंने लिखा भी था, कि इस ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद होना आवश्यक है। आशा है गुलेरीजीकी स्वर्गस्थित आत्मा आज इसे देख कर प्रसन्न होगी।

*

५. प्रस्तुत हिन्दी भाषान्तर।

पाठकोंके हाथमें जो हिंदी भाषान्तर उपस्थित किया जा रहा है, इसका प्राथमिक कच्चा खर्डा, जब हम शान्तिनिकेतनमें थे तब (सन् १९३२ में), वहाँके हिन्दी शिक्षापीठके विद्वान् आचार्य और हमारे सहृदय मित्र पं० हजारी प्रसादजी द्विवेदीने लिखा था, जिसको हमने अपने ढंगसे यथेष्ट रूपमें संशोधित परिवर्तित कर वर्तमान रूप दिया है। इसमें संभव है कि विज्ञ पाठकोंको इसमें कहीं कहीं भाषाविषयक शैलीका कुछ कुछ भिन्नत्व मालूम दे। हमारा प्रयत्न इस बातकी ओर रहा है कि भाषा जहाँ तक हो, सरल और सबको सुबोध हो; और जिनकी मातृभाषा खास हिन्दी न हो उनको भी इसके समझनेमें कोई कठिनाई न हो। इसलिये हमने इसमें ऐसे शब्दोंका बहुत ही कम प्रयोग किया है कि जो खास हिंदीका विशेष परिचय न रखनेवाले—राजस्थानी या गुजराती भाषाभाषी—जनोंको बिल्कुल अपरिचित मालूम दें।

इस ग्रन्थकी संस्कृत मूल लेखनशैली कुछ संकीर्ण और संक्षेप-बद्ध है। वाक्य बड़े लंबे लंबे और कुछ जटिलसे हैं। क्रियापदोंका व्यवहार इसमें बहुत कम किया गया है। रचना कहीं तो शिथिलसी और कहीं निविड बन्धवाली है। इसलिये भाषान्तरमें भी हमें कहीं कहीं, मूलके अनुसार, कुछ लंबे वाक्य रखने पड़े हैं। भाषान्तरको हमने प्रायः संपूर्ण मूलानुसारी बनानेका लक्ष्य रखा है। मूलका कोई एक शब्द भी प्रायः छोड़ा नहीं गया है और न कहीं विशेष स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे कोई अधिक शब्द या वाक्यांश बढ़ाया गया है। जहाँ कहीं मूलमें संक्षिप्त सूचन या अस्पष्ट कथन है, वहाँ पाठकोंके स्पष्टावबोधके लिये, किसी अधिक शब्द या वाक्यांशके पूर्तिकी विशेष आवश्यकता मालूम दी, वहाँ उसे [ ] ऐसे चतुष्क ब्रैकेटमें समाविष्ट किया गया है। किसी खास शब्दका पर्याय वाचक दूसरा विशेष परिचित शब्द या उसका अर्थ बतानेकी कहीं जरूरत दिखाई दी उसे ( ) ऐसे गोल ब्रैकेटमें दिया गया है। प्रकरणोंकी कंडिकाओंके प्रारंभमें जो '१) २) ३)' ऐसे इटैलिक नं० ब्रैकेटके साथ अंक दिये गये हैं वे, हमारी मूल ग्रन्थकी आवृत्तिके, इस ग्रन्थका [illegible] कंडिकाओंके जो अंक हमने दिये हैं, उन्हींके बोधक हैं। मूलमें जो प्राकृत, प्राचीन और अपभ्रंश भाषाके [illegible] प्राचीन पद्य उद्धृत किये गये हैं उनको हमने [illegible] विभक्त किया है। [illegible] प्रायः सब प्रतियोंमें [illegible] भाषामें लिखे हैं और [illegible] ही प्रतिमें

मिलते हैं। इस पिछले प्रकारके पद्योंको हमने पीछेसे लिखे गये अर्थात् प्रक्षिप्त माना है; और बाकीको मौलिक। इन दोनों तरहके पद्योंके लिये हमने दो प्रकारके क्रमांक दिये हैं। जो मौलिक हैं वे '१. २. ३.' इस प्रकारके चालू अंकोंसे सूचित किये गये हैं और जो प्रक्षिप्त हैं वे '[१]-[२]-[३]' इस प्रकार चोकौनी डबल ब्रैकेटवाले अंकोसे बताये गये हैं। पद्योंकी तरह, मूल ग्रन्थमें, कुछ गद्य प्रकरण-कण्डिकाये भी प्रक्षिप्त है, जिनको हमने अपनी उस मूलावृत्तिमें तो जुदा तरहके टाईपोंमें और { } ऐसे अथवा [ ] ऐसे ब्रैकेटोंके बीचमें मुद्रित कीं हैं। यहाँ, इस भाषान्तरमे वे कण्डिकायें जुदा टाईपोंमे न छाप कर, शीर्फ उनके ऊपर, ब्लेक टाईपमें ( ) ऐसे गोल ब्रैकेटमें, अथवा चालू टाईपमें [ ] ऐसे चोकौनी ब्रैकेटमें, उसकी ज्ञापक पंक्तियाँ लिख कर, उल्लिखित कर दीं हैं। (-देखो, पृष्ठ १६, २०, ४८, ४९ इत्यादि।).

इस ग्रन्थमे जहाँ-वहाँ, जो प्रसङ्गोचित पद्य उद्धृत किये गये हैं उनमेंसे कुछ तो ऐतिहासिक घटना बतानेवाले है और कुछ सुभाषित स्वरूप हैं। इनमेंके कुछ पद्य द्विअर्थी अर्थात् श्लेषार्थक हैं जिनका स्वारस्य संस्कृत या प्राकृत भाषा-ही-में ठीक आस्वादित हो सकता है। हिन्दीमें उसका अर्थ ठीक अनूदित नहीं हो पाता। ऐसे पद्योंके अर्थके विषयमे जहाँ तक हो सका, तदन्तर्गत मुख्य भावार्थ बतलानेका ही प्रयत्न किया गया है। कोई कोई पद्य ऐसे भी दुरवबोध मालूम देते हैं जिनका तात्पर्य ठीक ठीक समझमे नहीं आता। ऐसे स्थानोंमें जो अर्थ दिये गये है वे शंकित ही समझे जायँ—जैसा कि पृ. ७७ आदि पर सूचित किया गया है।

कहीं कहीं गद्य कथनमें भी ऐसी दुरवबोधता और अस्पष्टार्थता प्रतीत होती है और उसका ठीक ठीक तात्पर्य नहीं जाना जा सकता—जैसा कि पृ. ९४ परकी टिप्पणीमें सूचित किया गया है।

ग्रन्थकारने कहीं कहीं ऐसे अपरिचित शब्दोका प्रयोग किया है जो शुद्ध संस्कृतके न हो कर देश्य भाषाके हैं और जिनका अर्थ ठीक ठीक समझमें नहीं आता। ऐसे शब्दोके दिये गये अर्थ भी सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं कहे जा सकते। इन सब शंकित स्थानों और अर्थोंके विषयमें पाठक हमें कोई दोष न दें ऐसी विज्ञप्ति है।

*

जब यह भाषान्तर छपाना शुरू किया गया तब हमारी इच्छा थी, कि हम इसके साथ, इस ग्रन्थमे वर्णित विशेष विशेष ऐतिहासिक और भौगोलिक नामोंके बारेमें, अन्यान्य साधनोंद्वारा उपलब्ध या ज्ञात बातोंका परिचय करानेवालीं विस्तृत टिप्पणियाँ दें; और इसमे जो कुछ पारिभाषिक शब्दसमूह और लोकोक्तिरूप वाक्य-विन्यास उपलब्ध होते हैं उनको स्फुट करनेवालीं व्याख्यात्मक पंक्तियाँ भी लिखें। किन्तु, जब हमने कुछ ऐसी टिप्पणियाँ और पंक्तियाँ लिखनीं प्रारंभ कीं तो उनका कलेवर इतना बढ़ता हुआ दिखाई देने लगा जो मूल ग्रन्थसे भी कहीं अधिक बढ जानेकी आशंका कराने लगा। और ये सब टिप्पणियाँ लिखनेका तो हमारा उत्कट लोभ है। क्यों कि इन्हीं टिप्पणियों द्वारा तो इस ग्रन्थका सारा महत्त्व प्रकट होनेवाला है। इसलिये फिर हमने यह विचार किया कि इन टिप्पणियो आदिका संकलनवाला एक पर्यालोचनात्मक पूरा भाग ही अलग निकाला जाय; जिससे भाषान्तरवाला यह भाग अनपेक्षित रूपसे विस्तृत न हो; और जिनको केवल प्रबन्धचिन्तामणिका मूलगत ग्रन्थसार मात्र ही पढ़ना-समझना अपेक्षित हो उनको इसके पढ़नेमें कोई कठिनता प्रतीत न हो। इसीलिये हमने पृष्ठ ३, ११, १८ आदि पर जो टिप्पणियाँ दीं है उनमें यह सूचित कर दिया है कि इन बातोंका विशेष विवेचन या ऊहापोह इसके अगले भागमें किया जायगा—इत्यादि।

यह अगला भाग, **पुरातनप्रबन्धसंग्रह** नामक, मूल ग्रन्थके पूरकात्मक द्वितीय भागके, इसी तरहके

हिन्दी भाषान्तरके प्रकट होनेके बाद, (जो अब शीघ्र ही प्रेसमें जानेवाला है) प्रकट होगा – अर्थात् हमारी सकल्पित योजनाके अनुसार, वह इस प्रबन्धचिन्तामणका ५ वाँ भाग होगा ।

*

६. प्रबन्धचिन्तामणि वर्णित ऐतिहासिक तथ्योंके विषयमें कुछ स्वाभिप्राय ज्ञापन ।

इस ग्रन्थके पढ़नेवाले पाठकोंको यह बात लक्ष्यमें रखनी चाहिये कि – यद्यपि ग्रन्थ प्रधानतया ऐतिहासिक प्रबन्धोंका समुच्चयात्मक है, तथापि इसके सब-के-सब प्रबन्ध ऐतिहासिक नहीं हैं । खास करके अन्तिम प्रकाशमें जो पुण्यसार, कर्मसार, वासना, कृपाणिका इत्यादि शीर्षक ५-७ प्रबन्ध हैं वे पौराणिक ढगके कथात्मक रूप हैं । उनमें ऐतिहासिकता खोज निकालना निरर्थक है । बाकीके अन्य बहुतसे – प्राय सब ही – ऐतिहासिक माने जा सकते हैं, पर इनमेंसे भी कुछ प्रबन्धोंमें वर्णित व्यक्तियोंके विषयमें, अभी तक इतिहासविदोंमें थोड़ा बहुत मतभेद अवश्य है। दृष्टान्तके तौरपर, प्रथम प्रकाशमें प्रारम्भ-ही-में दिये गये विक्रमार्क राजाके व्यक्तित्वके विषयमें विद्वानोंमें अभी तक कोई एक निर्णयात्मक विचार स्थिर नहीं हो पाया । वह राजा कौन था और कब हो गया इसके विषयमें अभी तक अनेक तर्क-वितर्क किये जा रहे हैं । नामके अतिरिक्त प्रबन्ध कथित और सब बातें तो एक कहानीकी अपेक्षा अन्य कोई अधिक महत्त्व नहीं रखतीं ।

यही बात सातवाहनवाले प्रबन्धके विषयमें कही जा सकती है । सातवाहन राजाका नाम यद्यपि शिलालेखों वगैरहमें उपलब्ध होता है, पर इस नामके कई राजा हो जानेसे और प्रबन्धमें वर्णित घटनाका कोई ऐतिहासिकत्व प्रतीत न होनेसे उसके विषयमें भी नामके अतिरिक्त प्रबन्धकथित समूचा वर्णन कल्पनात्मक ही मानना चाहिए ।

सातवाहनके बाद भूयराजका जो प्रबन्ध है, उसके अस्तित्वके विषयका अभीतक अन्य कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है, पर उसके ऐतिहासिक पुरुष होनेका सभव माना जा सकता है ।

इस तरह इन कुछ दो चार नामोंकी व्यक्तियोंको छोड़ कर, बाकी जितने भी नाम इस ग्रन्थमें आये हुए हैं वे सब प्राय ऐतिहासिक पुरुष हैं । हाँ उनमेंसे कुछ कुछ व्यक्तियोंका सबन्ध, परस्पर एक दूसरेके साथ, इस तरह जोड़ दिया गया है जो भ्रमात्मक है । उदाहरणके तौरपर, भोज-भीमके वर्णनवाले दूसरे प्रकाशमें, धाराके परमार राजा भोजदेवके साथ खास करके महाकवि बाण, मयूर, मानतुङ्ग और माघ आदिका जो परस्पर सम्बन्ध और समकालीनत्व वर्णन किया गया है वह सर्वथा भ्रान्त और निराधार है । ग्रन्थकारके पूर्ववर्ती और प्रसिद्ध विद्वान् प्रभाचन्द्र सूरिने, अपने प्रभावकचरित्रमें, इन व्यक्तियोंका वर्णन और ही राजाओंके समयमें दिया है और वह कुछ प्रमाणभूत भी सिद्ध होता है । तब फिर न मालूम मेरुतुङ्ग सूरिने किस आधार पर, ऐसा भ्रान्तिपूर्ण यह वर्णन अपने इस महत्त्वके ग्रन्थमें ग्रथित कर डाला है, सो समझमें नहीं आता । भोजप्रबन्धकी ये बहुतसी बातें कल्पनाप्रसूत और लोककथायें जैसी प्रतीत होती हैं । ग्रन्थकारने ये बातें किसी पुरातन प्रबन्ध आदिके आधार पर लिखी हैं या किसीके मुखसे सुन कर लिखी हैं इसके जाननेका कोई साधन अभीतक प्राप्त नहीं हुआ ।

सिद्धराज और कुमारपालके समयके जितने वर्णन इसमें ग्रथित हैं वे प्राय सब-के-सब ऐतिहासिक और आधारभूत हैं । उनके घटनाक्रममें कुछ आगे-पीछे पनका सभव हो सकता है पर उनमेंका कोई वर्णन सर्वथा निर्मूल हो ऐसा नहीं माना जा सकता ।

मेरुतुङ्ग सूरिके इस सन्दर्भमें, ऐतिहासिक दृष्टिसे, जो सबसे अधिक विशेष महत्त्वका उल्लेख पाया गया है

यह है अणहिलपुरके राजाओंके समयका कालक्रम-ज्ञापक निश्चित निर्देश। अणहिलपुरके राज्यसिंहासन पर, कौन राजा कब गद्दीपर बैठा और उसने कितने वर्ष राज्य किया इसका जो उल्लेख इस ग्रन्थमें किया गया है वैसा उल्लेख, पूर्वके अन्य किसी ग्रन्थमे नहीं मिलता। यद्यपि इस उल्लेखमें चावडा (चापोत्कट) वंशके जो संवत्सर निर्दिष्ट किये गये हैं उनकी निश्चितिके निर्णायक और समर्थक अन्य कोई वैसे प्रमाण अभीतक उपलब्ध नहीं हो पाये, तथापि उनके बाधक भी वैसे कोई प्रमाण अभीतक उपस्थित नहीं हुए। और चौलुक्य वंशके राजाओंके राज्यकालकी जो संवत्सरावलि इसमें दी गई है वह तो शिलालेख आदि अन्यान्य अनेक प्रमाणोंसे प्रायः सर्वथा निर्भ्रान्त सिद्ध हो चुकी है। इसलिये इसमे दी गई यह राजसंवत्सरावलि बडे ही महत्त्वकी और एक अद्वितीय ऐतिह्य वस्तु साबित हुई है।

७. प्रबन्धचिन्तामणिकी रचना कब और क्यों की गई।

मेरुतुङ्ग सूरिने यह ग्रन्थ कब और कहां बनाया इसका उल्लेख उन्होंने ग्रन्थके अन्तमें स्पष्ट कर ही दिया है। इस उल्लेखसे ज्ञात होता है, कि वि० सं० १३६१ में, काठियावाडके वर्तमान वढवान शहरमें उन्होंने इस ग्रन्थको पूर्ण किया। यह वह समय है, जब गुजरातके स्वाधीनत्व और स्वराज्यका सर्वनाश हुआ और विधर्मी यवनराज्य और पारवश्यका प्रादुर्भाव हुआ। मेरुतुङ्गके सामने ही अणहिलपुरका वह चौलुक्य वंश नामशेष हुआ, जिसके स्थापक पुरुषसे ले कर अन्तिम पुरुषके समय तककी गुजरातके राजकीय, सामाजिक और धार्मिक जीवनकी कुछ विशिष्ट स्मृतियां लिपिबद्ध करनेका उन्होंने इस ग्रन्थमें मौलिक प्रयत्न किया है। मेरुतुङ्ग सूरिके विचारसे, गुजरातमें – अणहिलपुर पाटनमें – वीरप्रकृति राजा वीरधवल और उसके विचक्षण मंत्री वस्तुपाल-तेजपालके बाद और कोई वैसा स्मरणीय पुरुष पैदा नहीं हुआ जिसका नामनिर्देश वे अपने इस ग्रन्थमें करते। यद्यपि वीरधवलके बाद उसके वंशजोंने प्रायः ५०-५५ वर्षतक अणहिलपुरमें राज्यसिंहासनका उपभोग किया, पर उनका शासन प्रायः निष्प्राण और निस्तेजसा ही रहा। मेरुतुङ्ग सूरिको उस शासनकालमें कोई महत्त्व नहीं माल्लम दिया और इसलिये उन्होंने उस समयकी किसी भी घटनाका उल्लेख अपने ग्रन्थमें नहीं आने दिया। उनके अभिप्रायमें, वीरधवल और वस्तुपाल-तेजपालके साथ गुजरातके ज्योतिर्मय जीवनकी समाप्ति हो गई। चाहे मेरुतुङ्ग सूरिको, इतिहासके आत्माका दिव्य दर्शन हुआ हो या न हुआ हो, पर इसमे कोई शक नहीं कि उनका यह ग्रन्थलेखन, सचमुच, इतिहासदर्शनकी एक अस्पष्ट पर सूक्ष्म कलाके आभासका उत्तम सूचन करता है। जब हम गुजरातके भूतकालीन राष्ट्रीय जीवन पर एक गहरी दृष्टि डालते हैं, तब हमें यह बहुत स्पष्टताके साथ दिखाई देता है, कि यथार्थ ही, गुजरातके भाग्याकाशमें वीरधवल और वस्तुपाल-तेजपालके बाद, अब तक, वैसा कोई ज्योतिर्धर तेजस्वी तारक उदित नहीं हुआ। और जब तक गुजरातमें पुनः वैसा पूर्ण स्वराज्य स्थापित नहीं हो पाता तब तक हम इस अन्तर्दाहक अनुभूतिको मिटा नहीं सकते।

*

मेरुतुङ्ग सूरिने इस ग्रन्थकी रचना किस लिये की—यह भी उन्होने ग्रन्थके प्रारम्भमे और अन्तमें, संक्षिप्त रूपसे सूचित किया है। वे कहते हैं कि—"बारंबार सुनी जानेके कारण पुरानी कथायें बुद्धिमानोंके मनको वैसा प्रसन्न नहीं कर पातीं। इसलिये मैं निकटवर्ती सत्पुरुषोंके वृत्तान्तोसे [संकलित ऐसे] इस प्रबन्ध-चिन्तामणि ग्रन्थकी रचना कर रहा हूं।" (—देखो पृ० २, पद्य ६ का अनुवाद). इस कथनके भावको स्पष्ट करनेके लिये, इसके नीचे एक टिप्पणी दे कर हमने उसमे कहा है कि—" पुराने जमानेमें व्याख्यानकार और कथाकार प्रायः सदा उन्हीं कथा-वार्ताओंको सुनाया करते थे जो महाभारत और रामायण आदि पुराण ग्रन्थोंमें

प्रसिद्ध हैं। एक की-एक ही कथा वारवार सुननेमें विज्ञ मनुष्योंके मनको विशेष आनन्द नहीं आता यह सर्वानुभव सिद्ध बात है। मेरुतुङ्ग सूरिने इस वातका विचार कर, लोगोंका मनरञ्जन करनेके लिये, कथाकारोंको, कुछ नई सामग्री प्राप्त हो इस उद्देशसे, कितनेएक इतिहास-वृत्तान्तोंसे अलंकृत ऐसे इस प्रबन्धचिंतामणि नामक ग्रन्थकी रचना की।"

ग्रन्थके अन्तमें वे, इस रचनाके करनेमें एक दूसरा भी कारण बतलाते हुए लिखते हैं कि–"बहुश्रुत और गुणवान् ऐसे वृद्धजनोंकी प्राप्ति प्रायः दुर्लभ हो रही है और शिष्योंमें भी प्रतिभाका वैसा योग न होनेसे शास्त्र प्रायः नष्ट हो रहे हैं। इस कारणसे तथा भावी बुद्धिमानोंको उपकारक हो ऐसी परम इच्छासे, सुधासत्रके जैसा, सत्पुरुषोंके प्रबन्धोंका संघटन रूप यह ग्रन्थ मैंने बनाया है।" मेरुतुङ्ग सूरिका यह कथन बहुत अनुभवपूर्ण और भावि परिस्थितिका द्योतक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि मेरुतुङ्ग सूरि इस ग्रन्थकी रचना द्वारा, इन पुरातन ऐतिह्य श्रुतियोंका, यह विशिष्ट संग्रह न कर जाते तो, आज हमें, उस जमानेकी इन इनीगिनी वातोंके जाननेका भी और कोई साधन उपलब्ध नहीं होता। यह सब-किसीको मंजूर करना पडेगा कि जैन धर्मके उस मध्यकालीन इतिहासकी जो अनेकानेक विश्वसनीय और प्रमाणभूत वातें, इस ग्रन्थमें उपलब्ध होतीं हैं और उसके साथ ही गुजरातके समूचे राष्ट्रीय इतिहासकी भी बहुत आधारभूत जो कथायें इसमें दृष्टिगोचर होतीं हैं, वैसी और किसी ग्रन्थमें विद्यमान नहीं हैं।

८. प्रबन्धचिन्तामणिके उल्लेखों पर कुछ विद्वानोंके मिथ्या आक्षेप।

कुछ कुछ विद्वानोंका खयाल है कि–ग्रन्थकार जैनधर्मी होनेसे, उसने इस ग्रन्थमें अपने धर्मका प्रभाव बतलानेकी दृष्टिसे, बहुत कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण कथन किया है, और उसके साथ अन्य धर्मकी–खास करके शैवधर्म और ब्राह्मण संप्रदायकी–लघुता बतानेका भी प्रयत्न किया है। इस ग्रन्थके उक्त इंग्रेजी अनुवादक मि टॉनीने अपनी प्रस्तावनामें, इस बारेमें लिखा है कि–'जिस तरह, एक्झीटर स्ट्रीटके एक छप्परके नीचेके कोनेमें बैठ कर, पार्लियामेंटके समापणोंको लेखबद्ध करते समय, डॉ० जॉनसन् इस बातकी पूरी सावचेती रखता था कि 'व्हीगके प्रतिपक्षी उसमेंसे किसी तरहका कोई लाभ न उठा पावें'–इसी तरह सभी शंकास्पद स्थानोंमें, यह अमर्षशील जैन ग्रन्थकार, स्पष्ट रूपसे महावीरके धर्मके दृढ श्रद्धालु अनुयायियों (अर्थात् जैनों) के पक्षकी ओर झुकता है, और जैन लोक, शैवोंकी तुलनामें कहीं नीचे न दिखाई दें इसकी सावधानी रखता है।' इत्यादि। इसमें कोई शक नहीं कि–ग्रन्थकार जैन धर्मका एक विद्वान् धर्माचार्य है और इस ग्रन्थकी रचनामें उसका प्रधान उद्देश जैन धर्मकी पुरातन महत्ता और गौरव गाथाको, कालके कुटिल और प्रबल प्रवाहके कारण नष्ट होनेसे बचा रखनेका है। अतएव वह इसमें अपने धर्मका उत्कर्ष बतानेवाली श्रुतियों और उक्तियोंका यथेष्ट उपयोग करे, यह स्वाभाविक ही है। उस पुराने जमानेमें, जब धार्मिक वाद-विवादकी बडी प्रतिष्ठा थी और उसका खूब जोरदार प्रचार था, एवं सभी धर्मोके और संप्रदायोंके अग्रणी विद्वान् गण अपनी अपनी विद्याका प्रभाव और पराक्रम बतलानेके लिये, राजसभाओंमें, नामी पहलवानोंके मुष्टि-प्रहारोंकी नाई, वाक्प्रहारोंकी बडी सख्त कुश्ती किया करते थे, तब उन विद्वान् ग्रन्थकारोंकी तद्विषयक रचनाओंमें, ऐसी अमर्षशील भावना और लेखन-शैलीका दृष्टिगोचर होना नितान्त स्वाभाविक ही है। केवल जैन ग्रन्थकार ही इसमें अधिक उल्लेखनीय हैं सो वात नहीं है। संसारके सभी धर्मों, संप्रदायों, मतों और मतव्योंके लेखक इससे मुक्त नहीं हैं। मेरुतुङ्ग सूरि भी उन्हींमेंका एक स्वधर्मप्रिय लेखक है, अतः उसके लेखमें, अपने धर्मको नीचा दिखाने-

वाली किसी उक्तिके न आने देनेकी सावचेतीका रखना, उसका कर्तव्य है। ब्राह्मण और शैव ग्रन्थकारोंने भी वैसा ही किया है; मुसलमान और ईसाई इतिहास-लेखकोंने भी वैसा ही किया है – और अब भी सब वैसा ही करते रहते है। इसलिये इसमें जैनधर्मके महत्त्वके प्रतिपादनका होना कोई खास दूषण नहीं है। रही बात अतिशयोक्तिकी – सो विशुद्ध इतिहासकी दृष्टिसे किसी भी प्रकारकी अतिशयोक्ति अवश्य ही आलोचनीय है और उसकी प्रामाणिकता विचारणीय है। पर जैसा कि हमने पहले ही सूचित कर दिया है, यह ग्रन्थ कोई विशुद्ध इतिहास ग्रन्थ नहीं है। यह तो कुछ पुरातन प्रकीर्ण पोथियोंमें यत्र-तत्र लिखित और कुछ कुछ वृद्ध जनोंके मुखसे यथा-तथा श्रुत ऐसी इतिहासविषयक कथा-वार्ताओंका एकत्र संकलनवाला एक संग्रह मात्र है। अतः इसमेंकी कुछ उक्तियाँ अथवा घटनाएँ, विशुद्ध इतिहासकी दृष्टिसे, यदि भ्रान्तिपूर्ण, अतिशयोक्तिपूर्ण अथवा निर्मूलप्राय भी सिद्ध हो तो उसमे कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। और खुद ग्रन्थकारको भी इस विषयमें कुछ आशंका हुई है, कि उनके इस संकलनमें, विद्वानोंको कुछ बातें संदिग्ध या भिन्नभाववाली माल्रम दें। इसलिये उन्होंने ग्रन्थारंभमें यह बात भी इस तरह कह दी है कि–"यद्यपि विद्वानों द्वारा अपनी बुद्धि [संकलना] से कहे गये प्रबन्ध [कुछ कुछ] भिन्न भिन्न भावोंवाले अवश्य होते हैं, तथापि इस ग्रन्थकी रचना सुसंप्रदाय (योग्य परंपरा) के आधार पर की गई है; इसलिये चतुर जनोको [इसके विषयमें] वैसी चर्चा न करनी चाहिए।" इस कथनको स्पष्ट करनेके इरादेसे इसके नीचे जो टिप्पणी हमने दी है उसमें लिखा है कि – "मेरुतुङ्ग सूरिने इस ग्रन्थकी संकलना करनेमें कुछ तो पुराने प्रबन्ध-ग्रन्थोंकी सहायता ली और कुछ परंपरासे चली आती हुई मौखिक बातोका आधार लिया। इस प्रकार परंपरासे सुनी हुई बातोंका परस्पर मिलान करनेमें विद्वानोको अवश्य ही उनमे कुछ-न-कुछ भिन्न भाव मालूम पडता रहता है। मेरुतुङ्ग सूरिको भी अपनी इस रचनामें कहीं कहीं ऐसा भिन्न भाव मालूम हुआ है। इस भिन्न भावके निराकरण करनेका या खुलासा करनेका उनके पास न तो कोई साधन था और न कोई उनको उसकी वैसी आवश्यकता थी। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त समझा कि हमने जो बातें इस ग्रन्थमें संकलित की हैं वे एक सुसंप्रदाय द्वारा प्राप्त की हुई हैं। इसलिये इनके तथ्यातथ्यके बारेमें चतुर मनुष्योंको चर्चा करनेसे कोई लाभ नहीं। प्रबन्धचिन्तामणिकी कुछ बातें ऐतिहासिक दृष्टिसे सर्वथा भ्रान्त भी माल्रम होतीं है लेकिन मेरुतुङ्ग सूरि उनके लिये निष्पक्ष और निराग्रह हैं।"

यद्यपि यह बात ठीक है कि मेरुतुङ्ग सूरिका मुख्य लक्ष्य जैन धर्मके महत्त्वकी ओर रहा है; तथापि उन्होने अन्य धर्मोंकी निन्दा करनेकी दृष्टिसे या अन्य धार्मिक जनोंकी हीनता बतानेकी भावनासे इसमें कुछ भी नहीं लिखा है। बल्कि प्रसङ्गोपात्त अन्य-धर्म-विषयक कुछ महत्त्वकी बातें भी उन्होंने उसी आदरकी दृष्टिसे लिखीं हैं, जैसी अपने धर्मकी लिखीं है। उदाहरणके तौरपर, मूलराजके प्रबन्धमें जो शिवपूजाका प्रभाव और शैवाचार्य कंथडी नामक तपस्वीके तपकी महिमाका वर्णन किया गया है, वह सर्वथा वैसा ही आदरयुक्त पंक्तियोंमें लिखा गया है, जैसा जिनपूजा या किसी जैन आचार्यके बारेमे लिखा गया हो। इसी तरह सिद्धराजकी माता मयणल्लाकी शिवभक्तिके विषयमे जो उल्लेख किया गया है वह भी वैसा ही निष्पक्ष भावसे भरा हुआ है। अगर मेरुतुङ्ग सूरिको शिवधर्मकी महत्ताके बारेमे अनादर होता तो वे इन उल्लेखोंको इसमें स्थान ही क्यो देते।

मुख्यतया जैन श्रोताओ (श्रावको) के सम्मुख, व्याख्यान सभामें, जैन साधुओं-यतियोके वाचने निमित्त, इस ग्रन्थकी रचना की गई है; इसलिये इसमे जैन व्यक्तियोका और उनके कार्यकलापोंका ही अधिक वर्णन होना स्वाभाविक है। पर, उसके साथ ही मेरुतुङ्ग सूरिको, गुजरातके सर्व सामान्य प्रजाकीय और राष्ट्रीय जीवनकी उन्नायक इतर व्यक्तियो और उनकी कार्य-स्मृतियोके तरफ भी अनुराग है; और इसलिये उन्होंने अपने इस संग्रहमें, उन इतर व्यक्तियोकी जीवन-स्मृतियोके भी, यथाश्रुत और यथाज्ञात वृत्तान्तोको, जहाँ-वहाँ ग्रथित

कर लेनेमें कोई संकोच नहीं किया। भोज-भीमप्रबन्धकी बहुतसी स्मृतियाँ इसी दृष्टिसे संगृहीत की गई हैं। सिद्धराजके प्रबन्धमेंकी भी बहुतसी बातें इसी आशयसे लिखी गई हैं।

*

९. मेरुतुङ्ग सूरिकी इतिहास-प्रियता।

मालूम देता है कि मेरुतुङ्ग सूरिको ऐतिहासिक बातोंमें कुछ अधिक रस था और ऐतिहासिक तथ्यपर पक्षपात था। इसलिये उन्होंने सिद्धराज और कुमारपालके जीवन विषयकी वैसी भी कुछ तथ्यभूत बातें उल्लिखित कर दीं हैं जिससे उन व्यक्तियोंके, कुछ चरित्र-दुर्बलता और स्वभाव-कृपणता आदि दोषोंकी भी, हमको झाकी हो जाती है। हेमचन्द्र सूरि आदि विद्वानोंने अपनी रचनाओंमें ऐसे दोषोंका बिल्कुल भी आभास नहीं आने दिया है।

*

इस विषयमें, मेरुतुङ्ग सूरिने सबसे अधिक महत्त्वकी जो सत्य ऐतिहासिक बात लिख डाली है वह है मंत्रीवर वस्तुपाल-तेजपालकी माता कुमारदेवीके पुनर्लग्नकी। तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक नीतिकी भावनाकी दृष्टिसे कुमारदेवीका वह पुनर्लग्न अवश्य निन्दनीय और हीन कार्य समझा जाता था। वैसे कार्यको समाज बडी हलकी दृष्टिसे देखता था और उस कार्यके करनेवाली व्यक्तिको बडे कठोर भावसे समाजसे बहिष्कृत और तिरस्कृत किये करता था। यह तो उस एक-अद्वितीय भाग्यवती कुमारदेवीका लोकोत्तर पुण्यकर्म ही था, जिसके प्रभावसे उसकी कुक्षीमें ऐसे प्रभावशाली पुत्ररत्न पैदा हुए जिनकी समता रखनेवाले पुरुष, सारे संसारके इतिहासमें भी इने-गिने ही दिखाई देंगे। इन पुत्र-पुङ्गवोंके प्रतापके कारण कुमारदेवी तत्कालीन समाजमें बडी भारी प्रतिष्ठाकी पुण्यभूमि बन सकी और सारे देशके जनोंसे बडी श्रद्धाके साथ पूजी और प्रशंसी गई। बडे-से-बडे धर्माचार्योंने, बडे-से-बडे कवियोंने, बडे-से-बडे राष्ट्रपुरुषोंने उसकी प्रतिमाकी पूजा की और उसके नामकी स्तुतियाँ गाईं। पर उसके जीवनका वह महत् प्रेमकार्य, जिसके वश हो कर उसने, अणहिलपुरके एक बडे खानदानके प्राग्वाट कुटुंबके पराक्रमी युवक ठकुर आसराजके साथ पुनर्लग्न किया था, उसकी स्मृतिका किंचित् आभास भी उन समकालीन कवियों और ग्रंथकरोंने अपनी कृतियोंमें न आने दिया। क्यों कि वह कार्य समाज और धर्मको नापसन्द था। उसकी स्मृतिको जीवित रखना अप्रिय था। श्रद्धेय और पूजनीय माता कुमारदेवीके पुण्य जीवनकी उस मानी गई कृष्णकलाका सूचन करना उन कवियोंके लिये बडा पातक कार्य था। महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल जैसे जगत्श्रेष्ठ, पुण्यप्रभावक और धर्मावतार नरशिरोमणि विधवा-विवाहसे प्रसूत पुत्ररत्न थे, इस विचारको स्मृतिमें लाना भी उन ग्रंथकारोंके लिये, शायद बडा दुःखद और दुर्विचारक कर्तव्य था। इसलिये उन्होंने अपनी कृतियोंमें इसकी कहीं भी स्मृति नहीं होने दी। उन्हींका अनुगमन करनेवाले, वस्तुपाल-तेजपालके अन्यान्य पिछले प्रसिद्ध चरित्रकारोंने भी उस बातका कहीं सूचन नहीं होने दिया। परंतु मेरुतुङ्गने अपने ग्रन्थमें इस बातका बहुत ही संक्षेपमें पर बडे स्पष्ट रूपसे उल्लेख कर दिया। ऐसा ही एक दूसरा स्पष्ट उल्लेख उन्होंने राणा वीरधवलकी माताके विषयमें भी किया है, जो भी इसी तरहका एक सामाजिक अपवादका ज्ञापक हो कर भी ऐतिहासिक तथ्य था। इन उल्लेखोंसे मेरुतुङ्ग सूरिकी सच्ची इतिहास-प्रियताका हमको अच्छा आभास हो जाता है।

बाकी उस समयके ग्रंथकारोंके विषयमें, इससे अधिक विशुद्ध इतिहास-दृष्टिकी अपेक्षाकी कल्पना करना और उनमें धार्मिक या साम्प्रदायिक भावनाके पोषक विचारोंका दोषारोप कर, उनके अबाधित कथनोंको भी उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना, एक प्रकारकी निजकी ऐतिहासिक दृष्टिकी विपर्यासताका बोध कराना है।

*

१०. ग्रन्थकारके जीवनके विषयमें।

ग्रन्थकार मेरुतुङ्ग सूरिके जीवन आदिके विषयमें कोई विशेष वस्तु ज्ञात नहीं होती। ये नागेन्द्र गच्छके आचार्य थे और इनके गुरुका नाम चन्द्रप्रभ सूरि था। धर्मदेव नामक विद्वान्—जो शायद इनके वृद्ध गुरुभ्राता या अन्य कोई गच्छवासी स्थविर साधु-पुरुष थे—उनके पाससे इन्होंने, इस ग्रन्थकी रचनामें बहुत कुछ ऐतिह्य सामग्री प्राप्त की थी। गुणचन्द्र नामक इनका प्रधान शिष्य था जिसने इस ग्रन्थकी पहली संपूर्ण प्रातीलिपि लिख कर तैयार की थी।

इनकी एक और ग्रन्थकृति उपलब्ध होती है जिसका नाम **महापुरुषचरित** है। इस ग्रन्थमें ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर—इस प्रकार पाँच तीर्थंकरोंका संक्षिप्त चरित वर्णन है। इसके अतिरिक्त और कोई इनकी कृति हमें अभीतक ज्ञात नहीं हुई।

*

अन्तमें हम आशा करते हैं कि हिन्दी-भाषा-भाषी जिज्ञासु जन, इस ग्रन्थके वाचन-मननसे अपने प्राचीन इतिहास विषयक ज्ञानमें उचित वृद्धि करेंगे; और खुद ग्रन्थकारने, ग्रन्थान्तमें जो नम्र निवेदन किया है उसकी तरफ लक्ष्य रखनेकी सूचना कर, उसी कथनको उद्धृत करते हुए, हम अपना यह प्रास्ताविक वक्तव्य समाप्त करते है।

यथाश्रुतं सङ्कलितः प्रबन्धैर्ग्रन्थो मया मन्दधियापि यत्नात्।
मात्सर्यमुत्सार्य सुधीभिरेष प्रज्ञोद्धुरैरुन्नतिमेव नेयः ॥

मार्गशीर्षपूर्णिमा, वि० सं० १९९७
भारतीय विद्या भवन
आन्ध्रगिरि (अन्धेरी), बम्बई.

—जिनविजय

श्रीमेरुतुङ्गाचार्यविरचित

प्रबन्धचिन्तामणि

॥ ॐ नमः सर्वज्ञाय ॥

श्रीनाभिभूर्जिनः पातु परमेष्ठी भवान्तकृत् । श्रीभारत्योश्चतुर्द्वारमुचित यच्चतुर्मुखी ॥ १ ॥

नृणामुपलतुल्याना यस्य द्रावकरः करः । ध्यायामि त कलावन्त गुरुं चन्द्रप्रभ प्रभुम् ॥ २ ॥

गुम्फान् विधूय विविधान् सुखेबोधाय धीमताम् । श्रीमेरुतुङ्गस्तद्गद्यबन्धाद् ग्रन्थ तनोत्यमुम् ॥३॥

रत्नाकरात् सद्गुरुसम्प्रदायात् प्रबन्धचिन्तामणिमुद्दिधीर्षो ः ।
श्रीधर्मदेवः शतधोदितेतिवृत्तैश्च साहाय्यमिव व्यधत्त ॥ ४ ॥

श्रीगुणचन्द्रगणेशः प्रबन्धचिन्तामणिं नव ग्रन्थम् ।
भारतमिवाभिराम प्रथमादर्शेऽत्र दर्शितवान् ॥ ५ ॥

भृश श्रुतत्वान्न कथाः पुराणाः प्रीणन्ति चेतांसि तथा बुधानाम् ।
वृत्तैस्तदासन्नसता प्रबन्धचिन्तामणिग्रन्थमह तनोमि ॥ ६ ॥

बुधैः प्रबन्धाः स्वधियोच्यमाना भवन्त्यवश्य यदि भिन्नभावाः ।
ग्रन्थे तथाप्यत्र सुसम्प्रदायाद् दृब्धे न चर्चा चतुरैर्विधेया ॥७॥

॥ ॐ सर्वज्ञको नमस्कार हो ॥

जिनकी चतुर्मुखी (चार मुख) लक्ष्मी और सरस्वतीका उचित द्वार है, और जो भवका अन्त करनेवाले हैं ऐसे श्री ना भि भू, परमेष्ठी जिन (ऋ ष भ ना थ) रक्षा करें[1] ॥ १ ॥

उस कलावान् प्रभु च न्द्र प्र भ नामक गुरुका मैं ध्यान करता हू जिनका कर (=हाथ, किरण) पत्थरके समान मनुष्योंको भी द्रवित करनेवाला है[2] ॥ २ ॥

---

१ इस श्लोकमें ग्रन्थकारने ब्रह्मा और जिनदेव ऋ ष भ ना थ की एक साथ स्तुति की है। ब्रह्माके चार मुख होनेसे वे च तु र्मु ख के नामसे प्रसिद्ध है। जैन शास्त्रोंमें वर्णन है कि भगवान् ऋ ष भ दे व जब धर्मोपदेश देते थे तब वे भी श्रोताओंको चार मुखवाले दिखाई देते थे। इस लिये जिन भगवानको भी च तु र्मु ख का विशेषण दिया जाता है। ब्रह्मा भी प र मे ष्ठी पदसे प्रसिद्ध हैं और जिन भगवान् भी प र मे ष्ठी कहलाते हैं। ब्रह्मा विष्णुके नाभिकमलसे पैदा हुए ऐसी पुराणोंमें प्रसिद्धि है इस लिये वे ना भि भू कहे जाते हैं और जिनदेव ऋषभनाथके पिताका नाम ना भि रा ज था इस लिये वे भी ना भि भू कहे जाते हैं।

२ इस श्लोकमें ग्रन्थकारने अपने गुरुको नमस्कार किया है जिनका नाम च न्द्र प्र भ था। चन्द्रप्रभ शब्दका श्लेषार्थ करते हुए गुरुकी तुलना चन्द्रमाके साथ की है। चन्द्रमा अपनी १६ कलाओंके कारण कलावन्त कहलाता है, ग्रन्थकारके गुरु भी अनेक विद्या-कलाओंसे अलङ्कृत होनेके कारण कलावन्त थे। चन्द्रमाके कर याने किरण चन्द्रकान्त मणिको–जो एक प्रकारका पत्थर ही है–द्रवित (जलबिन्दु युक्त) करते हैं, वैसे ही चन्द्रप्रभ गुरुके कर याने हाथ यदि पत्थरतुल्य मनुष्यके मस्तिष्क ऊपर भी पड़ते हैं तो उसको भी वे द्रवित (आर्द्र,–कोमलचित्त) बनाते हैं।

विविध प्रकारके ग्रन्थों और प्रबन्धोंको छोड़ कर बुद्धिमानोंको सुखसे जिनका बोध हो सके इसलिये गद्यरचना द्वारा ही मैं मे रु तुं ग इस ग्रन्थकी रचना करना चाहता हूं[३] ॥ ३ ॥

रत्नाकर (समुद्र) समान सद्गुरु सम्प्रदायसे, जब मेरी इस प्रबंधरूप चिन्तामणि (रत्न) के उद्धार करनेकी इच्छा हुई तो श्री ध र्म दे व ने सैकडो बार इतिहासकी बातें कह कहकर मानों मेरी सहायता की[४] ॥४॥

जिस प्रकार म हा भा र त ग्रन्थका प्रथम आदर्श (पहली नकल) गणेश (गजाननने) तैयार किया, उसी प्रकार इस प्रबन्धचिन्तामणि नामक नये ग्रंथका प्रथम आदर्श गु ण च न्द्र नामक गणेश (गच्छपति) ने सुन्दर रितिसे तैयार किया[५] ॥ ५ ॥

वारंवार सुनी जानेके कारण पुरानी कथायें बुद्धिमानोंके मनको वैसा प्रसन्न नहीं कर पातीं । इस लिये मैं निकटवर्ती सत्पुरुषोंके वृत्तान्तोसे [संकलित ऐसे] इस प्रबंधचिन्तामणि ग्रन्थकी रचना कर रहा हूं[६] ॥ ६ ॥

यद्यपि विद्वानों द्वारा अपनी बुद्धि [संकलना] से कहे गये प्रबंध [कुछ कुछ] भिन्न भिन्न भावों वाले अवश्य होते हैं; तथापि इस ग्रंथकी रचना सुसम्प्रदाय (योग्य परंपरा) के आधारपर की गई है; इसलिये चतुर जनोंको [इसके विषयमें] वैसी चर्चा न करनी चाहिये[७] ॥ ७ ॥

---

३ मे रु तुं ग सू रि ने इस ग्रंथकी रचना की उसके पूर्व, कुछ गद्य और कुछ पद्यमे, कुछ प्राकृत और कुछ संस्कृतमें, कुछ पुरातन अपभ्रंश और कुछ अर्वाचीन देश्य भाषामें, इस प्रकारके कई छोटे बडे प्रबन्धात्मक ग्रन्थ विद्यमान थे। उन ग्रन्थोंमेसे अपनी मनोरुचिके अनुसार कितने एक विषय चुनकर मे रु तुं ग ने सरल संस्कृत गद्य रचना द्वारा इस ग्रन्थका संकलन किया।

४ ग्रन्थकार मेरुतुंगसूरिके ध र्म दे व नामक कोई वृद्ध गुरुभ्राता अथवा गुरुजन थे जिन्होंने समय समय पर इतिहासकी सैंकडो पुरानी बाते सुना सुनाकर इस ग्रन्थकी रचना सामग्रीमें यथेष्ट सहायता दी। इस लिये ग्रन्थकारने अपने गुरुके बाद उनका भी सम्मानपूर्वक इस श्लोक द्वारा स्मरण और उपकृत भाव प्रदर्शित किया है।

५ जैन ग्रन्थोंमें यति-मुनियोंके समुदायको गण नामसे भी उल्लिखित किया जाता है। गणका नायक जो सूरि-आचार्य होता है उसे गणेश–गणपति–गणनायक–आदि शब्दोंसे सम्बोधित किया जाता है। प्रबन्धचिन्तामणिका प्रथम आदर्श तैयार करनेवाले गु ण च न्द्र नामक गणी थे जो शायद मेरुतुंगसूरिके प्रधान शिष्य हों और उनके बाद उनके पट्टधर गणनायक बने हों। गणेश शब्दसे, ग्रंथकारने पुराण प्रसिद्ध देव ग ण प ति (ग जा न न-वि ना य क) जिन्होने वे द व्या स कथित महाभारतकी प्रथम नकल की, उसके साथ यहां पर श्लेषार्थ कर अर्थ घटना बताई है।

६ पुराने जमानेमें व्याख्यानकार और कथाकार प्रायः सदा उन्हीं कथा-वार्ताओंको सुनाया करते थे जो महाभारत और रामायण आदि पुराण ग्रन्थोंमे प्रसिद्ध हैं। एककी एकही कथा वारंवार सुनकर विज्ञ मनुष्योंके मनको विशेष आनन्द नहीं आता यह सर्वानुभव सिद्ध बात है। मेरुतुंगसूरिने इस बातका विचार कर, कथाकारोंको, लोगोका मनोरंजन करनेके लिए कुछ नई सामग्री प्राप्त हो इस उद्देश्यसे, कितने एक इतिहास प्रसिद्ध और निकट समयवर्ती श्रेष्ठ पुरुषोके ऐतिहासिक वृत्तान्तोंसे अलंकृत ऐसे इस प्रबन्धचिन्तामणि नामक ग्रन्थकी रचना की। ग्रन्थकारका यह कथन खास ध्यान देने योग्य है।

७ मेरुतुंगसूरिने इस ग्रन्थकी संकलना करनेमें कुछ तो पुराने प्रबन्ध-ग्रन्थोंकी सहायता ली और कुछ परंपरासे चली आती हुई मौखिक बातोंका आधार लिया। इस प्रकार परंपरासे सुनी हुई बातोका परस्पर मिलान करनेमें विद्वानोको अवश्य ही उनमें कुछ न कुछ भिन्नभाव मालूम पडता रहता है। मेरुतुंगसूरिको भी अपनी इस रचनामें और दूसरी अन्यकृत रचनामे कहीं कहीं ऐसा भिन्नभाव मालूम हुआ है। इस भिन्नभावका निराकरण करनेका या खुलासा करनेका उनके पास न तो कोई साधन था और न कोई उनको उसकी आवश्यकता थी। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त समझा कि–हमने जो बातें इस ग्रन्थमें संकालित की हैं वे एक सुसंप्रदाय द्वारा प्राप्त की हुई हैं। इस लिये इनके तथ्यातथ्यके बारेमें चतुर मनुष्योंको चर्चा करनेसे कोई लाभ नहीं। प्रबन्धचिन्तामणिकी कुछ बातें ऐतिहासिक दृष्टिसे सर्वथा भ्रान्त भी मालूम होती हैं लेकिन मे रु तुं ग सू रि उनके लिये निष्पक्ष और निराग्रह हैं–यह बात इस श्लोकगत कथनसे सूचित होती है।

१. विक्रमार्क राजाका प्रबन्ध।



१ इस पृथ्वीतल पर विक्रमादित्य [कालक्रमसे] अन्तिम राजा होते हुए भी, अपने शौर्य औदार्य आदि गुणोंसे वह प्रथम और अद्वितीय राजा हुआ[1]। श्रोताओंके कानोंमें अमृतकासा आसिंचन करनेवाला उस राजाका इतिवृत्त बहुत कुछ विस्तृत है। हम यहा पर, ग्रथकी आदिमें उसीका सक्षेपमें कुछ वर्णन करते हैं *।

१) वह इस प्रकार है–अवन्ति देशके[2] सुप्रतिष्ठान[3] नामक नगरमें असम साहसका एक मात्र निधि, दिव्य लक्षणों (चिह्नों)से लक्षित, सत्कर्म, पराक्रम इत्यादि गुणोंसे भरपूर ऐसा एक विक्रम नामक राजपूत (राजपुत्र) था। आजन्म दरिद्रतासे तग होता हुआ भी वह अति नीति-परायण था, सैंकड़ों उपाय करके भी जब धन नहीं प्राप्त कर सका तो एक वार भट्टमात्र नामक मित्र के साथ रोहणपर्वतको चला। उसके निकटवर्ती प्रवर नामक नगरमें [एक] कुम्हारके घर विश्राम करके प्रात काल उस कुम्हारसे भट्टमात्रने कुदाल मागा। उसने कहा–इस जगह खानके भीतर जाकर प्रात काल पुण्यात्मक नामका श्रवण करके, ललाटको हथेलीसे स्पर्श कर 'हा दैव!' ऐसा कहकर चोट मारनेसे, दुर्भागी मनुष्यको भी अपनी प्राप्तिके अनुसार रत्न मिलते हैं। उस भट्टमात्रने कुम्हारसे इस वृत्तान्तको भली भाँति सुन लिया पर विक्रमसे इस प्रकारकी दीनता करानेमें वह असमर्थ था। उन साधनोंको साथ लेकर विक्रम जब उस स्थानमें कुदालका प्रहार करनेको उद्यत हुआ तो उस उसम उसने [अकस्मात्] विक्रमसे इस प्रकार कहा कि–'अवन्तीसे आए हुए किसी वैदेशिकसे घरका कुशल समाचार पूछने पर उसने आपकी माताका मरण बताया है!' इस तप्त वज्र-शूची (हीरा छेदनेकी सुई–हीराकणी) के समान वचनको सुनकर विक्रमने हथेलीसे माथा ठोंककर 'हा दैव!' ऐसा कहा और कुदालको हाथसे फेंक दिया। उस कुदालके अग्रभागसे फटी हुई जमीनमेंसे सवा लाख मूल्यका चमकता हुआ रत्न (हीरा) प्रादुर्भूत हुआ। भट्टमात्र उसे लेकर

---

१ मध्यकालीन प्रबन्धकारोंकी यह मान्यता थी कि विक्रमादित्यके बाद उसके जैसा पराक्रमी, शूर, वीर, उदारचेता और कोई राजा नहीं हुआ। उसके पहलेके युगमें यद्यपि पुराणप्रसिद्ध अनेक राजा हुए जो इन गुणोंसे यथेष्ट अलकृत थे, तथापि वे भी विक्रमके जैसे सपूर्ण आदर्श नृपति नहीं थे। इसलिये इन गुणोंकी दृष्टिसे विक्रम उन राजाओंमें भी सर्व प्रथम स्थान प्राप्त करता है और इसीलिये इस पद्यमें, ग्रथकारने उसको कालक्रमसे अन्तिम होनेपर भी गुणक्रममें वह सर्व प्रथम था, ऐसा कहा है। प्रबन्धचिन्तामणिका इग्रेजी भाषामें जो अनुवाद टॉनी नामक इग्रेज विद्वान्ने किया है, उसमें उसने अन्त्य इस शब्दका अर्थ अन्त्यज–हीन जातीय (of Lowest rank) ऐसा किया है, लेकिन वह भ्रमात्मक है। विक्रम हीन जातीय था ऐसा कहीं भी कोइ उल्लेख नहीं मिलता। प्रबन्धोंमें विक्रमका कहीं तो राजपूत जातिके परमारवश में उत्पन्न होना लिखा है और कहीं हूणवश में, ये दोनों ही प्रसिद्ध राजवश हैं। इस विषयकी विशेष चर्चा हम अगले भागमें करेंगे।

* इस प्रबन्धचिन्तामणिकी रचनाके पूर्व, विक्रमविषयक कई चरित्र और प्रबन्ध बने हुए विद्यमान थे। ये चरित्र प्रबन्ध बहुत कुछ विस्तृत और विविध वर्णनवाले थे। उनमेंसे कुछ थोडेसे वर्णन, सक्षेप करके, मेरुतुगसूरिने यहापर ग्रथित किये हैं। विक्रम विषयक इस विविध साहित्यका विशेष परिचय हम यथास्थान अगले ग्रथमें लिखेंगे।

२ वर्तमान मालवेका प्राचीन नाम अवन्ती था।

३ मालवा याने अवन्तीमें सुप्रतिष्ठान नामक कोई नगरका उल्लेख कहीं नहीं मिलता। अवन्तीकी राजधानी प्राचीन काल ही से उज्जयिनी प्रख्यात है और विक्रमकी राजधानी यही उज्जयिनी थी। इसलिये सभव है कि ग्रथकारने इसी उज्जयिनी को सुप्रतिष्ठान–जिसका प्रतिष्ठान=स्थापन खूब दृढ है–इस विशेषणसे उल्लिखित किया हो। उज्जयिनीके विशाला आदि और भी उपनाम थे, इसलिये यह भी सभव है कि यह सुप्रतिष्ठान भी उसका एक उपनाम हो। दक्षिण अर्थात् महाराष्ट्रकी पुरानी राजधानी प्रतिष्ठान नगरी थी–जो वर्तमानमें निजाम राज्यमें गोदावरीके कॉंठेपर पैठण नामक कसबेसे प्रसिद्ध है–उसकी प्रतिस्पर्धामें भी शायद उज्जयिनीको सुप्रतिष्ठान नाम प्रदान किया गया हो।

विक्रमके साथ लौट आया। फिर उसके शोकरूपी शंकुकी शंकाको दूर करनेके लिये, भट्टमात्रने खानका वृत्तान्त बताते हुए, तत्काल ही उसकी माताका कुशल समाचार कहा। विक्रमने इसे भट्टमात्रकी सहज लोलुपता समझकर उसके हाथसे रत्न छीन लिया, और फिर खानके पास पहुँचा और बोला–

२. गरीबोंके दरिद्रतारूप घावको भरनेवाले इस रोहणगिरिको धिक्कार है जो [इस प्रकार] अर्थिजनों [याचकों] से 'हा दैव!' ऐसा कहलाकर फिर रत्न देता है।

यह कह कर उसने सब लोगोंके सामने उस रत्नको वहीं फेंक दिया। फिर देशान्तर भ्रमण करता हुआ अवन्तीकी सीमामें पहुँचा। वहां पर, नगारेकी मनोरम ध्वनि सुनकर और उसके कारणका वृत्तान्त जानकर उसका स्पर्श किया[1]। फिर उस भट्टमात्रके साथ वह राजमन्दिरमें आया। [ज्योतिषीसे] बिना पूछे हुए उसी मुहूर्तमें दिनभरके लिये मंत्रियोंने उसे राज-पदपर अभिषिक्त किया। उसने अपनी दूरदर्शितासे समझ लिया कि इस राज्यपर कोई प्रबल राक्षस या देवता क्रुद्ध होकर प्रतिदिन एक एक राजाका संहार करता है और राजाके अभावमें देशका विनाश करता है। इसलिये भक्ति या शक्तिसे उसका अनुनय करना उचित है। यह सोच, नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य आदि बनवाकर, सायंकाल चंद्रशाला (राजमहलका ऊपरी हिस्सा) में सब कुछ सजा कर रखा। रातकी आरती हो जानेके बाद, अंगरक्षकोंसे भारशृंखलामें लटकते हुए पलँगपर अपने पट्ट-दुकूल आदिसे आच्छादित तकियाको रखवाकर, स्वयं प्रदीपच्छायामें–अर्थात् ऐसी जगहपर जहाँ प्रदीपका प्रकाश नहीं पड़ता था,–जाकर बैठ गया। हाथोंमें तलवार धारण किये हुए, और धैर्यमें जिसने तीनों लोकको जीत लिया वैसा वह चारों ओर [तीक्ष्ण दृष्टिसे] देखता रहा। एकाएक घोर अर्द्धरात्रिको खिड़कीके रास्ते पहले धुआँ उठा, फिर ज्वाला निकली और बादको साक्षात् प्रेतकी प्रतिमूर्तिके समान एक विकराल वेतालको उसने आते देखा। भूखसे उस वेतालका पेट फक हो रहा था, [इसलिये पहले] उसने खूब इच्छापूर्वक उन भोज्य द्रव्योंको खाया, फिर गंध द्रव्योंको शरीरमें लगाया और पान खाकर सन्तुष्ट होकर फिर वहीं पलँगपर वह बैठ गया और विक्रमादित्यसे बोला–'अरे मनुष्य! मेरा नाम अग्निवेताल है, देवराज (इन्द्र) के प्रतीहार रूपसे मैं प्रसिद्ध हूं। मैं प्रतिदिन एक एक राजाको मारता हूं। पर [आज] तुम्हारी इस भक्तिसे संतुष्ट होकर मैंने तुम्हें अभयदानपूर्वक यह राज्य दे दिया है। पर इतना भक्ष्य-भोज्य मुझे सदैव देना। इस प्रकार दोनोंमें तै होनेके बाद, कुछ काल बीतनेपर, विक्रमराजाने [उससे] अपनी आयु पूछी। तब वह यह कहकर चला गया कि–'मैं तो नहीं जानता पर स्वामी (इन्द्र) से जानकर तुम्हें बताऊँगा।' फिर दूसरी रातको वह आया और विक्रमसे बोला कि–'इन्द्रने तुम्हारी आयु सौ सालकी बताई है।' राजाने अपने मित्रधर्मका अधिक आरोप करके इस प्रकार अनुरोध किया कि–'इन्द्रसे मेरी आयु सौ वर्षसे एक वर्ष अधिक या कम करा दो!' उसने यह अंगीकार किया और फिर दूसरे दिन आकर यह बात कही–'महेन्द्रके किये भी [तुम्हारी आयु] निन्यानवे या एक सौ एक वर्ष नहीं होगी।' इस निर्णयके जान लेनेपर, राजा दूसरे दिन उसके लिये भक्ष्य-भोज्य न बनवाकरके, लड़ाईके लिये सज्जित होकर रातमें तैयार रहा। वह वेताल भी यथारीति आकर उन भक्ष्य-भोज्योंको न पाकर क्रुद्ध हुआ और उसने राजा ऊपर आक्रमण किया। बड़ी देरतक उन दोनोंमें युद्ध होता

---

१ प्राचीन कालमें यह प्रथा थी कि राज्यकी ओरसे किसी साहस या दुष्कर कार्यके करने-करवानेकी घोषणा जब कराई जाती थी, तब एक विशिष्ट राजपुरुष, कुछ अन्य राजकर्मचारियों–सैनिको आदिको साथ लेकर, नगरके प्रधान प्रधान राजमार्गोंसे ढोल या नगारा बजवाता हुआ घूमता फिरता और मुख्य मुख्य स्थानोंपर खड़ा होकर जो कार्य करना-करवाना हो उसकी उद्घोषणा करता। जिस मनुष्यको वह कार्य करना अभीष्ट होता वह उस घोषणाके बाद उस ढोल या नगारेको अपना हाथ लगाता, जिससे वे राजकर्मचारी यह समझ लेते कि इस मनुष्यको यह कार्य करना सम्मत है। फिर उस मनुष्यको वे सम्मानके साथ प्रधान या राजाके पास ले जाते।

रहा। बादको पुण्यबलके सहायसे राजाने उसे पृथ्वी तलपर पटक दिया, और उसकी छातीपर पैर रखकर कहा कि–' इष्ट देवताका स्मरण करो ! ' तब वह बोला कि–' मैं तुम्हारे अद्भुत साहससे सतुष्ट हूँ। तुम जो करनेको कहो उस आदेशका पालन करनेवाला मैं अ ग्नि नामक बेताल तुम्हें सिद्ध हुआ। ' ऐसा होनेपर उसका राज्य निष्कटक हुआ। इसी तरह अपने पराक्रमसे दिग्मण्डलको आक्रान्त करनेवाले उस राजाने छानवे प्रतिद्वन्द्वी राजाओंके राज्यको अपने अधिकारमें किया।

> ३. जगली हाथी, तुम्हारे शत्रुओंके [उजड पड़े हुए] घरोंकी स्फटिक निर्मित दीवालपर दूरसे अपनी परछाईं देखकर, उसे प्रतिद्वद्वी हाथी समझकर, क्रोधसे आघात करता है। [उस आघातके कारण] फिर जब उसका दाँत टूट जाता है तो उसे ही हथिनी समझकर धीरे धीरे सा ह स[1] के साथ उसका स्पर्श करता है।

इस[2] प्रकार, का लि दा सा दि महाकवियों द्वारा की हुई स्तुति (प्रशसा) से अलकृत होते हुए उसने चिरकाल तक विशाल साम्राज्यका उपभोग किया।

अब यहाँपर प्रसगसे महाकवि का लि दा स की उत्पत्ति संक्षेपमें कहते हैं–

२) अ व न्ती नामक नगरीमें राजा वि क्र मा दि त्य की लड़की प्रि य गु म ज री थी। वह अध्ययनके लिये व र रु चि नामक पडितको समर्पण की गई। बुद्धिमती होनेके कारण सभी शास्त्रोंको उसने उस पडितसे कुछ ही दिनोंमें पढ़ लिया। वह पूर्ण यौवनावस्था प्राप्त कर चुकी थी, और नित्य अपने पिताकी सेवा करती थी। किसी समय, वसन्त कालमें दोपहरको–जब कि सूर्य सिरपर आगया था, वह खिड़कीके सामने एक सुखासन (सोफा) पर बैठी हुई थी, इसी समय उपाध्याय (व र रु चि) रास्तेमें चलते हुए खिड़कीकी छायामें कुछ विश्राम लेने खडे रहे। कुमारीने उन्हें देखा और खूब पके हुए आमके फलोंको दिखाया। उसने समझा कि ये (उपाध्याय) इन फलोंके लोलुप हैं, और बोली–' आपको ये फल ठडे रुचेंगे या गरम ? ' उसकी इस बातकी चातुरीको न समझते हुए उस (उपाध्याय) ने कहा कि–' गरम ही चाहते हैं ' इस प्रकार कह कर, उस उपाध्यायने अपना वस्त्र फैलाया जिसमें उसने ऊपरसे वे फल नीचे फेंके। लेकिन फल पृथ्वीपर गिर पडे और उससे उनमें धूल लग गई। व र रु चि हाथ में लेकर मुँहसे फूक फूक कर उस धूलको झाड़ने लगा। राजकन्याने उपहासके साथ कहा–' क्या ये बहुत गरम हैं कि जिससे मुहसे फूक कर ठडा कर रहे हो ? ' उसकी इस बातसे चिढ़कर उस ब्राह्मणने कहा–' ऐ अपनेको चतुर समझनेवाली अभिमानिनि ! तू गुरुके साथ ऐसा मजाक कर रही है, जा तुझको पशुपाल पति मिलो '। इस प्रकार उनका शाप सुनकर उसने कहा– ' आप तो श्रेष्ठ हैं, लेकिन मैं तो, आपसे अधिक विद्वान् होनेके कारण जो आदमी आपका भी गुरु होगा, उसीसे विवाह करूँगी। ' उसने इस प्रकार प्रतिज्ञा की। इसके बाद वि क्र मा दि त्य जब कन्याके लिये उचित श्रेष्ठ वर पाने की चिन्तारूपी समुद्रमें डूब रहे थे, तो वह पडित जिसे राजाने अभिलषित वर की खोज करनेका आग्रहपूर्वक आदेश कर रखा था, एक बार एक जगलमें घूमता हुआ पिपासासे व्याकुल हुआ। जब

---

१ मूलमें यहापर ' साहसाङ्क ' ऐसा सविभक्तिक पाठ है इसलिये इसे हाथीका विशेषण मान कर यह अर्थ किया गया है। प्रत्यतरोंमें ' साहसाङ्क ' ऐसा निर्विभक्तिक पाठ भी मिलता है जो अर्थदृष्टिसे सबोधनात्मक हो सकता है। उस अर्थमें यह ' हे साहसाङ्क ! ' ऐसा विक्रमका विशेषण हो सकता है। वि क्र म का उपनाम सा ह सा ङ्क था, इसके यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं।

२ यह जो राजाकी स्तुतिका पद्य उद्धृत किया गया है यह महाकवि का लि दा स का बनाया हुआ है, ऐसा मेरुतुगका मतव्य मालूम देता है।

चारों ओर कहीं जल नहीं मिला तो एक पशुपालको देखकर उससे जल मांगा। उसने जलके अभावमें दूध पीनेको कहा और बोला कि–' करचंडी ' करो। उसके ऐसा कहने पर व र रु चि बड़ी चिन्तामें पड़ गया, क्यों कि उसने इसके पहले यह शब्द किसी भी कोष ग्रंथमें नहीं पढा सुना था। उस पशुपालने उसके मस्तक पर हाथ रखकर और भैंसके नीचे बिठाकर, दोनों हथेलियों को जोड़कर 'करचंडी' नामक मुद्रा बताकर, उसे पेट भर कर दूध पिलाया। उस (उपाध्याय)ने अपने मस्तक पर हाथ रखनेके कारण और एक ' करचंडी ' इस विशेष शब्दके बतानेके कारण, उसे गुरुके समान समझा और फिर उसको ही उस राजकुमारीका समुचित पति निश्चित किया। भैंसोंसे हटाकर उसे अपने महलमे ले आया और ६ महिने तक उसके शरीरकी शुश्रूषा करते हुए " ओं नमः शिवाय " इस आशीर्वादको पढ़ाया। ६ महिने बाद जब पण्डितने समझ लिया कि ये अक्षर उसे कण्ठस्थ हो गये हैं तो एक दिन शुभ मुहूर्तमें उसको अच्छी तरह श्रृंगार कराके उसे राजसभामें ले गया। राजाको आशीर्वाद देते समय, बहुत बारका अभ्यस्त वह आशीर्वाद भी, सभाक्षोभके कारण "उ श र ट" इस प्रकारके शब्दमें बोल गया। उसकी इस ऊटपटांग बातसे राजा विस्मित हुआ। व र रु चि ने उसकी [मूर्खता छिपाने और] चतुरता बतानेके लिये राजाके सामने कहा–

४. उमाके साथ रुद्र जो, शङ्कर और शूलपाणि है।
रक्षा करें तुम्हारी हे राजन्, टंकारके बलसे जो गर्वित है॥

इस प्रसिद्ध श्लोकद्वारा [जिसके चारों चरणोंके प्रथमाक्षरोंसे ' उशरट ' शब्द बनता है] व र रु चि ने उसके पाण्डित्यकी गंभीरताका विस्तारपूर्वक विवेचन किया। उसकी बातसे प्रसन्न होकर, राजाने उस भैंस चरानेवालेसे अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया। पर पण्डितके सिखानेसे वह सदा मौन ही रहा करता। राजकन्याने उसकी चतुरता जाननेके लिये, कोई नई लिखी हुई पुस्तकके संशोधनका उससे अनुरोध किया। उसने उस पुस्तकको हथेलीपर रखकर, नहरनी लेकर, सारे अक्षरोंको बिंदु और मात्रासे रहित कर दिया। उसे ऐसा करते देख राजपुत्रीने निर्णय किया कि यह तो मूर्ख है। तबसे सर्वत्र ही ' जा मा तृ शु द्धि '[1] की कहावत प्रचलित हुई। एक बार दीवालपरके चित्रमें भैंसोका झुण्ड देखकर, आनंदित होकर, वह अपनी प्रतिष्ठा भूल गया और उनके बुलानेकी विकृत बोली बोलने लगा। तब राजकुमारीने निश्चय किया कि यह निरा पशुपाल–भैंसोंका चरवाहा है। फिर वह (चरवाहा) राजकन्याकी अवज्ञा देखकर विद्वत्ताके लिये कालिकाकी आराधना करने लगा। अपनी पुत्रीके वैधव्यसे शंकित होकर राजाने[2] रातके समय गुप्त वेशमें दासीको भेजा। उसने यह कहकर कि–' मैं तुझे तुष्टमान हुई हूँ ' ज्यों ही उठाने लगी त्यों ही विप्लवकी आशंकासे, स्वयं कालिका देवीने ही प्रत्यक्ष होकर उसे अनुगृहीत किया। इस वृत्तान्तको सुनकर राजकुमारी प्रमुदित हुई और आकर बोली कि–' क्या कुछ विशेष वाणी प्राप्त हुई है ? ' उसके ऐसा कहनेपर वह तभीसे का लि दा स नामसे प्रसिद्ध हुआ और उसने कु मा र सं भ व प्रभृति ३ महाकाव्य और ६ प्रबंध बनाये।

–इस प्रकार यह कालिदासकी उत्पत्तिका प्रबंध है॥ १॥

---

१ 'जामातृ शुद्धि ' की कहावत हिंदीमे या गुजराती भाषामे प्रचलित हो ऐसा ज्ञात नहीं हुआ; लेकिन मराठी भाषामें 'जवाइ शोध ' नामकी कहावत प्रचलित है। विक्रमकी और और कथाओंमें भी इसका उल्लेख मिलता है इससे ज्ञात होता है पुराने समयमें यह कहावत गुजरात आदि देशोंमें भी प्रचलित होगी।

२ पुत्रीको वैधव्य प्राप्त होनेकी शंका राजाको इसलिये हुई कि वह पशुपाल आमरणांत उपवास करनेकी प्रतिज्ञा करके देवीकी आराधना करने बैठा था। मेरुतुंगसूरिका यह ग्रन्थ बहुत ही संक्षिप्त शैलीमें लिखा हुआ है, इसलिये इसमे बहुतसी बातें अध्याहृत रहती हैं। दूसरे निबन्धोंमें ये बातें खुलासेके साथ लिखी हुई मिलती हैं।

३) एक बार, उस नगरका निवासी दा ता नामक सेठ, हाथमें भेंट लेकर आया और सभामें बैठे हुए वि क्र मा दि त्य को प्रणाम करके कहने लगा–' महाराज, मैंने शुभ मुहूर्तमें प्रधान बढ़इयोंसे एक धवलगृह (महल) बनवाया, और उसमें बड़े उत्सवके साथ प्रवेश किया। मै जब रातको उसमें पलँग-पर पड़ा हुआ, आधा-सोया, आधा-जागा वाली अवस्थामें था उस समय 'गिरता हूँ ' इस प्रकारकी मैंने आकस्मिक वाणी सुनी। मैं मारे डरके ' मत गिरो ' यह कहता हुआ उसी समय वहाँसे भाग निकला। उस मकानके बनवानेके सबंधमें ज्योतिषियों और कारीगरोंको समय समय पर जो धन दान किया गया है वह मेरे ऊपर वृथा दण्ड ही हुआ। अब इस विषयमें महाराज जो उचित समझें करें। ' राजाने उस सेठकी बात भली भाँति सुनकर, उस धवलगृहका मूल्य जो तीन लाख उसने बताया, वह उसे चुकाकर, उसको स्वायत्त कर लिया। सायकाल होनेपर, सर्वावसर[1] यानि राजसभामें बैठकर, तत्संबधी सब कार्योंसे निवृत्त होकर, उस घरमें सुखपूर्वक जा सोया। उसी ' गिरता हूँ ' इस वाणीको सुनकर वह असम साहसी राजा बोला कि ' जल्दी गिरो। ' और उसके ऐसा कहते ही पास ही गिरे हुए सुवर्ण पुरुषको उसने प्राप्त किया।

–इस तरह यह सुवर्ण पुरुषकी सिद्धिका प्रबन्ध है ॥ २ ॥

४) एक दूसरे अवसरपर कोई अभागा पुरुष, अपने हाथसे बनाये हुए एक लोहेका दुबला पतला दरिद्र नामक पुतला लेकर द्वारपर आया। जब द्वारपाल उसे राजाके पास ले गया तो उसने कहा कि–' महाराज, आप जैसे स्वामीसे शासित इस अ व न्ती पु री में सभी चीजें जल्दी बिक जाती हैं और मिल जाती हैं, ऐसी प्रसिद्धि जानकर मैंने चौरासी चौहटोंपर विक्रयके लिये इस दरिद्र-पुतलेको घुमाया, लेकिन किसीने इसे नहीं खरीदा और उल्टी मेरी भर्त्सना की गई। आपकी इस नगरीका यह कलक यथार्थ रीतिसे आपको बताकर, क्या मैं जैसे आया था वैसे ही चला जाऊं ' यह आपसे पूछने आया हूँ। ' उसकी इस घटनाको पुरीका एक महान् कलक समझकर राजाने उसी समय उसे एक लाख दीनार देकर, लोहेके उस दरिद्र-पुतलेको खरीद लिया और अपने खजानेमें रखवा दिया। ऐसा करनेपर उसी रातको, सुख पूर्वक सोये हुए राजाके निकट, पहले पहरमें हाथियोंकी अधिष्ठात्री देवता, दूसरेमें घोड़ोंकी अधिष्ठात्री देवता और तीसरेमें लक्ष्मीने आविर्भूत होकर कहा कि– ' महाराजने जब दरिद्र-पुतलेको खरीद लिया है तो, फिर हमारा यहाँ रहना उचित नहीं है '– यह कह, अनुज्ञा लेकर वे चले जानेको पूछने आये, तो राजाने अपना साहस भग न हो इसलिये उनको जानेकी अनुमति दे दी। चौथे पहरमें कोई दिव्य तेज सम्पन्न उदार पुरुष प्रकट हुआ और बोला कि–' मैं सत्त्व (साहस) हूँ, जानेके लिये आपकी अनुज्ञा चाहता हूँ '। उसके ऐसा पूछनेपर राजा हाथमें तलवार लेकर जब आत्मघात करनेको उद्यत हुआ तो फिर उसने हाथ पकड़कर कहा कि–' मैं तुष्टमान हुआ ' और राजाको उस कृत्यसे रोका। सत्त्वके वहीं रहनेपर हाथी आदिकी तीनों अधिष्ठात्री देवतायें लौटकर राजासे बोलीं–'जानेके सकेतको नष्ट करके सत्त्वने हमें धोखा दिया है। इसलिये राजाको छोड़कर हम लोगोंका जाना अब उचित नहीं है। इस प्रकार वे भी विना किसी यत्नके ही स्थिर होकर रह गईं।

[१] तभीतक धन है, तभीतक गुण है, और तभीतक समुज्ज्वल कीर्ति है, जबतक हे सत्त्व (साहस)! तुम चित्तरूपी नगरमें खेल रहे हो।

---

[1] सर्वावसर उस जगहका नाम है जहा राजा अपने मुख्य सिंहासन पर बैठकर सब कोई प्रजाजन और राजकीय पुरुषोंकी मुलाकात लेता देता है और राज्यके सब कार्योंका विचार करता है। दिवान-ए-आम या दरबार ए-आम यह उर्दु शब्द इसका प्राय समानार्थक हो सकता है।

[२] राज्य भी जाय, स्त्रियां भी जाय और इस लोकसे यश भी चला जाय; किन्तु हे सत्त्व ! हम तुम्हारे जानेकी अनुमति आजीवन नहीं दे सकते ।

–इस प्रकार यह विक्रमादित्यके सत्त्वका प्रबंध है ॥ ३ ॥

५) एक दूसरे अवसरपर, कोई विदेशी सामुद्रिक-शास्त्रज्ञ द्वारपालके द्वारा सभामें बैठे हुए विक्रमादित्यके पास ले जाया गया । प्रवेश करते ही राजाके लक्षणोंको देखकर वह सिर पीटने लगा । राजाने विषादका कारण पूछा, तो बोला–' महाराज, सभी अपलक्षणोंके निधान होनेपर भी तुम्हें छानवे देशोंकी साम्राज्य लक्ष्मीको भोगते हुए देखकर, सामुद्रिक शास्त्रके ऊपर मेरा विराग हो गया है । मैं तुम्हारे अन्दर ऐसी कोई कावरी (चितकवरी) आंत नहीं देख रहा हूं जिसके प्रभावसे तुम भी कोई राज्यकर्ता बनो । उसके इस वाक्यके सुनते ही विक्रमादित्य तलवार खींचकर जब अपने पेटमें मारने लगा तो उस (सामुद्रिकज्ञ) ने पूछा कि ' यह क्या ? ' इस पर विक्रमने कहा–' पेट फाड़कर तुम्हें उसी प्रकारकी (कावरी) आंत दिखाता हूं । तब उसने कहा कि–' मैंने पहले नहीं समझा था कि, तुम्हारा यह सत्त्वरूपी महालक्षण बत्तीस लक्षणोंसे भी बढ़कर है । इसपर राजाने उसे पारितोषिक देकर विदा किया ।

–इस प्रकार यह सत्त्वपरीक्षाका प्रबंध है ॥ ४ ॥

६) इसके बाद एक अवसरपर, विक्रमने सुना कि दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेवाली विद्यासे तिरस्कृत होकर अन्य सारी कलायें निष्फल-सी हैं । यह सुनकर उस विद्याकी प्राप्तिके लिये श्रीपर्वत पर भैरवानन्द योगीके पास जाकर उसने चिरकाल तक उस (योगी) की सेवा करनी शुरू की । योगीके पूर्वसेवक किसी ब्राह्मणने [राजासे यह कहा कि–तुम] मुझे छोड़कर (अकेले) गुरुसे पर-काय-प्रवेश विद्या न लेना। राजाने उसका अनुरोध मान लिया । जब गुरु विद्या देनेको उद्यत हुए तो उनसे कहा कि–' पहले इस ब्राह्मणको विद्या दीजिये, बादको मुझे ' । ' राजन् ! यह (ब्राह्मण) विद्याके सर्वथा अयोग्य है ' ऐसा गुरुके कहनेपर भी बार बार विक्रम अनुरोध करता रहा । तब गुरुने यह उपदेश देकर कि–'पीछे तुम पछताओगे' उस ब्राह्मणको भी विद्या दी । बादमें लौटकर दोनों उज्जयिनी पहुंचे । वहां पट्टहस्तीके मर जानेसे राजपुरुषोंको उदास देखकर और स्वयं परकाय-प्रवेश विद्याका अनुभव करनेके निमित्त, राजाने उस हाथीके शरीरमें अपनी आत्माका प्रवेश कराया । [इस प्रसंगका वर्णन करनेवाला यह एक पद्य है–]

५. ब्राह्मणको अंगरक्षक बनाकर राजा (परकाय-प्रवेश) विद्याके द्वारा अपने हाथीके शरीरमें प्रविष्ट हुआ । [बादमें] ब्राह्मण राजाके शरीरमें पैठ गया । तब राजा क्रीड़ा-शुक (महलके पींजरेमेंका तोता) हुआ । बादमें (शुकरूपी) राजाने छिपकली के शरीरमें प्रवेश किया तो रानीने उसकी मृत्यु समझी । (इस पर) ब्राह्मणने (जो राजाके शरीरमें प्रविष्ट हुआ बैठा था) शुकको जिलाया और विक्रम ने फिर अपना शरीर पाया ॥ ५ ॥ इस तरह विक्रम को परकाय प्रवेश विद्या सिद्ध हुई ।

–इस प्रकार यह विद्यासिद्धिका प्रबंध है ॥ ५ ॥

७) फिर एक दूसरे अवसरपर, विक्रमादित्य राजपाटिका[१] (बहिर्भ्रमण) में जा रहा था तब मार्गमें सिद्धसेन सूरिको आते देखा । उस नगरका (जैन) संघ उनके पीछे पीछे आरहा था और बन्दी जन

१ ' राजपाटिका ' यह प्राकृत ' रायवाडिया ' और देश्य ' रइवाडी ' शब्दका संस्कृत भाषांतर है । पुराने समयमें राजा आदि राज्यनायक पुरुष प्रायः मध्याह्नोत्तर तीसरे प्रहरके अंतमें या चतुर्थ प्रहरमे, राजमहलसे अनुचर आदिके खास परिवारके साथ निकल कर, प्रधान राजमार्गसे होते हुए नगर या गावके बाहर जो राजकीय उद्यानादि स्थान होते थे उनमे जाते थे और वहापर घंटे-दो घंटे ठहर कर, संध्याकाल होते समय वापस निवासस्थान पर आते थे । राजाओका यह इस प्रकार टहलने या हवाखानेके लिये जो महल बाहर जाना होता था उसको राजपाटिका कहते थे।

'सर्वज्ञपुत्र' कह कर उनकी स्तुति कर रहे थे। 'सर्वज्ञपुत्र' इस विरुदसे कुपित होकर विक्रमादित्य ने उनकी सर्वज्ञताकी परीक्षाके लिये मन-ही-मन प्रणाम किया। सिद्धसेन ने भी पूर्वगत श्रुतज्ञानके द्वारा राजाका मनोगत भाव समझकर, दाहिना हाथ उठाकर धर्मलाभ का आशीर्वाद दिया। राजाने जब आशीर्वाद देनेका कारण पूछा, तो महर्षिने कहा कि–तुम्हारे मानस नमस्कारके लिये यह आशीर्वाद दिया गया है। इस पर उनके ज्ञानसे चकित होकर राजाने उनके पारितोषिक निमित्त एक करोड़ सुवर्ण वितरण किया।

८) एक बार, एक दूसरे अवसरपर, राजाने कोशाध्यक्षसे अपने दिलाए हुए सुवर्णका वृत्तान्त पूछा, तो वह बोला कि–धर्मकी वहीमें मैंने श्लोक बनाकर सुवर्णका वृत्तान्त लिखा है, जो इस प्रकार है–

६ दूर-ही-से हाथ उठाकर 'धर्मलाभ हो' इस प्रकार कहनेवाले सिद्धसेन सूरिको राजाने एक कोटि [सुवर्ण] दिया।

इसके बाद श्री सिद्धसेन सूरिको सभामें बुलाकर राजाने जब कहा कि–उस सुवर्णको ग्रहण कीजिये। तो उन्होंने कहा कि–खाये हुए को खिलाना वृथा है। उसी सुवर्णसे ऋणग्रस्ता पृथ्वीको ऋणमुक्त कीजिये। इस प्रकारका उपदेश मिलनेपर, सूरिके संतोषसे सन्तुष्ट होकर राजाने उस बातको स्वीकार किया।

९) उसी रातको राजा वीरचर्या[1] निमित्त नगरमें घूम रहा था, उस समय एक तेलीको वारबार इस (श्लोकार्ध) को पढ़ते सुना–

७ 'हमारा संदेश नारद! कृष्णको कहना।'

राजा सवेरा होनेतक रुका रहा पर उत्तरार्ध न सुन सका। उदास होकर राजमहलमें आकर सो गया। सवेरे सामयिक कृत्य करके राजाने उस तेलीको बुलाकर उत्तरार्ध पूछा। उसने कहा–

'जगत् दारिद्र्यसे दुःखित है [इस लिये] बलिके बन्धनको छोडो ॥ ७ ॥'

यह सुनकर सिद्धसेन सूरिके उपदेशको फिरसे कहा हुआ समझकर पृथ्वीको ऋणमुक्त करना शुरू किया।

[उज्जयिनीमें राजा विक्रमादित्य भट्टमात्रके साथ गुप्त वेश धारण करके महाकालके मंदिरमें नाटक देखने गया। कुछ समयके बाद नागरिकके लड़के द्वारा कराये जानेवाले नाटकमें सूत्रधारके मुखसे उसका वर्णन सुनकर राजाने भी उस नागरिकका धन ले लेनेके लिये मन-ही-मन लोभ किया। बादको कुछ समय बीतनेपर वह प्यासा होकर मुख्य वेश्याके घर परसे भट्टके पाससे पानी मंगवाया। वहां बुढ़िया वेश्या प्रधान पुरुषोंसे कह कर उसके लिये ईखका रस लेनेके लिये उपवनमें गई। काटनेवालोंसे ईख कटवाकर उसका रस निकलवाया पर उससे घड़िया बिलकुल नहीं भरी तो मनमें दुखी होकर ऊपरका शकोरा भर कर ही बहुत देरसे आई। राजाके रस पी लेनेपर भट्टमात्रने उसकी देरी और उदासीका कारण पूछा। वह बोली–और और दिन तो एक ही ईखसे घड़ा और शकोरा दोनों भर जाते थे लेकिन आज तो घड़ा भी नहीं भरा। इसका कारण समझमें नहीं आता। भट्टमात्रने फिर पूछा कि–तुम लोग तो बडी पकी बुद्धिवाली होती हो इसलिये इसका कारण जानकर और विचारकरके बताओ। फिर वेश्या बोली कि–पृथ्वीके मालिक (राजा) का मन प्रजाके प्रति विरुद्ध होगया है, इसलिये पृथ्वीका रस भी क्षीण होगया है। यह कारण उसने निवेदन किया तो राजा भी उसके बुद्धिकौशल्यसे चकित हुआ। वह फिर अपने घरकी शय्यापर सोया हुआ इस प्रकार विचार करने लगा कि–प्रजा-पीडन किये विना, केवल विरुद्ध चिन्ता मात्रसे ही पृथ्वीके रसकी इस प्रकार हानि हुई। तो

---

१ वीरचर्या–उस जमानेके राजा अपनी प्रजाके सुख दुःखोंकी बातें स्वयं जानने-सुननेके लिये कभी कभी रातके समय, एकाकी गुप्तवेशमें महलोंसे बाहर निकल जाते थे और दो चार घंटे इधर उधर घूम फिर कर नगर चर्चाका प्रत्यक्ष अनुभव करते थे। इसका नाम वीरचर्या है।

मैं अब प्रजाको पीड़ा नहीं पहुँचाऊंगा। ऐसा निश्चय करके राजा दूसरी रातको प्यासका बहाना करके परीक्षाके लिये फिर उसके घर गया। वह शीघ्र ही ईखका रस ले आई और राजाको दिया जिसे पीकर वह [अपने महलमें आया और] शय्यापर सो गया। भट्टमात्रके पूंछनेपर वेश्याने भी [उसी तरह] निवेदन किया (बताया) कि—[आज] राजाका मन प्रजापर प्रसन्न है। राजाने भी रातवाली अपनी बात बताकर, परके चित्तको इस प्रकार पहचान लेनेके कारण, सन्तुष्ट होकर उस वृद्ध वेश्याको [पारितोषिकके ढंगपर] हार दिया।—इस प्रकार यह राजाके मनके अनुसार होनेवाले पृथ्वीरसका प्रबंध है।]

१०) इसके बाद एक बार श्रीसिद्धसेन सूरिने, यह पूछे जानेपर कि—'मुझ (विक्रम) के समान क्या कोई [और भी] जैन राजा होगा?' कहा—

८. एक हजार एक सौ निन्यानवे वर्ष पूर्ण होनेपर तुझ विक्रमादित्यके समान एक कुमार [पाल] नामक राजा होगा।

११) इसके बाद, एक दूसरे अवसरपर, जब राजा जगत्को ऋणमुक्त कर रहा था, अपने औदार्य गुणका अहंकार करते हुए उसने सोचा कि—'प्रातःकाल एक कीर्ति-स्तम्भ बनवाऊँगा। [उसी दिन] रातको वीरचर्या निमित्त चतुष्पथमें घूम रहा था कि दो सांढ़ लड़ते हुए सामने आये। उनसे डर कर राजा किसी दारिद्र्यग्रस्त ब्राह्मणकी पुरानी गोशालाके एक खंभेपर चढ़ गया। वे दोनों सांढ़ भी सींगसे बारंबार उसी खंभेपर प्रहार करने लगे। इसी बीच उस ब्राह्मणने अकस्मात् जग कर, आकाशमें शुक्र और बृहस्पतिसे अवरुद्ध चन्द्र-मण्डलको देखकर, गृहिणीको उठाया और चन्द्रमण्डलसे सूचित होनेवाले राजाका प्राणभय जान कर कहा कि—उसकी शान्तिके लिये हवनीय द्रव्यसे हवन करूंगा। राजा कान लगा कर यह बात सुन रहा था। गृहिणीने उससे कहा—'इस राजाने सारी पृथ्वीको तो ऋणमुक्त किया है, लेकिन मेरी सात कन्याओंके विवाहार्थ तो कुछ द्रव्य नहीं दिया। तो फिर शान्तिकर्म करके उसे व्यसन (संकट) से मुक्त करनेमें क्या लाभ है?' इस प्रकार उसकी बात सुन कर वह सर्वथा गर्वसे रहित हुआ और उस संकटसे छूटकर और उस कीर्तिस्तम्भकी बातको भूलकर चिरकाल तक राज्य करता रहा।

—इस प्रकार यह विक्रमादित्यकी निर्गर्वताका प्रबन्ध है ॥ ६ ॥

[इसके बाद एक दूसरी रातको एक धोबिनसे राजाने पूछा कि—'वस्त्रोंमें बालू क्यों लगी रहती है और ये गन्दे क्यों हैं?' उसने कहा—

[३] हे महाराज, यह जो दक्षिण समुद्ररूपी दक्षिण नायककी वधू, रेवाकी प्रतिस्पर्द्धिनी, गोदावरी नामक प्रसिद्ध नदी, जिसका तट गोविन्दके प्रिय गोकुलोंसे आकुल है, उसका जल, वर्षाकाल बीत जानेपर भी आपकी सेनाके हाथियोंके दाँतरूपी मूसलसे प्रक्षोभित धूलिके कारण, स्वच्छ नहीं हुआ।

[४] उस राजाओंके राजाने धोबिनकी वह बात सुन कर भ्रूक्षेप मात्रमें अपने शरीरके आभूषणोंके साथ एक लाख [का दान] दे दिया।

[५] राजा विक्रमादित्यने चोर, मागध (भाट), ब्राह्मण और धोबिनसे कविता सुन कर [रातके] चारों पहर दान दिया।]

—[1] इस प्रकार यहांपर विक्रमके संबंधके [और भी] विविध प्रबंध, परंपरा द्वारा जानलेने चाहिए।

---

१ इस पंक्तिके लेखसे मेरुतुंगसूरि यह सूचित करना चाहते हैं कि विक्रमके विषयके जैसे ये प्रबन्ध हमने यहां लिखे हैं, वैसे और भी अनेक प्रबन्ध हैं, जिनका ज्ञान अन्यान्य ग्रंथों-प्रबन्धों द्वारा प्राप्त करना चाहिए। हमने तो यहा पर कुछ दिग्दर्शन करानेके लिये ही ये थोडेसे प्रबन्ध लिख दिये हैं।

१२) एक वार, आयुके अन्तमें विक्रमादित्य का शरीर कुछ कमजोर हुआ तो एक वैद्यने उपदेश दिया कि, कौवेका मास खानेसे रोगकी शान्ति होगी। जब राजा उसे पकवाने लगा तो इससे वैद्यने राजाका प्रकृति-व्यत्यय देखकर कहा—इस समय धर्मौषध ही बलवान है। क्यों कि प्रकृतिकी विकृति होनेसे उत्पात होता है। जीवनके लोभसे लोकोत्तर सत्त्व-प्रकृतिका त्याग करके काकमास खाकर आप किसी तरह भी न जियेंगे। वैद्यके ऐसा कहनेपर उसको 'परमार्थबान्धव' कह कर राजाने उसकी प्रशसा की और पारितोषिक देनेके लिये कहा। फिर और हाथी, घोड़ा, कोश इत्यादि सर्वस्व याचकोंको देकर, राजपुरुषों और नागरिकोंसे विदा लेकर, धवल गृहके किसी निर्जन प्रान्तमें तत्कालोचित दान ओर देव-पूजन करके कुशासनपर बैठ गया और सोच ही रहा था कि ब्रह्मद्वारसे प्राणोंको निकाल दू, अकस्मात् आविर्भूत अप्सराओंके समूहको देखा। राजाने हाथ जोड़कर प्रणाम करके उनसे पूछा कि-'तुम लोग कौन है?' इस पर अप्सराओंने कहा कि—विस्तारके साथ कुछ कहनेका यह अवसर नहीं है, हम तो विदा लेनेके लिये ही यहा आई हैं। इस प्रकार कहकर जाती हुई अप्सराओंसे राजाने फिर कहा—'नवीन ब्रह्माने आप लोगोंको एक अद्वितीय रूप दे कर बनाया है। फिर भी जानना चाहता हू कि, यह अद्वितीय रूप नासिकाहीन क्यों है?' इस पर वे ताली बजाकर हँसती हुई बोलीं—'अपने ही अपराधको हमारे ऊपर डाल रहे हो?' ऐसा कह कर वे चुप हो गईं। तब राजाने कहा—आप लोग तो स्वर्ग लोकमें रहती है। आपके ऊपर मेरे अपराधकी सम्भावना कैसे हो सकती है? इस तरह राजाका वचन समाप्त होनेपर उनमें की मुख्य सुमुखीने कहा—'हे राजन्, पूर्वतन पुण्यके प्रभावसे नव निधियोंने तुम्हारे महलमें अवतार ग्रहण किया था, हम लोग उन्हींकी अधिष्ठात्री देवतायें हैं। आपने जन्मसे महादान देते हुए भी एक ही निधिमेंसे इतना ही मात्र दिया है कि जिससे आप नासाग्र देख नहीं सकते।' इस प्रकारका उनका कथन सुनकर हाथसे सिर ठोकते हुए राजाने कहा कि—'यदि मैं जानता कि नव निधिया अवतीर्ण हुई हैं तो उन्हें नौ ही पुरुषोंको दे देता। दैवने अज्ञान भावसे मुझे वञ्चित किया।' उसके ऐसा कहते समय उन्होंने यह कह कर आश्वासित किया, कि—कलियुगमें तो आप ही एकमात्र उदार हैं। और वह परलोक प्राप्त हुआ। उसी दिनसे उस विक्रमादित्यका संवत्सर प्रवृत्त हुआ जो आज भी जगत्में वर्तमान है।

॥ श्रीविक्रमादित्यके दान विषयक ये विविध प्रबंध पूरे हुए ॥

---

२. सातवाहन राजाका प्रबन्ध ।

१३) दान और विद्वत्ताके विषयमे श्री सा त वा ह न की कथा परम्परागत यथाश्रुतिके अनुसार जानना चाहिये ।[1] उसके पूर्व जन्मकी कथा इस प्रकार है–प्र ति ष्ठा न पु र में सा त वा ह न राजा जब राजपाटिका (बहिर्भ्रमण) करने जा रहा था तो नगरके निकट नदीमें एक मछलीको हँसते देखा, जिसे लहरोंने पानीके किनारे फेंक दिया था। इस अस्वाभाविक बातको देखकर राजाको भय हुआ। उसने सभी पंडितोंसे इस सन्देहको पूछते हुए एक ज्ञा न सा ग र नामक जैन मुनिसे भी पूछा। अपने अतिशय ज्ञानके बलसे उसने राजाके पूर्वजन्मको जानकर इस प्रकार उपदेश दिया कि–' पिछले जन्ममें तुम इसी नगरमें रहते थे। तुम्हारे कुल-वंशमें कोई नहीं था। और तुम्हारी जीवनवृत्ति एकमात्र लकड़ीका बोझ ढोना था। तुम नित्य ही भोजनके अवसर पर इसी नदीके निकटवर्ती शिलातलपर बैठकर पानीसे सत्तू सानकर खाया करते थे। किसी दिन, एक महीनेके उपवासकी पारणाके लिये नगरमें जाते हुए एक जैन मुनिको बुलाकर वह सत्तूका पिंड उनको दानकर दिया। उस पात्रदानके माहात्म्यसे तुम सा त वा ह न नामक राजा हुए और वह मुनि देवता हुआ। वही देवता अपने अधिष्ठान वश होकर, उस काष्ठभारवाही जीवको तुझे इस राजाके रूपमें पहचानकर, प्रमादके कारण हँस पड़ा।' इस कथागत वस्तुका संग्रह सूचक यह [पुरातन] काव्य है–

९. मछलीके मुँहके हँसनेपर जो सा त वा ह न राजा भयभीत होगया था उससे मुनिने कहा कि जिसने सत्तूसे मुनिको पूर्व जन्ममें जो पारणा कराया था वही आप हैं और दैवात् मछलीने आपको पहचान लिया इसलिये वह हँस रही।

वह सा त वा ह न उस पूर्व जन्मके वृत्तान्तको जातिस्मृतिसे प्रत्यक्ष करके उस दिनसे दानधर्मकी आराधना करता हुआ सब महाकवियों और विद्वानोंका संग्रह करता रहा। उसने चार करोड़ सुवर्णसे चार गाथाओंको खरीदा और सात सौ गाथाओवाला '**सातवाहन**' नामक संग्रह गाथा कोश शास्त्र निर्माण कराया। इस प्रकार वह नाना सद्गुणोका निधि बनकर चिरकाल तक राज्य करता रहा[2]। वे चारों गाथायें ये हैं। जैसे–

[प्रबन्धचिन्तामणिकी मूल पाठकी जो आवृत्ति हमने तैयार की है उसमें यहा पर (देखो पृष्ठ ११) १० प्राकृत गाथाये दी हुई हैं। इन गाथाओके क्रम आदिके विषयमे पुरानी प्रतियोमे बहुत कुछ गडबड मालूम देती है। कोई प्रतिमें तो ये गाथायें सर्वथा नहीं दी गई हैं और 'गाथाचतुष्टयमेतद्' (अर्थात्–ये चार गाथायें इस प्रकार हैं) इस वाक्यके बदले 'तद्गाथाचतुष्टयं बहुश्रुतेभ्यो ज्ञेयं' (अर्थात्–ये चार गाथायें बहुश्रुत विद्वानो द्वारा जाननी चाहिए) ऐसा वाक्य है; और कुछ प्रतियोंमें पहली ५ गाथाये लिखी हुई मिलती हैं, कुछमें दूसरी ५ गाथायें, कुछमें दसो गाथाये मिलती हैं। हमने मूलमें, संग्रहकी दृष्टिसे इन दसों गाथाओंका पाठ दे दिया हैं। इनमें पहला गाथा-पंचक है वह शृंगार विषयक वस्तुका वर्णनवाला है; दूसरा गाथा-पंचक अन्योक्तिद्वारा सत्पुरुषोंके परोपकार भावका वर्णन करता है। इन गाथाओंका अर्थ इस प्रकार है–]

१० 'हार,' 'वेणीदंड,' 'खट्वोद्गालि' और 'ताल' इन ४ वस्तुओंका वर्णन करनेवाली ४ गाथायें सालाहन राजाने दसकोडि [सुवर्ण] दे कर ग्रहण कीं ॥ १ ॥

---

१ विक्रमकी तरह सा त वा ह न राजाकी भी बहुतसी कथायें परंपरासे चली आती हैं। वि क्र म च रि त के समान सा त वा ह न च रि त भी बना हुआ है। संस्कृतके कथासरित्सागर नामक प्रसिद्ध ग्रंथमें सा त वा ह न की बहुतसी कथाये गूंथी हुई हैं। वे सब कथायें मेरुतुंगसूरिके समयमें बहुत प्रचलित थीं और लोक-प्रसिद्ध थीं इसलिये उन्होने उन कथाओंको इस ग्रंथमे संकलित नहीं किया। वि क्र म के बाद सा त वा ह न प्रसिद्ध ऐतिहासिक दानशील राजा हो गया और उसने भी विद्वानोंको खूब धन दान किया, इसलिये सिर्फ उसका नाम निर्देश करनेके निमित्त ही यह इतना-सा वृत्तात उसके विषयमें मेरुतुंगसूरिने लिख दिया है। इसकी विशेष चर्चा अगले ऐतिहासिक विवेचनवाले भागमें की जायगी।

[हारका वर्णन करनेवाली गाथाका अर्थ इस प्रकार है–]

११ खूब पुष्ट और ऊंचे ऊठे हुए स्तनोंवाली स्त्रीके वक्षस्थलपर रहा हुआ [मोतीयोंका] हार स्थिर होकर रहनेकी ठीक जगह न मिलनेसे छातीपर उद्विग्न अथवा उन्मुख होकर इधर उधर फिरता रहता है–जैसे यमुना नदीके प्रवाहमें पानीके फेनके बुद्बुदे इधर उधर फिरते रहते हैं।

['वेणीदण्ड'का वर्णन करनेवाली गाथाका अर्थ इस प्रकार है–]

१२ हे सुन्दरि, तेरा यह कृष्णकांति वेणीदण्ड नितम्ब-बिम्बपर जो शोभ रहा है वह मानों ऐसा लगता है कि सुरतस्थानरूप महानिधिकी रक्षा करनेवाला कोई भुजग है।

['खट्वोद्गालि'के वर्णनवाली गाथाका अर्थ इस प्रकार है–]

१३ सुरत संभोगके समय जो संतोषदायक सुंदर सुखानुभव हुआ, उसका विरह होनेसे, हे प्रिय सखि ! यह खाट चू चू ऐसा शब्द कर रही है।

['ताल' का वर्णन करनेवाली गाथाका अर्थ इस प्रकार है–]

१४ हे शुक ! तू इसे चांचके लगाने-ही-से गिर जानेवाला पका हुआ आम्रफल मत समझ। यह तो जरठ हो जानेसे वेस्वादवाला और उभडा हुआ तालफल है।

[दूसरा गाथा-पंचक है उसमें 'कदली वृक्ष', 'विन्ध्य गिरी', 'स्नेहाधार' और 'चन्दन वृक्ष' इन ४ वस्तुओंका अन्योक्तिमय वर्णन है। इसकी आखिरी १० वीं गाथामें कहा गया है कि सालीवाहन राजाने ये गाथायें ९ कोडि (प्रत्यंतरमें ४ कोडि) देकर ग्रहण कीं। इनका अर्थ क्रमशः इस प्रकार है–]

१५ जो पुरुष, केलके झाडके समान, दूसरोंको फल देते हुए अपना विनाशका भी विचार नहीं करते, उनके सामने मरना भी वांछनीय है।

१६ जिस तरह विन्ध्याचल पर्वत सदा सरस (हरे भरे) वृक्षोंको धारण करता है वैसे ही शुष्क-(निकम्मे) वृक्षोंको भी धारण करता है। उसी तरह बडे पुरुष अपने उत्सगवर्ती–समीपवर्ती निर्गुणोंका भी त्याग नहीं करते।

१७ वे मुञ्झार[1] जिन्होंने तृषित होकर प्रथम ही प्रथम जो स्नेहाधार(जलधारा)का जैसे तैसे करके पान किया है वे फिर आजन्म अन्य पानकी इच्छा नहीं करते।

१८ शुष्क हो जानेपर भी जिस चन्दनके वृक्षका, सब जनोंको आनन्द देनेवाला ऐसा सुरभि गन्ध है वह जब सरस भाववाला (हरा फूला) होगा तब तो फिर कैसा ही होगा।

———०———

१ यह 'मुञ्झार' क्या वस्तु है इसका अर्थ हमें स्पष्ट नहीं हुआ। यह शब्द भी शुद्ध है या नहीं इसकी हमें शंका है। कोश वगैरह ग्रंथोंमें यह शब्द हमें नहीं मिला।

१८) बादमें कान्यकुब्ज देशसे एक पञ्चकुल (कर वसूल करनेवाला) गुजरात देशका कर उगाहने आया। यह गुजरात देश उस कान्यकुब्ज देशके राजाने अपनी 'महणका' नामक कन्याको दहेजमें दे दिया था। इस पञ्चकुलने उस वनराज नामक पुरुषको अपना सेल्लभृत् (शस्त्राधिकारी) बनाया। छ महीने तक देशसे कर वसूल कर २४ लाख पारूथक द्रम्म (चाँदीके सिक्के?) और ४ हज़ार अच्छी नस्लके तेजवान् घोड़े लेकर जब वह पञ्चकुल अपने देशको चला तो वनराजने सौराष्ट्र नामक घाटपर उसे मार डाला और फिर उस राजाके भयसे साल भर तक किसी वनमें जाकर छिपा रहा।

१९) इसके बाद, अपने राज्याभिषेकके लिये राजधानीका नगर बसानेकी इच्छासे एक अच्छी भूमि खोजने लगा। पीपलुला सरोवरके किनारे, अणहिल्ल नामका भारूयाड़ साखड़का लड़का जो सुखपूर्वक बैठा था, उसने पूछा कि–'तुम यहांपर क्या देख रहे हो?' उसके प्रधानोंके यह कहनेपर कि नगर बसानेके योग्य अच्छी भूमि देखी जा रही है। वह बोला कि–'यदि उस नगरको मेरे नामपर बसाओ तो मैं वैसी भूमि बताऊँ।' यह कहकर वह जालि वृक्षके पास गया और वहां जितनी भूमिमें खरगोशके द्वारा कुत्ता त्रासित होता रहता था उतनी भूमिको उसने बताया। उसी भूमिमें वनराजने **अणहिल्लपुर** इस नामसे नया नगर बसाया।

[यहांपर, एक P नामक प्रतिमें अणहिल्लपुरकी प्रशंसा बतलानेवाले निम्नलिखित पद्य लिखे हुए मिलते हैं–]

[६] जो (नगर) हारका अनुकरण करनेवाले प्राकार (खाई) से प्रकाशित हो रहा है, वह ऐसा लग रहा है मानों सत्ययुग वृत्ताकार होकर कलिसे उसकी रक्षा कर रहा है।

[७] जिस नगरमें रातके आरंभमें चन्द्रशाला (ऊपरी तल) में खेलती हुई स्त्रियोंके मुखकी शोभासे आकाश ऐसा जान पड़ता है कि उसमें सैकड़ों चन्द्रमा उदय हुए हैं।

[८–९] जिस नगरीके विजयी गुणके सामने लंका को शंका हो गई, चम्पा कांपने लगी, विदिशा कृश हो गई, काशीकी सम्पत्ति नष्ट हो गई, मिथिलाका आदर शिथिल हो गया, त्रिपुरीकी शोभा विपरीत हो गई, मथुराकी आकृति मन्थर (सुस्त, फीकी) पड़ गई और धारा भी निराधार हो गई।

[१०] जिस नगरके स्त्रीजन और कौरवेश्वरके सैन्यमें हम कोई अन्तर नहीं देखते क्यों कि दोनों ही 'गांगेय-कर्ण' (स्त्री-पक्षमें सोना है कानमें जिनके; और सेना-पक्षमें भीष्म और कर्ण हैं जिनमें) हैं।

[११] जिसके आगे प्रौढ शोभावाली अलकापुरीको पुलक नहीं होता (आनंदित नहीं होती), लंका अति शंकाकुला हो उठती है, उज्जयिनीकी भी कभी जीत नहीं होती, चम्पा अति कांपती रहती है, कान्तिपुरी कान्तिविभूषिता नहीं होती, अयोध्या अतियोध्या हो जाती है, ऐसा यह अद्भुत पत्तन (अणहिल्लपुर) नगर है जिसमें लक्ष्मी सदा नाच करती रहती है। इस नगरकी जय हो।

२०) श्रीविक्रमादित्यके संवत् ८०२ आठ सौ दोमें–प्रत्यंतरमें, संवत् ८०२ के वैशाख सुदी दूज, सोमवारको–उस जालि वृक्षके नीचे बड़ा भारी राजप्रासाद बनाकर राज्याभिषेक लग्नके समय श्रीवनराजने काकर ग्रामकी रहनेवाली उस प्रतिज्ञात बहन श्रीदेवीको बुलाकर उसके हाथसे तिलक करवाया। उस समय उसकी आयु पचास वर्षकी थी। वह जांबा नामक वणिक महामंत्री बनाया गया। पञ्चासर ग्रामसे श्रीशीलगुणसूरिको भक्तिके साथ ले आकर धवल गृहमें अपने सिंहासनपर बैठाया और कृतज्ञोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण सप्ताङ्ग राज्य उन्हें समर्पण किया। उन निःस्पृह सूरिने उसका वार वार निषेध किया। किन्तु उसने

उनके प्रत्युपकारकी बुद्धिसे उन्हींकी आज्ञासे श्री पार्श्वनाथकी प्रतिमासे अलङ्कृत पञ्चासर नामक चैत्य बनवाया और उसमें देवकी आराधना करती हुई अपनी निजकी मूर्ति भी स्थापित की। धवल गृहमें कण्टेश्वरी देवीका भी मन्दिर बनवाया।

२१ वनराजके समयसे ही गूर्जरोंका यह राज्य जैन मन्त्रों द्वारा स्थापित हुआ है इसलिये इसका द्वेषी कभी भी आनद प्राप्त नहीं कर सकता।

२१) सवत् ८०२ से लेकर ५९ वर्ष २ मास २१ दिन तक श्री वनराजने राज्य किया। श्री वनराजकी पूरी आयु १०९ वर्ष २ मास २१ दिन की थी।

संवत् ८६२ की आषाढ सुदी तृतीयाको अश्विनी नक्षत्र और सिंह लग्नके बीतते समय श्री वनराजके पुत्र श्री योगराजका राज्याभिषेक हुआ।

[B P प्रतिमें "सवत् ८०२ से लेकर ६० वर्ष तक श्री वनराजने राज्य किया। सवत् ८६२ वर्षमें श्री योगराजका राज्यभिषेक हुआ (P प्रतिमें श्री योगराजने राज्य अलङ्कृत किया)," इतना ही पाठ है।]

२२) उस राजा (योगराज) के तीन लडके हुए। किसी समय क्षेमराज नामक कुमारने राजाको इस प्रकार सूचित किया कि एक अन्य देशीय राजाके प्रवहण (जहाज) बनदरमें पड़कर तितर बितर हो गये हैं। वे अन्यान्य बदरगाहोंसे हटकर श्री सोमेश्वर पत्तनमें आ लगे हैं। उनमें १० हजार तेजस्वी घोड़े और १८ सौ (?) हाथी, तथा एक करोड किंमतवाली और और चीजे हैं। यह सब सपत्ति हमारे देशसे होकर अपने देशको जायगी। यदि महाराजकी आज्ञा हो तो उसे ले आया जाय। उसके ऐसी विज्ञप्ती करने पर राजाने वैसा करनेका निषेध किया।

उसके बाद जब यह सब स्वदेशकी अन्तिम सीमाके प्रान्तमें पहुँचा, तो वृद्धावस्थाके कारण राजाकी विकलताका विचार कर, तीनों कुमार अपनी सेना सजाकर उसपर टूट पडे, और अज्ञात चौर वृत्तिसे, उसके पाससे सब कुछ छीनकर अपने पिताके पास ले आये। भीतर-ही-भीतर कुपित किन्तु ऊपरसे मौन धारण किये हुए राजाने उनसे कुछ नहीं कहा। यह सब कुछ राजाको भेंटकर जब पूछा गया कि—क्षेमराज कुमारने यह अच्छा किया या बुरा? तो राजा बोला—यदि कहू कि अच्छा किया तो दूसरेके धन लूटनेका पाप लगता है और यदि कहू कि अच्छा नहीं किया तो तुम लोगोंके मनमें बुरा लगता है। इससे यही सिद्ध होता है कि मौन ही रहना अच्छा है। फिर और भी सुनो! तुमारे प्रथम प्रश्नके उत्तरमें, दूसरेके धनके हरण करनेका जो मैंने निषेध किया था उसका कारण यह है कि—और और देशोंमें राजगण, अन्यान्य राजाओंकी जब प्रशसा करते हैं, तब गूर्जर देशमें चोरोंका राज्य है ऐसा कहकर वे नित्य उपहास किया करते हैं। जब हमारे स्थान पुरुष (प्रतिनिधि) इन बातोंके समाचार हमें देते हैं तो हमें सुनकर दुःख होता है और हमारे पूर्वजोंने कुछ इस तरहकी बातें की थीं, इसकी हमें ग्लानि होती है। पूर्वजोंका यह कलङ्क यदि लोगोंके हृदयसे भूल जाय तो, अन्य सब राजाओंकी पक्तिमें हम भी राज शब्दका सम्मान पावें। किंचित् धन लोभसे लुब्ध होकर तुम लोगोंने पूर्वजोंके इस कलकको माज-मूजकर फिरसे ताजा बना दिया। इसके बाद राजाने शस्त्रागारसे अपना धनुष्य मँगाकर यह आज्ञा दी कि तुम लोगोंमेंसे जो बलवान् हो वह इस धनुष्यको चढावे। यथाक्रम सभी ऊठे पर जब कोई न चढ़ा सका तो राजाने खेल्की भाति उसे चढा दिया, और कहा—

२२ राजाकी आज्ञाका भग करना, नौकरोंका वेतन काट लेना और स्त्रियोंको अलग शय्या देना—बिना शस्त्र ही से हत्या करना कहलाता है।

इस प्रकार नीतिशास्त्रके उपदेशानुसार, मेरी आज्ञा भंग करके विना शस्त्रके वध करनेवाले तुम पुत्रोंको मै क्या दंड दूं? इसके बाद राजाने आयुके १२० वें वर्षमें प्रायोपवेशन (अन्न जलका त्याग) कर चितामें प्रवेश किया। इस राजाने भट्टारिका श्री योगीश्वरी का मन्दिर बनाया।

२३) इस [योगराज नामक] राजाने ३५ वर्ष राज्य किया।

सं० ८९७ से लेकर २५ वर्ष श्री क्षेमराजने राज्य किया।

सं० ९२२ से लेकर २९ वर्ष तक श्री भूयड़ने राज्य किया। इसने श्री पत्तन नगरमें भूयडेश्वरका मन्दिर बनवाया।

सं० ९५१ से लेकर २५ वर्ष तक श्री वैरसिंहने राज्य किया।

सं० ९७६ से लेकर १५ वर्ष तक श्री रत्नादित्यने राज्य किया।

सं० ९९१ से लेकर ७ वर्ष तक श्री सामन्तसिंहने राज्य किया।

इस प्रकार चापोत्कट वंशमें सात राजा हुए। विक्रमादित्य संवत् ९९८ वर्ष तक [इस वंशका राज्य रहा।]

[A प्रति और उसके साथ प्रायः मिलती हुई D प्रतिमें यह राजावली निम्नलिखित रूपसे मिलती है।]

सं० *८...(?) श्रावण सुदी ४ से १० वर्ष १ मास १ दिन श्री योगराजने राज्य किया।

सं० ८....श्रावण सुदी ५ उत्तराषाढ़ा नक्षत्र और धनुष लग्नमें रत्नादित्यका राज्याभिषेक हुआ।

सं० ८....कार्तिक सुदी ९ से लेकर ३ वर्ष ३ मास ४ दिनतक इस राजाने राज्य किया।

सं० ८....कार्तिक सुदी ९ रविवारको मघा नक्षत्र और वृषलग्नमें श्री वैरसिंह राज्यपर बैठा।

सं० ८....ज्येष्ठ सुदी १० शुक्रवारसे लेकर ११ वर्ष ७ मास २ दिनतक इस राजाने राज्य किया।

सं० ८....ज्येष्ठ सुदी १३ को हस्त नक्षत्र और सिंह लग्नमें श्री क्षेमराजदेवका राज्याभिषेक हुआ।

सं० ९३....भादो सुदी १५ रविवारको, इस राजाको राज्य करते, ३८ वर्ष ३ महीना १० दिन व्यतीत हुए थे।

सं० ९३५ वर्षमें आश्विन सुदी १ सोमवारको रोहिणी नक्षत्र और कुम्भ लग्नमे श्री चामुण्डराजदेवका पट्टाभिषेक हुआ।

सं० ९....माघ वदी ३ सोमवारसे लेकर १३ वर्ष ४ मास १७ दिनतक इस राजाने राज्य किया।

सं० ९३८ (?) माघ वदी ४ मंगलवारको स्वाती नक्षत्र और सिंह लग्नमें श्री आगड़देव राज्यपर बैठा। इसने कर्करापुरीमें आगड़ेश्वर ओर कण्टकेश्वरीके मंदिर बनवाये।

सं० ९६५ पौष सुदी ९ बुधवारसे लेकर २६ वर्ष १ मास २० दिनतक इसने राज्य किया।

सं० ९....पौष सुदी १० गुरुवारको आर्द्रा नक्षत्र और कुम्भ लग्नमें भूयगड़देव राज्यपर बैठा। इस राजाने भूयगडेश्वरका मंदिर और श्री पत्तनमें प्रकार बनवाया।

सं० ९....वर्षसे आषाढ़ सुदी १५ से लेकर २७ वर्ष ६ महिने ५ दिनतक इसने राज्य किया।

इस प्रकार चापोत्कट वंशमें ८ पुरुष हुए। १९० वर्ष, २ मास, सात दिनतक इस वंशके राजाओंने राज्य किया।]

---

* जिन प्रतियोंमें यह पाठ मिलता है उनमे इन संवत् सूचक अंकोके विषयमे बड़ी गडबड़ी है। कहीं कोई अंक लिखा हुआ मिलता है और कहीं कोई। पंक्तियोंमे जो वर्ष मास आदि दिये गये हैं उनका इन अंकोंके साथ कोई मेल नहीं मिलता। इसलिये हमने इन अंकोके स्थान शून्य ही रखे हैं। आगेके भागमें जो ऐतिहासिक विवेचन किया गया है उससे इन अंकोंकी निरर्थकता मालूम हो जायगी।

चौलुक्यवंशका प्रारंभ।

२३ हाथी (मातङ्ग होनेके कारण) सेवाके योग्य नहीं रहे, पहाड़ोंके पर गिर गये, कच्छप जड़ प्रीतिवाला है, शेषनागको दो जीभें हैं, इसलिये पृथ्वीको कौन धारण करने योग्य है—इस तरह चिन्ता करनेवाले विधाताकी सायंकालीन संध्याके चुल्लूसे कोई तलवारधारी वह सुभट उत्पन्न हुआ[1] [जिससे चौलुक्यवंशका प्रारंभ हुआ।]

[यह पद्य श्लेषात्मक है और उस अर्थ ही में इसका कवित्व है। एक समय ब्रह्मदेव संध्या-कृत्य कर रहे थे उस समय पृथ्वीकी दशाका उन्हें विचार आया। पृथ्वीको धारण करने योग्य कौन कौन पदार्थ है इसका विचार करते हुए उनके मनमें दिग्गजोंका खयाल आया—लेकिन वे असेव्य मालूम दिये क्यों कि वे मातंग कहलाते हैं। (संस्कृत भाषामें मातंग शब्दके दो अर्थ है–१ हाथी, और २ चंडाल)। फिर उन्हें कुलाचल पर्वतोंका खयाल आया, लेकिन वे पक्ष विहीन मालूम दिये। (पुराणोंमें पर्वतोंके पक्ष यानि पर इन्द्रने काट डाले ऐसी कथा प्रचलित है।) संस्कृतमें पक्ष शब्दका अर्थ पांख भी होता है। फिर ब्रह्माका खयाल कूर्म यानि कच्छपकी ओर गया, लेकिन वह जडप्रीतिवाला मालूम दिया। जो जडके साथ प्रीति रखता हो वह पृथ्वीको धारण करने जैसा महान् कार्य करने योग्य कैसे हो सकता है? (संस्कृतमें जड यानि मूर्ख और जल=पानी ऐसे दो अर्थ इसके होते हैं। कच्छपकी प्रीति जल यानि पानीके साथ होती ही है। इसके बाद ब्रह्माका ध्यान फणिपति=शेषनागकी तरफ गया–लेकिन वह उन्हें दो-जीभा मालूम दिया। सर्पके दो जीभें होती ही हैं। (संस्कृतमें द्विजिह्व=दो-जीभेका अर्थ चुगलखोर ऐसा निन्दात्मक भी होता है।) इसलिये जो दो-जीभा हो वह पृथ्वीका भार उठाने लायक नहीं हो सकता। इस प्रकार ब्रह्मा इनकी अयोग्यताका खयाल कर चिन्तामग्न हो रहे थे और चुल्लूमें पानी भरकर संध्याञ्जलि देनेका विचार कर रहे थे, उतनेमें उस चुल्लूमेंसे, हाथमें तल्वार धारण किये हुए एक सुभट बाहर निकला और ब्रह्मदेवने उसे ही पृथ्वीका भार वहन करनेमें समर्थ और योग्य समझ कर उसे पृथ्वीका शासक नियत किया। उसकी जो संतान हुई वह चौलुक्यवंशके नामसे प्रसिद्ध हुई।]

---

५. मूलराजका प्रबंध।

२४) पूर्वोक्त श्री भूयराजके वंशज मुंजालदेवके तीन पुत्र हुए जिनका नाम राज, बीज और दण्डक था। ये तीनों भाई तीर्थयात्राके लिये निकले। श्री सोमेश्वरको नमस्कार करके वहांसे लौटते हुए अणहिल्लपुरमें आए। वहां पर वे सामन्तसिंह राजाकी घुड़दौड़ देख रहे थे। राजाने विना ही कारण घोड़ेको कोड़ा मारा जिसे देखकर, राज नामक क्षत्रियने, जो कार्पटिक (कापड़िये) का वेश धारण किये हुए था, पीडित होकर अपना सिर हिलाते हुए, आह! आह! ऐसा शब्द कहा। राजाके उसका कारण पूछने पर उसने कहा कि, घोड़ेकी यह अत्युत्तम विशेष चाल जो न्युछन करने योग्य है, उसको न समझकर आपने जो कोड़ा मारा वह मुझे जैसे अपने ही मर्मपर लगा अनुभूत हुआ। उसकी इस बातसे चकित होकर राजाने वह घोड़ा उसीको चढ़नेके लिये दिया। घोड़ा और घुड़सवार दोनोंका सदृश योग देखकर उसने पद पद पर उनका न्युछन किया, और उसके इस आचरणसे किसी महत् कुलवाला उसे समझकर, अपनी लीलादेवी नामक बहनका उसके साथ ब्याह कर दिया। कुछ समय बाद जब वह गर्भवती हुई तो अकालमें ही उसकी मृत्यु हो गई। मंत्रियोंने, गर्भस्थ सन्तानका मरण न हो जाय इस विचारसे उसका पेट चीरकर संतानका उद्धार किया। मूल नक्षत्रमें जन्म होनेके कारण उसका नाम मूलराज रखा गया। उदय-कालीन सूर्यकी भाँति जन्मसे ही तेजोमय होनेके कारण वह सबका आह्लादपात्र हो गया। अपने पराक्रमसे वह मामाके राज्यको बढ़ाता रहा। सामंतसिंह मदमत्त होकर उसको कभी राज्यासनपर बिठा देता था और फिर

---

१ यह पद्य चौलुक्य वंशकी आद्य उत्पत्तिका सूचक है। किसी कोई शिलालेखमेंसे यह लिया गया मालूम देता है। ब्रह्माके चुल्लूमेंसे इस वंशका मूल पुरुष पैदा हुआ और इसी लिये इस वंशका नाम चौलुक्य हुआ, यह पीछेके भाट लोगोंकी कल्पना है और इसका कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है यह अगले भागसे स्पष्ट हो जायगा।

होशमें आकर उठा देता था। तभीसे चापोत्कटोंका दान उपहासके रूपमें मशहूर हुआ[1]। वह इस प्रकार बार बार चिढ़ाया जानेपर एक दिन उसने अपने नौकरोंको तैयार किया और जब मामाने बेहोशीमें राज्यासनपर बिठाया तो उसे मारकर सचमुच ही वह राजा बन गया।

२५) सं० ९९३ के आषाढ सुदी १५ बृहस्पति वारको, अश्विनी नक्षत्र और सिंह लग्नमें, जन्मसे इक्कीसवें वर्षमें मूलराज का राज्याभिषेक हुआ।

[B. P. आदर्शमें 'सं० ९९८ में श्री मूलराजका राज्याभिषेक हुआ' ऐसा पाठ मिलता है।]

२४. [2]शास्त्रमें तो सुना जाता है कि **मूलार्क** (मूल नक्षत्रका सूर्य) सब प्रकारका कल्याण करता है। लेकिन आश्चर्य है कि वर्तमानमें तो **मूलराज** ही ने ऐसा योग कर दिया है।

[१२] *उस विभुने स्वप्नमें आकर कहा कि चापोत्कट वंशके राजा हैहय भूपतिके वंशमें वंशोज्ज्वला कन्या है। अगर तुमको वह दान की जाय तो निःशंक भावसे उसके साथ विवाह कर लेना क्यों कि वह मृगाक्षी अपने उदरमें सार्वभौम (चक्रवर्ती) राजाको धारण करेगी।

[१३] श्री गुर्जर मण्डलमें उसकी कुक्षिसे श्री राजिराजका पुत्र राजा श्री मूलराज पैदा हुआ। अपने अद्भुत महाप्रभावसे, जब वह दिग्विजयके लिये उद्यम करता था तो उस समय केवल पृथ्वी ही नहीं काँप उठती थी परंतु उसके साथ उसके स्वामी राजाओंके दिल भी काँप उठते थे।

[श्रीसौराष्ट्र मण्डलमे श्री सा....सिंहके साथ युद्ध हुआ यह प्रबंध प्रसिद्ध है×।]

[१४] जिसने अपने शत्रुओंको जीत लिया ऐसे उस राजाको गूर्जरेश्वरोंकी राज्यश्री, उसके गुणोसे आवर्जित होकर बाणरिपु (विष्णु) को लक्ष्मीकी तरह, स्वयं वरनेको आई।

[१५] उस महा इच्छावाले राजाने कच्छके राजा लक्षको, शत्रुको बुरी तरह घायल करनेवाले अपने बाणोंका लक्ष्य बनाया।

[१६] उस असामान्य पराक्रमीने लाटेश्वरके दुर्वारणीय सेनानायक बाण(र?)पको मारकर हाथियोंको ग्रहण किया था।

---

१ गूजरातमे, उस जमानेमे शायद यह एक लोकोक्ति प्रचलित थी कि—'यह तो चाउडोका दान है'। किया हुआ दान मिलेगा या नहीं और मिलनेपर भी वह स्थिर रूपसे रहेगा या नहीं–ऐसा जिस दान पर विश्वास नहीं किया जाता उसे लोग चाउडोका दान कहकर उसका उपहास किया करते थे।

२ मूलराज शब्द पर यह श्लेष है। इसका दूसरा अर्थ मूलराज यानि मूलचंद्र यह निकाला गया। राज शब्द चंद्रमाका भी वाचक है। ज्योतिष शास्त्रके विधानानुसार सूर्य जब मूल नक्षत्रमें आता है तब वह मूलार्क योग कहलाता है। यह योग अनेक तरहके शुभ कल्याणोका करनेवाला माना जाता है। लेकिन यह राजा तो मूलार्क नहीं है मूलराज (=मूलचंद्र) है, तो भी इसने अपने उदयकालमे वैसे ही अनेक कल्याणकारक योग कर बतलाए हैं, इसलिये यह खास आश्चर्यकी बात है।

* १२ और १३ अंक वाले ये दोनो पद्य किसी पुरानी प्रशस्तिमेसे उद्धृत किये गये मालूम देते हैं। पहले पद्यमे यह बतलाया गया है कि–शायद शंभु या अन्य किसी देवने मूलराजके पिता राजिराजको स्वप्नमें आकर यह कहा कि–चापोत्कट वंशका राजा, जो हैहय वंशका है, उसकी गुणवती कन्यासे विवाह करनेके लिये तुझसे कहा जाय तो उसे निःशंक होकर ब्याह लेना। क्यों कि उसकी कोखमे ऐसा गर्भ उत्पन्न होगा जो सार्वभौम राजा बनेगा। यह पद्य ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्त्वका है। इसमें चापोत्कट वंशको हैहयवंश कहा है। चावडाओंके मूल वंशका विचार करनेके लिये यह एक नया उल्लेख है। विशेष विचारके लिये अगला विवेचनात्मक भाग देखना चाहिए।

× यह पंक्ति, मूल प्रतिमे अपूर्ण ही प्राप्त हुई है। इसका स्पष्ट कथन क्या है सो ज्ञात नहीं होता। सौराष्ट्रके किसी राजाके साथ मूलराजके युद्ध होनेका इसमे उल्लेख किया गया मालूम देता है। यह पंक्ति दूसरी दूसरी प्रतियोमे नहीं मिलती।

[१७] जिसने दानसे दारिद्र्यको नष्ट किया, शौर्यसे दुर्जनोंका दमन किया और कीर्तिसे रामचंद्रको भी म्लानकर दिया ऐसे उस राजाने चिरकाल तक राज्यका उपभोग किया।

इत्यादि स्तुतियों द्वारा पंडित लोगोंसे प्रशंसित होता हुआ वह इस प्रकार साम्राज्य कर रहा था, तब किसी अवसरपर सपादलक्ष देशका राजा, मूलराज पर चढ़ाई करनेके लिये गूर्जरदेशकी सीमापर आया। दूसरी ओर, उसी समय तिलंगदेशके राजाका बारप नामक सेनापति भी चढ़ आया। इन दोनोंमेंसे किसी एकके साथ जब युद्ध शुरू होगा, तब दूसरी ओरसे दूसरा शत्रु आक्रमण कर बैठेगा, ऐसी परिस्थितिमें क्या करना चाहिए इसका विचार मूलराज अपने मन्त्रियोंके साथ करने लगा, तो उन्होंने कहा कि कुछ समय कन्थादुर्गमें बैठकर व्यतीत कर देना अच्छा है, और जब नवरात्र आनेपर सपादलक्षका राजा अपनी कुलदेवीकी आराधनाके लिये चला जाय, तब अवसर पाकर बारप नामक सेनापतिको जीत लिया जाय। और इसके बाद वापस आनेवाले सपादलक्षके राजाका भी पराजय किया जाय। उनके इस प्रकारके विचार सुनकर राजा बोला कि ऐसा करनेपर क्या लोगोंमें मेरे भाग निकलनेकी निंदा न होगी? । इसपर वे मन्त्री बोले—

२५ [परस्परके द्वन्द्व-युद्धमें] मेंढा जो पीछे हटता है वह प्रहार करनेके लिये है, और सिंह भी आक्रमण करते समय क्रोधसे संकुचित होता है। हृदयमें वैरभावको भर रखनेवाले और गूढ यन्त्र चलानेवाले बुद्धिमान लोग किसी अवगणनाकी परवा न करके [सब कुछ] सह लेते हैं।

इस प्रकार उनकी बात सुनकर मूलराजने कन्थादुर्गमें जाकर आश्रय लिया। इधर सपादलक्षके राजाने गूर्जरदेशमें ही सारा वर्षाकाल बिताया और जब नवरात्रके दिन आए तो उस रणभूमिमें ही शाकम्भरी नगरकी स्थापना कर गोत्रदेवी भी वहीं मँगा ली और वहीं नवरात्रकी पूजाका समारम्भ किया। मूलराजने यह हाल सुनकर मन्त्रियोंके बतलाए हुए उपायको निरर्थक समझा। उसको तत्काल एक मति सूझ आई। राजकीय भेट-सौगाद भेजनेके बहाने उसने अपने सब आसपासके सामंतोंको बुलवा भेजा और फिर जासूसी काम करनेवाले अधिकारियोंके पाससे सभी राजपूतों और सैनिकोंको, वंश और चरित्रसे, पहचान कर उन्हें यथोचित दान आदिसे सम्मानित किया और समयका संकेत बताकर उन सबको सपादलक्ष देशके राजाके शिविरके आसपास तैनात कर दिया। निश्चित दिनपर स्वयं, अपनी प्रधान साँढनीपर बैठकर उसके पास [illegible] सी भूमि पार करके, प्रातःकाल जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सके उस तरह, सपादलक्ष [illegible] छावनीमें जा पहुँचा। साँढनी परसे उतरकर हाथमें तल्वार लेकर मूलराजने अकेले ही [illegible] द्वारपालसे कहा—इस समय राजा किस काममें होते हैं? । जाकर अपने स्वामीको कहो कि [illegible] प्रवेश कर रहा है। यह कहता हुआ [द्वारपालने कुछ आनाकानी की तो] उसने [illegible] द्वारपरसे हटा दिया। फिर जब वह 'यह श्रीमूलराज द्वारमें प्रवेश कर रहे हैं' [illegible] था कि उतनेमें तो वह, उस राजाके तंबूके भीतर प्रवेश करके, राजाके [illegible] बैठा। [illegible] देखकर क्षणभर तो वह राजा भयभीत होकर मौन ही रहा। फिर कुछ [illegible] उसने पूछा कि—'क्या आप ही श्रीमूलराज हैं?' । मूलराजके मुँहसे 'हाँ' [illegible] जितनेमें यह कुछ समयोचित बोलना चाहता था, उतनेमें तो पूर्व [illegible] उस राजाके बड़े डेरे (तंबू) को चारों ओरसे घेर लिया। इसके बाद [illegible] इस प्रकार कहा—इस भूमण्डलमें, ऐसा कोई युद्धवीर राजा, जो मेरे सामने [illegible] मैं सोच किया करता था और कोई वैसा वीर निकल आवे उसके [illegible] था। [illegible]

उपस्थित हुए हैं। किन्तु भोजनके समय मक्खी पड़ जानेके समान, इस तिलङ्ग देशके तैलिप नामक राजाके सेनापतिको, जो मुझे जीतनेके लिये आया है, जब तक शिक्षा न दे लूं तब तक आप पीछेसे हमला इत्यादि न करके रुक जाइये, यही अनुरोध करने मैं आपके पास आया हूं। मूलराजने जब ऐसा कहा तो उस राजाने इस प्रकार कहा—राजा होकर भी अपने प्राणोंकी परवा न करके, सामान्य सैनिककी भाँति अकेले ही इस प्रकार शत्रुगृहमे प्रवेश करके चले आये इसलिये [मैं तुम्हारे साहससे मुग्ध हूँ और] जब तक जीऊंगा तब तक तुम्हारे साथ हमारी सन्धि बनी रहेगी। उस राजाके ऐसा कहने पर 'ऐसा मत कहो, ऐसा मत कहो' इस प्रकार निवारण करता हुआ, उसके द्वारा भोजनार्थ निमंत्रित होनेपर, अवज्ञापूर्वक अस्वीकार करके, वह हाथमें तलवार लेकर उठ चला और उसी सांढनीपर सवार होकर, अपनी उस सेनासे परिवृत होकर उस बारप सेनापतिकी सेनापर टूट पड़ा। उसे मारकर उसके दस हज़ार घोड़े और १८ सौ हाथी छीन कर, जितनेमें पड़ाव डालनेकी तैयारी कर रहा था, उतनेमे तो अपने गुप्तचरोंसे यह सब हाल सुनकर वह सपादलक्षका राजा वहाँसे भाग निकला।

२६) उस राजाने पत्तनमें श्रीमूलराज वसहिका [नामक जैन मन्दिर] और श्रीमुञ्जालदेव स्वामी (शिव) का प्रासाद बनवाया। वह प्रति सोमवारको शिवकी भक्ति करनेके निमित्त सोमेश्वर पत्तन (सोमनाथ पाटन) की यात्राको जाता था। उसकी इस प्रकारकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर सोमनाथ उपदेश देकर मण्डली नगरीमें आये। उस राजाने वहाँ 'मूलेश्वर' नामका मन्दिर बनवाया। नमस्कार करनेकी इच्छासे हर्षित होकर वहाँपर नित्य आनेवाले उस राजाकी, उस प्रकारकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर, सोमनाथने यह कहा कि—मैं समुद्रके साथ तुम्हारे नगरमें अवतीर्ण हूँगा। यह कहकर सोमेश्वर अणहिल्लपुरमें अवतीर्ण हुए। आये हुए समुद्रकी सूचना मिले इसलिये नगरके सभी जलाशयोका पानी खारा होगया। उस राजाने वहाँपर त्रिपुरुषप्रासाद नामक शिवका मन्दिर बनवाया।

२७) इसके बाद, वह उस प्रासादके प्रबंधक होने योग्य किसी उचित तपस्वीकी खोज करते हुए उसने एक कान्थडी नामक तपस्वीका नाम सुना, जो सरस्वती नदीके किनारे, एकान्तर दिनको उपवास किया करता था और पारणाके दिन अनिर्दिष्ट भिक्षाके पाँच ग्रासका आहार किया करता था। जब राजा उसकी वन्दना करने गया, तो उस समय उसे तीन दिनका ज्वर था। उसने अपने ज्वरको कंथामें संक्रामित कर दिया। राजाने उसे देखकर पूछा कि—यह कन्था (गुदड़ी) काँप क्यों रही है ?। राजाके साथ बात करनेमें असमर्थ होनेके कारण मैंने ज्वरको उसमे संक्रामित किया है—ऐसा कहनेपर, राजा बोला—यदि इतनी शक्ति है तो फिर ज्वरको सर्वथा दूर क्यों नहीं कर देते ?। राजाके यों कहनेपर उसने—

> २६. पूर्वजन्मके सञ्चित हमारे जो कोई भी रोग हो वे अब उपस्थित हों। मैं उनसे अनृण होकर शिवके उस परम पदको प्राप्त होना चाहता हूँ।

शिवपुराणके इस वचनको कह कर बताया कि—'कर्म भोगे विना क्षय नहीं होते' यह जानते हुए मैं इसे कैसे दूर कर सकूँ ?। राजाने फिर त्रिपुरुषधर्मस्थानकके प्रबंधक होनेके लिये उससे प्रार्थना की।

> २७. अधिकार मिलनेसे तीन महीनोंमें, और मठका महन्त बननेसे तीन दिनोमें [नरक प्राप्त होता है]; और अगर शीघ्र ही नरकप्राप्तिकी इच्छा हो तो एक दिन पुरोहित बन जाओ।

इस स्मृति-वाक्यके तत्त्वको जानते हुए, तपरूपी नौकासे संसार सागरको पार करके मैं फिर इस गोष्पदमें कैसे डूबना चाहूं। इस वाक्यसे निषिद्ध होकर राजाने [और कोई उपाय न सोच कर] ताम्र-शासनको

मण्डक (परोंठे) में वेष्टित करके भिक्षाके लिये आये हुए उस तपस्वीके पत्रपुटमें छोड दिया। वह उसे न जानता हुआ लेकर वहाँसे लौट गया। यद्यपि सरस्वती नदीने पहले तो उसे मार्ग दे दिया था, पर इस बार वह जानेसे जब उसे मार्ग नहीं मिला, तो वह जन्मकालसे लेकर अपने दोषोंका विचार करने लगा। तात्कालिक भिक्षा संबंधी दोषको जाननेके लिये जब उसे देखता है, तो उसमें उस राजाका दिया हुआ ताम्र-शासन मालूम दिया। इससे तपस्वीको क्रुद्ध जानकर, राजा वहाँ आया और उसकी सान्त्वनाके लिये वह जब अनुनय विनय करने लगा, तो उसने यह कह कर कि–मैंने स्वयं जो दाहिने हाथसे दान ग्रहण किया है वह अन्यथा कैसे होगा, अपने शिष्य वयजल्लदेवको राजाको सौंपा। उस वयजल्लदेवने कहा कि–शरीरमें उबटनके लिये हमको प्रतिदिन आठ पल उत्तम जातिका चंदन, चार पल कस्तूरी, एक पल कपूर तथा बत्तीस वारांगनाएँ, और जागीरके साथ श्वेत छत्र प्रदान करो, तो मैं प्रबंधकका पद स्वीकार करूँगा। राजाने सब देनेका स्वीकार कर, त्रिपुरुषधर्मस्थानमें उसे 'तपस्वियोंका राजा' के पदपर अभिषिक्त किया। वह 'कंकूलोल' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकारके भोगोंको भोगते हुए भी वह अकुटिल भावसे ब्रह्मचर्य व्रतमें निरत रहा। एक बार रातको मूलराजकी रानी उसकी परीक्षा लेने लगी तो उसे पानका बीडा मार कर कुष्ठिनी बना दिया और फिर अनुनीत होकर उसे अपने उबटनके लेपसे और स्नानके मैले जलसे स्नान करवा कर नीरोग किया।

यहांपर लाखाककी उत्पत्ति और विपत्तिका प्रबंध भी दिया जाता है–

२८) प्राचीन कालमें, किसी परमार वंशमें, राजा कीर्तिराज देवकी कामलता नामकी लडकी थी। वह बाल्यकालमें, सखियोंके साथ, किसी महलके आगनमें खेल रही थी। सखियोंने कहा कि अपना अपना वर वरण करो। घोर अन्धकारमें उस कामलताकी आँखोंका मार्ग बंद हो जानेसे, उसने फूलड नामक पशुपालका, जो उस महलके एक खंभेकी ओटमें खड़ा हुआ था और जिसे वह कुछ भी वृत्तान्त मालूम नहीं था, वरण कर लिया। इसके अनन्तर, कुछ वर्षोंके बाद, जब किसी अच्छे वरोंकी खोज उसके लिये की जाने लगी, तो पतिव्रता व्रतके निर्वाहके विचारसे, उसने अपने माता पितासे अनुज्ञा लेकर उसी (पशुपाल) से विवाह किया। उन दोनोंका पुत्र लाखाक हुआ। वह कच्छदेशका राजा बना। यशोराजको उसने [अपने पराक्रमसे] खुश किया था और उसकी बडी कृपासे वह सबसे अजेय हो गया था। उसने ग्यारह बार मूलराजकी सेनाको भगा दिया था। एक बार, जब कि वह लाखा, कपिलकोटके किलेमें रहा हुआ था उसी समय, राजा (मूलराज) ने स्वयं जाकर उसे घेर लिया। वह लक्ष (लाखाक) अपने मादेव नामक एक परम साहसी सुभटके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा–जिसको कि उसने कहीं धाड पाडनेके लिये भेजा था। यह बात जानकर मूलराजने उसके आगमनके मार्ग घेर लिये। कार्य समाप्त करके आते हुए उस सुभटसे राजपुरुषोंने कहा 'हथियार रख दो!'। अपने स्वामीके कार्यकी सिद्धिके लिये उसने वैसा ही करके युद्धके लिये प्रस्तुत लाखाकके पास आकर प्रणाम किया। इसके बाद संग्रामके अवसरपर–

२८ 'ऊगे हुए सूर्यने जो प्रताप नहीं बताया तो हे लाखा! वह दिन निरुट कहा जाता है। गिनती करनेसे तो आठ कि दस दिन गिन सकते हैं।

---

१ इस वचनका मतलब यह मालूम देता है कि सूर्यका उदय होनेपर भी यदि जिस दिन उसका तेज नहीं दिखाई देता–अर्थात् धुंधला छाया रहता है तो लोक उस दिनको निरुट=दुर्दिन मानते हैं। वीर पुरुष या तेजस्वी पुरुष उत्पन्न होकर भी यदि अपना कोई तेज नहीं बताते तो उनका उत्पन्न होना निरर्थक ही समझा जाता है।

२ इस दूसरे वचनका भावार्थ यह मालूम होता है कि–वीर पुरुषको समय प्राप्त होनेपर शीघ्र ही अपना पराक्रम बतानेके लिये उद्यत हो जाना चाहिए। दिनोंकी गिनती करते रहनेसे तो कुछ लाभ नहीं होता।

इत्यादि प्रकारके बहुतसे बोध-वाक्य उस भृत्यके सुनकर और उसकी उत्कट वीरता देखकर लक्षका साहस खूब बढ़ा और उसने मूलराजके साथ बराबर तीन दिन तक द्वन्द्व-युद्ध किया। मूलराजने उसकी अजेयता देखकर चौथे दिन सोमेश्वरका स्मरण किया। रुद्रकी कला जब उसके अन्दर अवतीर्ण हुई, तो [उसके प्रभावसे] उसने लाखाको मार डाला। बादमें लाखाकी देह जब पृथ्वीपर गिरी हुई पड़ी थी तब हवाके संचारसे उसकी हिलती हुई दाढ़ीको मूलराजने पैरसे छुआ। इसपर लक्ष की माताने कुपित होकर यह शाप दिया कि तुम्हारा वंश लूति (कुष्ठ) रोगसे मरा करेगा।

२९. मूलराजने अपने प्रतापाग्निमें लक्षको होम करके उसकी स्त्रियोंके आँसूओंकी धाराको उन्मुक्त किया।

३०. सहसा लंबे जालमें आये हुए लक्षरूपी कच्छप (कछुआ और कच्छका राजा) को मारकर जिसने संग्रामरूपी सागरमें अपनी धी-वरताका परिचय दिया +।

३१. हे मूलराज! दानरूपी लता, बलिके समयमें पृथ्वीमें पैदा हुई, दधीचिके समय उसकी जड़ जमी, रामके होनेपर उसमें अंकुर उगे, कर्णके समय उसमें डाल और टहनियां निकलीं, नागार्जुनके समय कलियाँ प्रकट हुई, विक्रमादित्यके समय फूली और तुम्हारे समयमें आमूल फलवती हुई।

३२. तुम्हारे शत्रुओके [सूने] महल, जो वर्षाकालमें, बादलोंके पानीसे स्नान करते हैं, उनके ऊपर जो तृण उग आये हैं उसके बहाने मानों वे कुश लिये हुए हैं, नालीके पानीसे मानो श्राद्धकी अञ्जलि दे रहे हैं, और दीवालके ढोंकोंके गिरनेके मिससे पिण्डदान करते हैं; इस प्रकार अपने स्वामीके प्रेतके लिये वे प्रतिदिन श्राद्ध कर रहे हैं।

—इस प्रकार लाखा फूलोतकी उत्पत्ति और विपत्ति का यह प्रबंध है ॥ ११ ॥

२९) इस प्रकार उस राजाने पचपन वर्ष तक निष्कण्टक राज्य किया। एक बार सायंकालकी आरतीके अनन्तर राजाने एक दासको इनाममे पानका बीडा दिया। उसने हाथमे लेकर देखा तो उसमें कृमि दिखाई दिये। राजाके आग्रह पूर्वक पूछनेपर उसने यह बात कही। इससे राजाको वैराग्य आया और उसने संन्यास ग्रहण किया और दाहिने पैरके अंगूठेमें अग्नि प्रज्वलित कर, आठ दिनतक गज दान इत्यादि महादान देता रहा।

३३. एकमात्र विनय भावके वशीभूत होकर उसने पैरमें लगी हुई उध्धूमकेश अग्निको सहन किया। अन्य प्रतापियोंकी तो बात ही क्या है, उसने सूर्यके मण्डलको भी भेद दिया।

इस प्रकारकी स्तुतियोंसे स्तुत होते हुए उसने स्वर्गारोहण किया।

सं० ९९८ से लेकर ५५ वर्ष श्री मूलराजने राज्य किया।

॥ श्रीमूलराज प्रबंध समाप्त ॥

---

१ यह श्लोक श्लेषार्थवाला है—लक्षहोम के दो अर्थ होते हैं—लक्ष=लाखा राजाका होम, और लक्ष=एक लाख बार होम। आकाशमे बादलोंकी वृष्टिका किसी कारणसे जब रुकाव हो जाता है तो उसके प्रतिकारके लिये एक लाख आहुतियो वाला होम करनेका वैदिक शास्त्रोमें विधान है। इधर, लाखाकी रानियां, जो कभी रुदन नहीं करती थीं, उनके आसूरूपी वृष्टिका प्रवाह चालू करनेके लिये, मूलराजने अपने प्रतापरूपी अग्निमे लाखाको होम दिया—भस्म कर दिया।

+ इस श्लोकमे 'कच्छपलक्ष' और 'धीवरता' शब्द पर श्लेष है। मूलराजने कच्छप=कच्छपति लक्षराजको मारकर अपनी धीवरता=श्रेष्ठ बुद्धिमत्ताका परिचय दिया। दूसरा अर्थ कच्छपलक्ष यानि एक लाख कछुए, और उस अर्थमें धीवरका अर्थ मच्छीमार ऐसा किया गया है।

मूलराजके वंशज।

[१८] अपने सारे शत्रुओंको समाप्त करके जब वह-(मू ल रा ज)-कथाशेष होगया (मृत्युको प्राप्त हुआ) तो उसके बाद पृथ्वीमण्डलका आभूषण ऐसा चा मु ण्ड रा ज राजा हुआ।

[१९] उसकी सेनाका साज, शत्रुओंकी स्त्रियोंके मनको संतप्त होनेकी विद्या सिखानेमें निपुण पण्डित था और उसके सैन्यने इन्द्रको भी भयभीत कर दिया था।

[२०] उसके हाथरूपी कमलमें रहनेवाली, कोश (१ म्यान, २ कमल)में विलास करनेसे चमकती हुई तलवार रूपी भौंरोंकी श्रेणीने राजाओंके वंशोंको भिन्न कर दिया।

३०) संवत् १०५३ से लेकर १३ वर्षतक चा मु ण्ड रा ज ने राज्य किया।

[२१] जिसकी कीर्ति तीनों लोकोंमें प्रकाशित हो रही है, और जो महीपतियोंमें श्रेष्ठ माना जाता है ऐसा व ल्ल भ रा ज नामक उसका पुत्र राजा हुआ।

[२२] वह दृढ पौरुषवाला राजा शत्रुओंकी नगरियोंको घेरे रहता था इसलिये निशेषज्ञोंने उसका नाम 'ज ग त् झ म्प न' रक्खा था।

३१) सं० १०६६ से लेकर ६ महीने तक राजा व ल्ल भ रा ज ने राज्य किया।

[२३] जिसमें रजोगुण और तमोगुणका अभाव था और जिसके जैसा यश प्राप्त करना औरोंके लिये अत्यंत दुर्लभ था, ऐसा दु र्ल भ रा ज नामका उसका छोटा भाई [उसके बाद] राजा हुआ।

[२४] साँपकी भाँति, फाल करवाल (कठिन तलवार) से सुरक्षित होकर उसका राज्य, निधानके समान, अन्यों (शत्रुओं)का भोग न हो सका।

[२५] सौभाग्यसे प्रकाशमान उस राजाका कर (१ हाथ, और २ मालगुजारी) सर्वथा अनुपभोग्य ऐसी परस्त्री पर और ब्राह्मणोंको प्रदान की हुई भूमिपर, कभी नहीं पड़ा।

३२) सं० १०६६ से लेकर ११ साल ६ महीने तक श्री दु र्ल भ रा ज ने राज्य किया। इस राजा दु र्ल भ ने प त्त न में 'दुर्लभ सर' नामक सरोवर बनवाया।

[२६] फिर, उसके भाईका लड़का 'भी म' नामक राजा हुआ जिसकी प्रवृत्ति तीनों जगत्को अभीष्ट फल देनेवाली हुई।

*

[यहाँ A आदर्शका अनुसरण करनेवाली मुद्रित पुस्तकमें, यह समय-सूचक पाठ इस प्रकार है-]

[इसके बाद सं० १५० (? १०५२) श्रावण सुदी ११ शुक्रवारको पुष्य नक्षत्र और वृष लग्नमें श्री चा मु ण्ड रा ज का राज्यारोहण हुआ। इसने प त्त न में च न्द्र ना थ दे व और चा चि णे श्व र के मन्दिर बनाये।

सं० ५५ (? १०६५) आश्विन सुदी ५से लेकर १३ वर्ष १ मास २४ दिन राज्य किया।

सं० १०५५ (? १०६५) आश्विन सुदी ६ मंगळवार, ज्येष्ठा नक्षत्र, मिथुन लग्नमें श्री व ल्ल भ रा ज दे व गद्दी पर बैठा।

इस राजाने जब मा ळ वा देशकी धा रा न ग री के प्राकार (किलेको) घेर रक्खा था उसी समय शीली रोगसे इसकी मृत्यु हुई। इसके दो बिरुद थे-'रा ज म द न शं क र' (राजारूपी कामदेवके लिये शिव) और 'ज ग ज्झ म्प न'। सं० १० (? १०६६) चैत्र सुदी ५ से लेकर ५ महीने २९ दिन तक इस राजाने राज्य किया।

सं० १५५ (१०६६) चैत्र सुदी ६ गुरुवारको, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र और मकर लग्नमें, दुर्लभराज नामक उसका भाई राज्यपर अभिषिक्त हुआ। इसने पत्तनमें व्ययकरण (कचहरी), हस्तिशाला और घटीगृह युक्त सात तल्लेवाला धवलगृह (राजप्रासाद) बनवाया। अपने भाई वल्लभराजके कल्याणार्थ मदनशङ्कर प्रासाद बनवाया और दुर्लभसर नामक सरोवर भी बनवाया। इस तरह बारह वर्ष इसने राज्य किया।]

[प्रबन्धचिन्तामणिकी इस A संज्ञावाली प्रतिमें चौलुक्य वंशके इन राजाओंका कालक्रम आदि कुछ भिन्न क्रमसे लिखा हुआ मिलता है जिसका भी संग्रह करना ऐतिहासिक दृष्टिसे कुछ उपयोगी होगा ऐसा समझ कर हमने इन कोष्ठकान्तर्गत कंडिकाओंमें उसे मुद्रित किया है। यह कालक्रम सूचक पाठ भी चावडोंके कालक्रम सूचक उस द्वितीय पाठके समान अपूर्ण और अव्यवस्थित है। हमारा अनुमान होता है कि ग्रंथकारने पहले पहल जब यह कालक्रमके बतलानेवाले उल्लेखों और संवतोंका संग्रह करना शुरू किया होगा और वृद्ध जनोंसे तथा अन्यान्य लेखोंसे इस विषयके प्रमाण एकत्रित करने प्रारंभ किये होंगे, उस समयका लिखा हुआ जो प्राथमिक असंशोधित आदर्श रहा होगा उस परसे यह A संज्ञक आदर्श (तथा उसके समान जातीय अन्य आदर्श) की प्रतिलिपि हुई होगी और इसलिये इनमें यह असंशोधित कालक्रमवाला पाठ वैसाका वैसा नकल होता हुआ चला आया हुआ होना चाहिए। संशोधित पाठ वही है जो ऊपर मूलमें दिया गया है।]

*

३३) इसके बाद [A D प्रतिके अनुसार 'सं० १०५ (१०७८) ज्येष्ठ सुदी १२ मंगलवारको अश्विनी नक्षत्र, मकर लग्नमें'] श्री भीम नामक अपने पुत्रका राज्याभिषेक करके स्वयं तीर्थोपासनाकी वासनासे वाणारसीके प्रति प्रस्थान किया। मालवक मण्डलमें पहुँचनेपर वहांके महाराजा मुञ्जने रोक कर इस प्रकार कहा कि–'छत्रचामरादि राज-चिन्होंका परित्याग करके कार्पटिक (संन्यासी) की भाँति आगे जाओ, नहीं तो युद्ध करो'। बीच ही में उत्पन्न ऐसा इसे धार्मिक विघ्न समझकर, यह वृत्तान्त भीमराजको कहलाया और स्वयं कार्पटिकका वेश पहन कर तीर्थयात्रा की; और वहींपर परलोक साधन किया।

३४) इसीके बाद मालवाके राजाओंके साथ गूजरातके राजाओंका दृढमूल ऐसा विरोधका बंधन बंध गया।



६. मुञ्जराज प्रबन्ध।

३५) अब यहापर प्रसङ्गसे आया हुआ, मालवामण्डलके मण्डनरूप श्री मुञ्जराजका चरित्र वर्णन किया जाता है—प्राचीन कालमें, उस मण्डलका परमारवंशी राजा, जिसका नाम श्री सिंहभट था, राजपाटी निमित्त परिभ्रमण करते हुए, उसने मुजके वनमें एक सद्य जात अति रूपवान् बालकको देखा और स्वकीय पुत्रके समान वात्सल्य भाव धारण करके उसे उठा लिया और महलमें लाकर रानीको समर्पण किया। मुजके वनमें प्राप्त होनेके कारण उसका नाम मुञ्ज रक्खा। बादमें उसके एक सीन्धल नामक औरस पुत्र भी पैदा हुआ। [एक समय] निःशेष राजगुणोंके समूहसे भूषित ऐसे उस मुञ्जका राज्याभिषेक करनेकी इच्छासे राजा उसके महलमें गया। मुञ्ज अपनी स्त्रीको, जो उस समय वहा उपस्थित थी, किसी एक वेत्रासनकी ओटमें विठाकर, प्रणाम पूर्वक राजाकी सेवा करने लगा। राजाने उस प्रदेशको निर्जन देखकर प्रारभसे लेकर उसके जन्म आदिका वृत्तान्त कह सुनाया और फिर कहा कि—तुम्हारी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर अपने औरस पुत्रको छोड़कर, तुम्हें राज्य दे रहा हूँ, पर इस सीन्धल नामक भाईके साथ पूरे प्रेमके व्यवहारके साथ वर्तना। इस प्रकारकी आज्ञा देकर राजाने उसका अभिषेक किया। कहीं, अपने जन्मका यह गुप्त वृत्तान्त बाहर न फैल जाय इस आशकासे उसने अपनी उस स्त्रीको मार डाला। बादमें उसने अपने पराक्रमसे सारे भूतलको आक्रान्त किया और समस्त विद्वज्जनोंके चक्रवर्ती जैसे रुद्रादित्य नामक पडितको महामत्री बनाकर अपने राज्यकी चिन्ताका समस्त भार उसे सौंपा। उस सीन्धल नामक भाईको, जिसने अपने उत्कट स्वभावके कारण राजाका कुछ आज्ञाभग किया था, स्वदेशसे निर्वासित कर, चिरकाल तक निष्कटक राज्य करता रहा।

३६) वह सीन्धल गूजरात देशमें आकर, अर्बुद पर्वतकी तलहटीमें काशहद नगरके निकट अपना एक छोटा सा गाँव बसा कर रहने लगा। दीवालीकी रातको शिकार खेलने निकला। चोरोंको वध करनेवाली भूमिके निकट एक सूअरको चरते देख, उसने सूलीपरसे गिरे हुए एक चोरके शवको न देख कर, उसे घुटनोंसे दबा कर, जब वह अपना बाण चलाने लगा, तो उस शवने [मारनेका] सकेत किया। उसे हाथ लगा कर मना करते हुए, उस बाणसे सूअरको मार गिराया। बादमें जब सूअरको अपनी ओर खींचने लगा तो वह शव जोरोंका अट्टहास करके उठ खड़ा हुआ। इस पर सीन्धुलने कहा—तुम्हारे किये हुए सकेतके समय सूअरपर प्रहार करना उचित था, या समझ बूझकर जो मैंने प्रहार किया वह ठीक था?" उसके इस वाक्यके पूरा होनेपर, वह छिद्रान्वेषी प्रेत, उसके ऐसे निःसीम साहससे सन्तुष्ट होकर बोला कि 'वरदान माँगो।' ऐसा कहनेपर—'मेरे बाण जमीनपर न गिरें' ऐसा माँगा, उस शवने कहा 'और भी कुछ माँगो।' इसपर उसने कहा कि—'मेरी भुजाओंमें सारी लक्ष्मी स्वाधीन हो।' उसके साहससे चकित होकर उस प्रेतने कहा कि—तुम मालवमण्डलमें जाओ। वहाँ मुञ्ज राजाका विनाश निकट है, इसलिये तुम वहीं जाकर रहो। तुम्हारे ही वशमें वहाँ राज्य रहेगा। इस प्रकार उसके कथनानुसार वह वहाँ गया और मुञ्ज राजासे कोई एक सपत्-शाली प्रदेश प्राप्त कर, कुछ काल बाद, फिर उसी प्रकार उद्धत भावसे वर्तने लगा। एक बार एक तेलीसे कुश माँगी। उसने नहीं दी। इसपर कुपित होकर, बलात्कार पूर्वक छीन कर, और उसे मरोड कर उसके गलेमें डाल दी। तेलीने राजाके आगे पुकार की। राजाने समझा बुझाकर उसे सीधी करवाई। उसके ऐसे उत्कट बलसे राजा मुञ्ज भयभीत हो गया। इसके बाद, मालिश करनेमें बड़े कुशल ऐसे कुछ कलावन्त विदेशसे वहाँपर आये। वे राजासे मिले। राजा उनसे अपने शरीरमें मालिश कराने लगा। वे भी अपनी कलासे हाथ पैर आदि अग

उतार कर फिरसे वैसे चढा देते थे। इस प्रकार दो तीन बार कराया। प्रसन्न होकर राजा सी न्ध ल का भी इसी प्रकारका मर्दन करवाने लगा। उसके अंगोंके उतार लेनेपर जब वह निश्चेष्ट हो गया तो आंखें निकलवा लीं। [क्यों कि] सुसज्जित अवस्थामें तो उसकी आँख निकालनेमें कौन समर्थ हो सकता था?। अतः इस प्रकार मु ञ्ज ने उसकी आँखे निकलवा लीं और फिर उसे काठके पींजरेमें बंद करा दिया। उसके भो ज नामक पुत्रका जन्म हुआ। उस पुत्रने सभी शास्त्रोका खूब अभ्यास किया। छत्तीस प्रकारके आयुधोंका आकलन कर, बहत्तर कलारूपी समुद्रका पारगामी बना। इस तरह सभी लक्षणोसे युक्त होकर वह बडा होने लगा। उसके जन्म समय किसी निमित्तज्ञ ज्योतिषीने जन्मकुण्डली बना कर दी [जिसमें लिखा था कि-]

३४. पचपन वर्ष, सात मास, तीन दिनतक भो ज रा जा गौड़ देशके साथ दक्षिणापथका भोक्ता होगा।

इस श्लोकके अर्थको जब मु ञ्ज रा ज ने समझा, तो सोचा कि इसके रहनेपर मेरे लड़केको राज्य नहीं होगा; इस आशंकासे उसने भो ज को, वध करनेके लिये अन्त्यजोंके सुपुर्द किया। उन्होंने रातको उसकी मधूर मूर्ति देखकर, अनुकम्पाके साथ कांपते हुए कहा कि—अपने इष्ट देवताको याद करो। इसपर भो ज ने निम्नलिखित काव्य, पत्रपर लिखकर, मु ञ्ज रा ज को देनेके लिये समर्पण किया।

३५. सत्ययुगके अलंकारके समान वह राजा मा न्धा ता चला गया। जिस रा व ण के शत्रु रा म च न्द्र ने महासागरमे सेतु बांधा था वह भी आज कहां है? और फिर यु धि ष्ठि र प्रभृति अनेक राजा जो आपके समय तक हो गये हैं, सब चले गये; पर यह पृथ्वी किसीके भी साथ नहीं गई! पर मैं समझता हूं, तुम्हारे साथ तो जायगी!

राजा उसे पढकर मनमें अत्यन्त खिन्न हुआ और बालहत्या करनेवाले अपने आपकी निन्दा करने लगा।

[२७] हाय, हे भोज! मरण कालमे कहा हुआ तुम्हारा काव्य हृदय वेध रहा है। दौर्भाग्यके स्थान समान मुझ पापी, दुष्टको तुम्ही शरण हो।

[२८] हे गुणागार भोज! तुझ बिना इस राज्यसे मुझे क्या काम है? अरे कोई चिता सजा दो, ताकि मैं मरकर जाकर भोजसे मिलूं।

तब मंत्रियोने राजाको प्रबोधित करते हुए यह वाक्य कहा—

[२९] हे स्वामिन्! यह अति अज्ञान सूचक है जो इस तरह अब आप बोल रहे हैं। जानना वही प्रमाण है जो ऐसी कदर्थनाका कारण न हो।

—इस प्रकार बारंबार विलाप करने लगा।]

३७) बादमें, उनके पाससे अत्यन्त आदरके साथ बुलवाकर उसे युवराजकी पदवी देकर सम्मानित किया। तै लि प दे व नामक ति ल ङ्ग दे श के राजाने सेना भेज कर उस (मु ञ्ज) पर आक्रमण किया। उस समय रु द्रा दि त्य नामक महामंत्री रोगग्रस्त था; उसके बारंबार निषेध करनेपर भी मु ञ्ज ने उसके ऊपर चढाई करना चाहा। [मंत्रीने कहा—

[३०] हे महाराज! हमारी सीख मान लीजिये, अवहेला न कीजिये। तुम्हारे उधर चले जानेपर इस (मुञ्ज) मंत्रीको भीख माँगनी पडेगी।

[३१] तुम्हारे बैठे रहनेपर और मेरे लॅंघ (चले) जानेपर राजाका राज्य रुल जायगा। ऐसा होनेपर बडा ही अकाज होगा और उसकेलिये तुम मालवके धनी जानो।

[३२] हे स्वामिन् ! यह महेता (महत्तम=महामात्य) विनति करता है कि–अब हमारा यह आखिरी जुहार (नमस्कार) हो । हमें [जानेका] आदेश हो । क्यों कि हम तुम्हारे सिरपर राख पडती देख रहे हैं ।

इस प्रकार मन्त्रीके निषेध करने पर भी वह सेनाके साथ चला ।]

[मन्त्रीने आखिरमें कहा कि–] गो दा व री नदीको सीमा मान उसे लाँघकर आगे प्रयाण न कीजियेगा । इस प्रकार मन्त्रीने शपथ देकर आगे न जानेके लिये रोका था; तथापि मु ञ्ज ने यह विचार कर कि पहले छ बार उसे जीता है, जोशमें आकर उस नदीको पार करके, सामने किनारे जाकर पड़ाव डाला । रु द्रा दि त्य ने जब राजाके उस वृत्तान्तको सुना, तो उसकी अविनयशीलताके कारण कोई भावी विपद आनेवाली है, यह सोचकर स्वय चिताग्निमें प्रवेश किया । इसके अनन्तर तै लि प ने छल और बलसे उसकी सेनाको तितर-वितर कर मु ञ्ज रा जा को गिरफ्तार कर लिया और मूजकी रस्सीसे बाँध उसे कारागारमें बन्द कर दिया । काठके पिंजड़ेमें उसे रक्खा गया था और राजा तै लि प की बहन मृ णा ल व ती उसकी परिचर्या करती रहती थी । मु ञ्ज का उसके साथ पत्नीका-सा स्नेह सम्बन्ध हो गया । उधर पीछे रहे हुए उसके मन्त्रियोंने एक सुरग खुदवाई और उसके जरिये मु ञ्ज को संकेत करवाया । इतनेमें, एक बार जब वह दर्पणमें अपना प्रतिबिंब देख रहा था, तो उसी समय मृ णा ल व ती, अनजानमें, पीछे आ खड़ी हुई । उसने भी दर्पणमें अपने बुढ़ापेके जर्जर मुखको देखा और फिर देखा कि युवक मु ञ्ज रा ज के मुँहके पास उसका मुँह अत्यन्त भद्दा दिखाई दे रहा है । इसलिये उसे उदास होते देख मु ञ्ज ने कहा–

३६ मु ञ्ज कहता है कि–ऐ मृणालवती ! गये हुए यौवनको झुरो मत, यदि सक्करकी डली पीसी जा कर सैंकड़ों टुकड़ोंमें छिन्न भिन्न हो जाय, तो भी वह मीठी चूर ही लगती है ।

इस प्रकार कह कर [उसे शान्त बनानेका प्रयत्न किया], बादमें अपने स्थानको जानेकी इच्छा-वाला होते हुए भी मृ णा ल व ती का विरह वह नहीं सह सकता था, और भयसे उसे यह वृत्तान्त भी कह नहीं सकता था । बार बार [मृ णा ल व ती के] पूछनेपर भी, अपनी चिन्ता न कह सका । बिना नमककी और अधिक नमक दी हुई रसोई खाकर भी जब वह उसका स्वाद नहीं जान सका तो, मृ णा ल व ती ने अत्यत आग्रह और प्रेमपूर्वक पूछा, तब बोला कि मैं इस सुरङ्गके रास्ते अपने घर जानेवाला हूँ । यदि तुम भी वहाँ चलो तो मैं तुम्हें पटरानीके पदपर अभिषिक्त करके अपने प्रसादका फल दिखाऊ । इसपर उसने कहा कि क्षणभर प्रतीक्षा करो, तब तक मैं अपने गहनोंकी सन्दूक ले आऊ । यह कहकर उस कात्यायिनी (ढलती उमरकी विधवा) ने सोचा कि यह वहाँ जाकर मुझे छोड़ देगा, अपने भाई राजासे वह वृत्तान्त जाकर कह दिया । इस पर वह राजा, उसकी विशेष विडम्बना करनेके लिये, उसको बन्धनमें बाँधकर प्रतिदिन भिक्षाटन कराने लगा । वह घर घर घूमता हुआ, खिन्न होकर उदासीके इन वचनोंको बोला करता । जैसे कि–

३७ वे नर मूर्ख है जो स्त्रीपर विश्वास करते हैं, जिस स्त्रीके चित्तमें सौ, मनमें साठ, और हृदयमें बत्तीस आदमी बसा करते हैं ।

और भी–

३८. यह मु ञ्ज जो इस प्रकार रस्सीमें बन्धा हुआ बंदरकी तरह घुमाया जा रहा है, वह बचपन-हीमें झोलीके टूट जानेसे गिरकर क्यों न मर गया, या आगमें जल कर राख क्यों न हो गया ।

तब किन्हीं सज्जन पुरुषोंने दिलासा देते हुए कहा कि–

[३३] हे रत्नाकर, हे गुणपुञ्ज मुञ्ज ! चित्तमें इस प्रकार विषाद न करो । क्यों कि जिस प्रकार विधाता ढोल बजाता है उसी तरह मनुष्यको नाचना पड़ता है ।

फिर किसी और दयार्द्रचित्त सज्जनने कहा—

[३४] हे मुञ्ज ! इस प्रकार खेद न करो । क्यों कि भाग्यक्षय होनेपर वह रावण भी नष्ट हो गया, जिसका गढ़ तो लंका था और जिस गढ़की खाई खुद समुद्र था और उस गढ़का मालिक खुद रावण दस माथेवाला था ।

इसी प्रकार—

३९. हाथी गये, रथ गये, घोड़े गये, पायक और भृत्य भी चले गये । महता (महामात्य) रुद्रादित्य भी स्वर्गमें बैठा आमंत्रण कर रहा है !

बादमें, एक अवसरपर, किसी गृहस्थके घरपर वह भिक्षाके लिये ले जाया गया । उसकी स्त्री उस समय छोटे पाड़ेको छास पिला रही थी । उसने उसको भिक्षाके लिये खड़ा देख कर गर्वसे कन्धा ऊँचा किया और भीख देनेका इन्कार किया । इसपर मुञ्ज बोला—

४०. हे भोली मुग्धे ! इन छोटेसे पाडों (भैंसके बच्चों) को देख कर ऐसा गर्व न कर । मुञ्जके तो चौदह सौ और छहत्तर हाथी थे, पर वे भी चले गये ।

उसने इस प्रकार उत्तर दिया—

[३५] जिसके घर चार बैल है, दो गायें है और मीठा बोलने वाली ऐसी [मैं] स्त्री हूँ, उस कुटुंबी (कणबी=किसान) को अपने घरपर हाथी बाँधनेकी क्या जरूरत है ?

एक दूसरी बार जब कि मुञ्जको इस प्रकार इधर उधर घुमाया जा रहा था, तब, राजा किसी बावडी पर बैठा हुआ उसे देख कर हँसने लगा । इस पर वह बोला—

[३६] ऐ धनके अन्धे मूढ़ ! मुझे विपत्तिग्रस्त देखकर हँसता क्या है ?—लक्ष्मी कभी कहीं स्थिर होती देखी है ? तू क्या इस जलयंत्र-चक्र (अरहट) की घटियोंको नहीं देखता जो क्रमसे खाली होती है, भरती हैं और फिर खाली होती हैं !

इसी तरह पीछे लगकर चिढ़ानेवाले आदमियोंको देखकर उसने कहा—

[३७] मैं उन पर वारी जाता हूँ जो गोदावरी नदीके ऊपर ही अटक गये (मर गये), जिन्होंने न इन दुर्जनोकी ऋद्धि देखी और न इस विह्वल मुञ्जको देखा ।

फिर अपनी मन्दबुद्धिताका स्मरण करता हुआ इस प्रकार बोला—

[३८] दासीको कभी प्रेम नहीं होता यह निश्चित जानना चाहिए । देखो, दासीने राजा मुञ्जेश्वरको घर घर भीख माँगता करवाया ।

[३९] और जो लोग अपना बडप्पन छोड़कर वेश्या और दासियोंमें राचते हैं वे मुञ्जराजाके समान बहुत ही अनादर सहन करते हैं ।

[४०] हे * मर्कट (बंदर) ! इसलिये तुम अफसोस न करो कि मैं इस स्त्रीके द्वारा खँडित किया जा रहा हूँ । राम, रावण, और मुञ्ज आदि कैसे कैसे लोग स्त्रियोंसे खंडित नहीं हुए ?

* मदारी लोग बंदर और बंदरियाका जब खेल करते हैं तब, बंदरिया रूठकर बंदरका अपमान करती है और बंदरसे पानी भरवाना चक्की चलवाना आदि काम करवाती है । बंदर अपमानित होकर मुँह फेर बैठ जाता है और हाथसे अपने सिरको पीटता है । इस दृश्यपर किसीकी यह उक्ति है ।

[४१] ऐ यन्त्र, +चरखा ! तुम इसलिये न रोओ कि मैं इस स्त्री द्वारा भ्रमाया (घुमाया) जा रहा हूँ। ये तो कटाक्ष फैंक कर ही (मनुष्योंको) घुमाया करती हैं, तो फिर हाथसे खींचने पर की बातका तो कहना ही क्या है ?

[४२] मुञ्ज कहता है कि, हे मृणालवती ! जो बुद्धि पीछे उत्पन्न होती है, वह अगर पहले ही हो जाय तो कोई विघ्न आकर घेर नहीं सकता।

[४३] जो राजा दशरथ देवताओंके राजा (इन्द्र) के तो मित्र थे, और यज्ञ पुरुषके तेज अंशके समान रामके पिता थे, वही पुत्रविरहके दुःखसे शय्यापर ही पडे पडे मर गये, उनका शरीर जलते हुए तेलके मटकेमें रक्खा गया और बहुत दिनोंके बाद उसका संस्कार हुआ। हाय, कर्मकी गति टेढी है !

[४४] सिरपर विधु ×(चन्द्रमा और विधाता) के वक्र हो कर आ बैठने पर, शिवके सदृश जो सब देवताओंके गुरु हैं उनका भी कैसा हाल हो गया है सो तो देखो। उनके पास अलंकारमें तो मात्र नर-कपाल है जिसे देखते ही डर लगता है, परिवारमें जिसका सारा शरीर छिन्न भिन्न है ऐसा एक भृंगी है, और सम्पत्तिमें एक ढलती ऊमरका बूढा बैल है। फिर हम लोगोंके सिरपर जो विधि यानि विधाता वक्र हो कर आ बैठे तो क्या क्या हाल न हो।

इस प्रकार चिरकाल तक भिक्षा मँगवाने बाद राजाकी आज्ञासे मुञ्जको वध्य-भूमिमें ले गये। वहाँ पहले पहननेका उसका वस्त्र ले लिया गया। तब वह बोला—

[४५] यह कमर जो हमेशां मतवाले हाथीके ऊपर ही बैठकर चलनेवाली थी, जो सदा विचित्र सिंहासनपर ही बैठती थी और जो अनेक रमणियोंके जघनस्थल पर लालित होती थी, वह आज इस प्रकार विधिवश विना वस्त्रकी कर दी गई !

तब मुञ्जने पूछा कि—'किस प्रकार मुझे मारोगे ?' [उत्तर मिला] 'वृक्षकी शाखामें लटका कर।' तब वह बोला—

[४६] कहाँ तो यह महावनमें रहा हुआ वृक्ष है और कहाँ इस संसारका पालन करनेवाले राजाओंके पुत्र ! अहो, कभी न घट सकनेवाली बातको घटानेमें पटु ऐसा यह विधिका चरित्र बडा दुर्बोध है !

उन्होंने कहा कि 'इष्ट देवताको याद करो' इस पर वह बोला—

४१ इस यशके पुञ्जके समान मुञ्जके गत होनेपर, लक्ष्मी है सो तो विष्णुके पास चली जायगी और वीरश्री है वह वीर मन्दिरमें चली जायगी, किन्तु [और कोई आश्रयस्थान न मिलनेसे] सरस्वती है सो निराश्रित हो जायगी।

+ स्त्री जब चरखा चलाती है तब उसमेंसे रूँ रूँ इस प्रकारकी अवाज निकलती है। उस अवाजपर यह कविकी उत्प्रेक्षा है। स्त्री अपने हाथसे चरखेको खूब घुमा रही है इसलिये मानों चरखा रो रहा है। कवि कहता है कि, भाई चरखा तू रो मत। स्त्रीके तो कटाक्ष मात्रसे भी मनुष्य घूमने लगते हैं, तो फिर तुझे तो यह अपने हाथसे फिरा रही है।

× यहाँपर 'विधौ वक्रे मूर्ध्नि' इस वाक्यपर श्लेष है। संस्कृतमें 'विधु' शब्द चन्द्रका वाचक है और 'विधि' विधाताका। इन दोनों शब्दोंका सप्तमी विभक्तिके एक वचनमें 'विधौ' ऐसा रूप बनता है। जिसके पहले पक्षमें 'विधुके वक्र होनेपर,' और दूसरे पक्षमें 'विधिके वक्र होनेपर' ऐसा अर्थ बताया गया है।

इस तरहके उसके अन्य वहुत वाक्य हैं जो परम्पराके अनुसार जानने चाहिये* ।

वादमें उस मुञ्जको मारकर उसका सिर सूलीमें पिरोकर अपने आँगनमें रखवाया और उसमें रोज दहीं लगवा लगवाकर अपने अमर्पका पोपण करता रहा ।

४२. जो मुञ्ज यशका पुञ्ज था, हाथियोंका पति था, अवन्तीका स्वामी था, सरस्वतीका पुत्र था, प्राचीन कालके जैसा कृती पुरुष था; वही कर्णाट देशके राजाके द्वारा अपने मंत्रीकी कुबुद्धिसे पकड़ा गया और सूलीपर चढ़ा दिया गया । हाय, कर्मकी गति कैसी विषम है ।

*

३८) उसके वाद, मालवा मण्डलके मंत्रियोंने जब यह वृत्तान्त सुना तो, उन्होंने फिर उसके भतीजे भोजको राज्य पदपर अभिषिक्त किया ।

इस प्रकार श्रीमेरुतुङ्गाचार्य रचित प्रबंधचिन्तामणि ग्रन्थका 'राजा श्रीविक्रमादित्य प्रभृति महासाहसिक और परोपकार-आदि गुणरूपी रत्नोंसे अलंकृत राजाओंके चरित्र' नामक यह पहला प्रकाश समाप्त हुआ ।

---

* मालूम होता है मुंजकी यह करुण कथा उस जमानेमें वहुत लोक प्रसिद्ध और लोक साहित्यकी विशिष्ट वस्तु बनी हुई थी । मेरुतुङ्गसूरिने जो यहाँ पर ये कुछ संस्कृत, प्राकृत और देश्य पद्य दिये हैं वे या तो भिन्न भिन्न कर्तृक मुंज विषयक प्रबंधोंमेंसे उद्धृत किये गये हैं; या परंपरासे सुनकर लिख लिये गये हैं। मुंजकी इस कथामें एक तो संपत्तिकी अस्थिरता और दूसरी स्त्रीकी अविश्वसनीयता और तीसरी मुंज जैसे महाबुद्धिवान् शक्तिवान् राजाकी, दुश्मनके द्वारा की गई त्रासोत्पादक विटंबना- इन तीन वातोका विचित्र संघटन हो जानेसे उपदेशकोंको अपने उपदेशकोलिये यह एक वास्तविक घटनाका वतलानेवाला करुण रसका वोधदायक आख्यान ही मिल गया । अभी तक निश्चय नहीं हो सका कि इस कथामें ऐतिहासिक तथ्य कितना है और प्रवन्धकारोंकी वनावट कितनी है । यहाँपर जो पद्य दिये गये हैं वे तो प्रवन्धकारोंकी उपदेशात्मक उक्तियाँ मात्र हैं । कुछ पद्य तो मेरुतुङ्गसूरिके भी पीछेके वने हुए हैं और किसीने प्रसंगोचित समझकर इस ग्रंथमें प्रक्षिप्त कर दिये हैं ।

१. दही लगवानेका मतलब यह कि उसे देखकर कौए आवे और उस मस्तकपर बैठें । किसी दुश्मनका बहुत ही बुरा चाहना होता है तब लोग बोला करते हैं कि—उसके सिरपर तो कौए बैठेंगे । उसी लोकोक्तिका सूचक यह कथन है ।

७. भोज और भीमका प्रबन्ध।

३९) इसके बाद [सं० १०७८ के साल] जब मालवमण्डल में श्री भोजराज राज्य करता था, तब इधर गूर्जरभूमि में चोलुक्य चक्रवर्ति भीम पृथिवीका शासन करता था।

एक रात्रिके अन्तमें राजा भोजने, अपने चित्तमें लक्ष्मीकी अस्थिरताको विचारते हुए और अपने जीवनको भी तरंगकी भाँति चञ्चल समझते हुए, प्रातःकृत्यके बाद, दानमण्डपमें बैठकर नौकरोंके द्वारा याचकोंको बुला, यथेच्छ सुवर्ण टकोंका (सोनेकी मोहरोंका) दान देना प्रारंभ किया।

४०) इस पर, रोहक नामक उसके मंत्रीने, खजानेका नाश होता देख, राजाके औदार्य गुणको दोष समझते हुए उसे रोकनेके लिये अन्य उपायोंसे समर्थ न होकर, एक दिन सर्वावसर (न्याय सभा) के उठ जाने बाद सभामण्डपके भारपट्ट पर खड़ियासे इन अक्षरोंको लिख दिया—**आपत्ति कालके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिए।**

प्रातःकाल यथा समय राजाने उन अक्षरोंको पढ़ा। सभी परिजनोंमेंसे किसीने भी जब उस कार्यके करनेका स्वीकार नहीं किया तो राजाने उसके साथ यह लिख दिया—**भाग्यवानको आपत्ति कहा है।**

इस पर मंत्रीने जबावमें लिखा कि—**कभी दैव कुपित हो जाय तो?।**

इस पर राजाने फिर उसके सामने लिख दिया कि—[तब तो] **सञ्चित भी विनष्ट हो जायगा।**

इससे निरुत्तर होकर उस मंत्रीने अभय वचन माँगकर उस कथनको अपना लिखा बताया। बादमें राजाने कहा, कि मेरे मनरूपी हाथीको ज्ञानरूप अंकुशसे वशमें रखनेके लिये महामात्रके समान ५०० पण्डितोंका यह समूह यथेच्छ रूपसे अपना अपना ग्रास प्राप्त किया करें[1]।

राजाने अपने जीवनका ध्येय सूचित करनेवाली ऐसी चार आर्याओंको अपने कङ्कणपर खुदाई[2] जिनका अर्थ यह है—

४४ यही उपकार करनेका अवसर है, जब तक कि स्वभावतः ही चञ्चल ऐसी यह सम्पत्ति विद्यमान है। फिर यह विपत्ति कि जिसका उदय भी निश्चित है, उसके आनेपर उपकार करनेका अवसर कहाँ रहेगा?।

४५ हे पूर्णिमाके चन्द्रमा! अपने किरण-समूहकी समृद्धिसे अभी आज इस सारे भुवनको उज्ज्वल कर दे। [फिर यह मौका न मिलेगा, क्यों कि] निर्दय विधाता चिरकाल तक किसीका सुस्थिर होना सह नहीं सकता।

४६ ऐ सरोवर! दिन और रात याचकोंका उपकार करनेका यही अवसर है। यह जल तो उन पुराने बादलोंके उदय होनेपर फिर सर्व-सुलभ ही है।

४७ ऐ किनारेके वृक्षोंको गिरा देनेवाली नदी! यह सुदूर तक उन्नत दिखाई देनेवाला पानीका पूर तो कुछ ही दिनों तक ठहरेगा, पर यह एक पातक (पेड़का गिरा देना) तो चिरस्थायी होकर रहेगा। और फिर—

---

१ इसका मतलब यह है कि राजा भोजने अपने पास ५०० पंडित रक्खे थे जिनके निवाहके लिये राज्यकी ओरसे स्थायी ग्रासका प्रबन्ध कर दिया गया था।

२ पुराने जमानेमें यह एक प्रथा थी कि-विचारशील लोग, जिस किसी सद्विचारको अपना जीवन ध्येय बना लेते थे उसका सतत स्मरण रहा करे इसलिये उस विचारके सूत्रको अपने हाथके कंकणपर उत्कीर्ण करा (खुदा) लेते थे और उसका सदैव अवलोकन किया करते थे। वस्तुपाल आदि अन्य भी महापुरुषोंने अपने जीवनसूत्र कंकणपर खुदवा रक्खे थे।

४८. सूर्यके अस्त होनेके पहले जो धन याचकोंको नहीं दे दिया गया, मैं नहीं जानता, वह धन प्रातःकाल किसका होगा।

इस प्रकार अपना ही बनाया हुआ यह श्लोक जो मेरे कण्ठका आभरण-सा होगया है उसको इष्ट मंत्रकी तरह जपता हुआ, हे मंत्रिन् ! मैं आप जैसे प्रेतके समान [लोभी] पुरुषसे कैसे ठगा जा सकता हूँ।

४१) एक दूसरे अवसरपर, राजा राजपाटिकामें घूमता हुआ नदीके किनारे जा खडा हुआ। वहाँ सिरपर काठका भारा उठाए हुए और पानीको लाँघ कर आते हुए किसी दरिद्री ब्राह्मणको देखा। उससे उसने पूछा कि–

४९. '**कितना है पानी ब्राह्मण !**' उसने कहा–'**घुटने तक हे राजा।**'
राजाने फिर पूछा–'**तेरी अवस्था ऐसी क्यों ?**' वह बोला–'**आप जैसे सब कहीं नहीं !**'
उसके इस वाक्यको सुनकर राजाने जो पारितोषिक उसे दिया, मंत्रीने धर्म-खातेमें इस प्रकार लिख रखा–

५०. "जानुदघ्न" (जानुतक) कहनेवाले ब्राह्मणको सन्तुष्ट होकर भोजने एक लाख, फिर एक लाख, फिर एक लाख; और उसपर दस मतवाले हाथी; इस प्रकार दान दिया।

४२) एक दूसरी बार रातमें, आधीरातको राजाकी अचानक नींद खुली। उस समय आकाशमण्डलमें चंद्रमा नया ही उदित हुआ था। उसे देखकर वह अपने विचारूपी समुद्रके उठते हुए तरंगके जैसा यह काव्यार्ध बोलने लगा–

५१. यह चंद्रमाके भीतर, बादलके टुकड़ेकी-सी जो लीला कर रहा है लोग उसे शशक (खरगोश) कहते हैं, किन्तु मुझे वह ऐसा नहीं माल्रम देता।

राजाके बारंबार ऐसा कहनेपर, कोई चोर जो उसी समय सेंध मारकर, कोशगृहमें घुसा था, अपने प्रतिभाके वेगको रोकनेमें असमर्थ होकर बोल उठा–

'मैं तो चंद्रमाको ऐसा समझता हूँ कि तुम्हारे शत्रुओंकी विरहाक्रान्त तरुणियों (स्त्रियों) के कटाक्षरूपी उल्कापातके सैकड़ों व्रणके चिन्हसे वह अंकित हो रहा है।'

उसके ऐसा बोल पडने पर, अंगरक्षकोने उसे पकड लिया और कारागारमें बंद कर दिया। इसके बाद प्रातःकाल, सभामें ले आये हुए उस चोरको राजाने जिस पारितोषिकसे पुरस्कृत किया, उसे धर्म-खाताके काममे नियुक्त अधिकारीने इस प्रकार लिखा–

५२. उस चोरको, जिसे मृत्युका भय लगा हुआ था, राजाने ऊपर लिखे दो चरणोंके लिये प्रसन्न होकर यह दान दिया–दस करोड़ सुवर्ण मुद्रायें और ऊपर आठ हाथी, जो दाँतोंके आघातसे पर्वतका भेदन करते थे और जिनके मदसे मुदित हो कर भौंरे गुञ्जारव किया करते थे।

[फिर एक बार खिड़कीकी जालीसे आते हुए चंद्रमाको देख कर बोला–

[४७] हे सुभ्रु ! खिड़कीकी जालीमेंसे प्रवेश करनेके कारण जिसकी चाँदनी खंड खंड हो गई है, वह चंद्रमा, तुम्हारे वक्षःस्थल पर आकर विराज रहा है।

उसी समय घरमें प्रवेश करनेवाले चौरने कहा–

'यह चन्द्रमा मानों तुम्हारे स्तनके संगकी आसक्तिके वश होकर आकाशमेंसे झंपापात कर नीचे कूदा है और दूरसे गिरनेके कारण खंड खंड हो गया है।'

इस चोरको भी उसी तरहका दान दिया गया और उसे धर्म-वहीमे लिख लिया गया।]

४३) इसके बाद, एक बार, जब वह बही [राजाके आगे] बाची जाने लगी तो राजा अपनेको बड़ा उदार दानी मानकर घमंडरूपी भूतसे आविष्ट होनेकी भाँति–

५३ मैंने वह क्रिया जो किसीने नहीं किया, वह दिया जो किसीने नहीं दिया, वह साधना की जो असाध्य थी, इसलिये [अब] हमारा चित्त दुःखित नहीं है।

इस प्रकार बारबार अपने भाग्यकी प्रशंसा करने लगा। तब किसी पुराने मंत्रीने, उसके अभिमानको दूर करनेकी इच्छासे, श्री विक्रमादित्यकी धर्म-बही राजाको दिखाई। उसके ऊपरवाले विभागमें शुरूमें ही पहला काव्य इस प्रकार था–

५४ तुम्हारे मुखकमलमें 'सरस्वती' बसती है, 'शोण' तो तुम्हारा अधर ही है, और रामचन्द्रके वीर्यकी स्मृति दिलानेमें पटु ऐसी तुम्हारी दक्षिण भुजा 'समुद्र' है। ये वाहिनियाँ (सेना और नदियाँ) सदा तुम्हारे पास रहती हैं, क्षणभर भी तुम्हारा साथ नहीं छोड़तीं, और फिर तुम्हारे अंदर ही यह स्वच्छ मानस (मानसरोवर, मन) है, तो फिर हे राजन्, तुम्हें जलपानकी अभिलाषा क्यों हो ? [1]

इस काव्यके पारितोषिकमें राजाने इस प्रकार दान दिया था–

५५ आठ करोड़ स्वर्णमुद्रा, ९३ तुला मोती, मदमत्त भौंरोंके कारण क्रोधसे उद्धत ऐसे ५० हाथी, चलनेमें चतुर ऐसे दस हजार घोड़े और सौ वेश्यायें,–यह सब जो पाण्डय राजाने दण्डके स्वरूपमें विक्रम राजाको भेट किया था, वह उसने उस वैतालिकको दानमें दे दिया। [2]

इस प्रकार उस काव्यके अर्थको जानकर, विक्रमकी उदारतासे अपने सारे गर्व सर्वस्वको पराजित मानकर, उस बही की पूजा करके उसे यथास्थान रखवा दिया।

४४) एक समय, प्रतीहारने आकर सूचित किया–'महाराजके दर्शनके लिये उत्सुक ऐसा एक सरस्वती-कुटुम्ब द्वारपर खड़ा है।' 'शीघ्र प्रवेश कराओ' राजाकी ऐसी आज्ञा होनेपर पहले उसकी दासीने प्रवेश करके कहा–

५६ बाप भी विद्वान् है, बापका बेटा भी विद्वान् है, माँ भी विदुषी है, माँकी लड़की भी विदुषी है, जो उनकी बिचारी कानी दासी है वह भी विदुषी है, इसलिये हे राजन्! मैं समझती हूँ कि यह सारा कुटुम्ब ही विद्याका एक पुञ्ज है।

उसके इस हास्यकर वचनसे राजाने जरा हँसकर, उनमेंके सबसे बड़े पुरुषको बुलाया और यह समस्या दी–'असारसे सारका उद्धार करना चाहिये।'

[उसने इसकी पूर्ति इस तरह की–]

५७ धनसे दान, वचनसे सत्य, और वैसे ही आयुसे धर्म और कीर्ति तथा शरीरसे परोपकार–इस प्रकार असारसे सारका उद्धार करना चाहिये।

---

१ किसी समय विक्रम राजाने अपने नोकरसे पीनेको पानी मागा तब पासमें बैठे हुए किसी कविने यह पद्य बनाया और राजाको सुनाया। इसमें, सरस्वती, शोण, दक्षिण समुद्र, मानस और वाहिनी इतने शब्दोंपर श्लेष है। ये सब शब्द द्व्यर्थक हैं, जिनमें एक अर्थ प्रसिद्ध जलाश्रय वाचक है और दूसरा अन्यार्थ वाचक है। यथा–सरस्वती=१ नदी, २ विद्यादेवी, शोण=१ नद, २ लालवर्ण, दक्षिण समुद्र=१ महासागर, २ मुद्रावाला हाथ, वाहिनी=१ सेना, २ नदी, मानस=१ सरोवर, २ मन।

२ इस पद्यमें जो सामग्री वर्णित की गई है वह विक्रम राजाको दक्षिणके पाण्डय राजाने दण्डके रूपमें दी थी और उसी सामग्रीको विक्रमने किसी वैतालिक यानि स्तुतिपाठक कविको, उक्त श्लोकके कहनेपर पारितोषिकके रूपमें–दानमें दे दिया, यह इसका तात्पर्य है।

इसके बाद राजाने उसके पुत्रको [यह समस्या दी]–'**हिमालय नामक पर्वतोंका राजा है !**'–'**प्रवाल (तृणाङ्कुर) की शय्याको शरीरका शरण**' बनाया। राजाके इस वाक्यको सुनकर उसने उत्तर दिया–

५८. वह जो हिमालय नामक पर्वतोंका राजा है, तुम्हारे प्रतापरूपी अग्निसे पिघल रहा है; और विरहसे आतुर बनी हुई मेना (हिमालय-पत्नी मेनका) अपने शरीरको प्रवाल (तृणांकुरों) की शय्याके शरण कर रही है।

इस प्रकार उसके समस्या पूरी कर देनेपर, ज्येष्ठकी पत्नीको राजाने समस्याका यह पद अर्पित किया–**किससे पिलाऊँ दूध ?**

५९. जब रावण पैदा हुआ तो उसके एक शरीरपर दस मुँह देख कर उसकी माता बड़ी विस्मित हुई और सोचने लगी कि कौनसे मुँहसे इसे दूध पिलाऊँ ?

–उसने इस प्रकार यह समस्या पूरी की।

इसके बाद राजाने दासीसे भी इस प्रकारका पद सयस्याके लिये दिया–'**कंठमें काक लटक रहा है।**'

६०. पतिविरहसे कराल बनी हुई किसी स्त्रीने उस बेचारे कौवेको उडाया तो, बड़ा आश्चर्य मैंने है सखि ! यह देखा कि वह काक उसके कंठमें लटक रहा *।

उसने इस तरह पूरा किया। राजाने उस कुटुंबमेंकी लड़कीको भूलकर, अन्य सबको सत्कार करके बिदा किया।

बादमे राजाने जब सर्वावसर (राजसभा) का विसर्जन किया और स्वयं चन्द्रशाला (चाँदनी=महलके ऊपरकी छत) की भूमिमें छत्र धारण करके टहल रहा था, तब द्वारपालने उस लड़कीका वृत्तान्त कहा। राजाने उसे [बुलाकर] कहा–' कुछ बोलो '–तो वह बोली कि–

६१. हे राजन्, हे मुञ्जकुलके दीपक, हे समस्त पृथ्वीके पालक, राजाओंके चूडामणि ! इस भवनमे रातमे भी, तुम इस प्रकार छत्र धारण करते हो वह उचित ही है। इससे न तो तुम्हारे मुखकी कांतिको देखकर चंद्रमाको लज्जित होना पड़ता है और न भगवती अरुन्धतीको (पर पुरुषके मुखदर्शनसे) दुःशीलताका भाजन होना पड़ता है।

उसके इस वाक्यके अनन्तर राजाने, जिसके चित्तको उसके सौन्दर्य और चातुर्यने हरण कर लिया था, उससे विवाह करके अपनी भोगिनी बनाया।

---

* इस पद्यमें ' काउ ' इस देश्य शब्दपर श्लेष है। काउ काग–काक–कौआ वाचक तो प्रसिद्ध है ही–इसके सिवा गलेमें जो एक लटकता हुआ छोटासा मांसपिंड है उसका नाम भी काक–काग (गूजराती–कागडा) है। कोई विरहिनी स्त्रीका शरीर इतना कृश होगया है कि जिससे उसके कंठमें लटकता हुआ काग स्पष्टतया बहार दिखाई देता है। उसके घरके सामने आ आकर कौआ बोलता है, जिसका यह अर्थ समझा जाता है कि, उसका स्वजन आनेवाला है। लेकिन उसके वारंवार ऐसा बोलने पर भी वह जब नहीं आता मालूम देता है तो फिर वह विरहिनी चिढकर उस कौवेको उडा देती है। इस कौवेके उडाते समय उसके पासमें बैठी हुई सखिको उसके दुर्बल कंठमेका वह काग नजर आया। इस अर्थकी घटना बतलानेके लिये कविने इस पद्यमे ' काउ ' शब्दका प्रयोग कर उसकी समस्यापूर्ति बनाई है। इस ग्रंथके गुजराती और इंग्रजी भाषांतरकारोने इन पद्योंके कुछके कुछ उटपटाग अर्थ किये हैं।

भोजकी गूजरातके राजा भीमके प्रति प्रतिस्पर्धा ।

४५) इसके बाद, एक समय, सधिपत्रके होते हुए भी, सधिमें दोष उत्पादनके विचारसे भोज राजाने गूर्जर देशकी बुद्धिमत्ताका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे अपने सांधिविग्रहिकके हाथ, भीमके पास यह [प्राकृत] गाथा लिख भेजी–

६२ क्रीडा मात्रमें जिसने हाथीका कुम्भस्थल निर्दीर्ण किया हो और चारों दिशामें जिसका प्रताप फैल रहा हो उस सिंहका, मृगके साथ न तो विग्रह ही [शोभता है] और न सन्धि ही [रहती है]।

भीमने इस गाथाका उत्तर देनेके लिये सब महाकवियोंसे गाथा माँगी । पर उनकी बनाई सब गाथाओंको निसारार्थक देखकर वह सोचमें पड गया। उसी समय नगरमेंके जैन मन्दिरके अन्दर नाचनेके लिये सज्ज बनी हुई नर्तकीको खमेके पास खडी हुई देखकर मत्रीने वहाँ बैठे हुए किसी आचार्य-शिष्यसे स्तभ-वर्णनके लिये कहा । वह बोला–

[४८] हे स्तभ ! तुम जो इस मृगनयनी नवयौवनाकी, ककणाभरण आदिसे सज्जित बाहुलतासे [वेष्टित होकर भी] न स्वेद-युक्त होते हो, न हिल्ते हो और न काँपते हो, सो सचमुच ही तुम पत्थरके बने हो यह निश्चित होता है ।

[आचार्य-शिष्यकी विद्वत्ताकी यह बात जब मत्रीने राजासे कही तो राजाने [उसके गुरु] आचार्यको बुलाकर उस विषयमें पूछा–

६३ विधाताने भीमको अन्धकके * पुत्रोंको मारनेके लिये ही निर्माण किया है । जिस भीमने सौ [अधक पुत्रों] को कुछ नहीं गिना उसके सामने तुझ अकेलेकी क्या गणना है ! '

इस प्रकार गोविन्दाचार्यकी बनाई हुई चित्तको चमत्कृत कर देनेवाली इस गाथाको दूतके हाथ भेजकर, सन्धिके दोषको दूर किया ।

४६) बादमें किसी एक रातको, जाडेके दिनोंमें, राजा जब वीरचर्यामें घूम रहा था, तो किसी मन्दिरके सामने, किसी पुरुषको यह पढते सुना–

६४ मेरा पेट भूखसे व्याकुल है, ओंठ फट गये हैं, ऐसी अवस्थामें फूकते फूकते आग ठडी हो गई है, चिन्ताके समुद्रमें डूब रहा हूँ, शीतसे मापके फलकी तरह सिकुड गया हूँ । निद्रा अपमानिता स्त्रीकी भाँति कहीं दूर चली गई है, और सत्पात्रमें दी गई लक्ष्मीकी भाँति रात भी खतम नहीं हो रही है ।

यह सुनकर रात बिताकर सबेरे उसे बुलाकर पूँछा–' किस प्रकार तुमने रात्रिशेषमें शीतका अत्यन्त उपद्रव सहन किया ? ' । ' सत्पात्रमें दी गई लक्ष्मी ' इत्यादि कथनकी ओर सकेत करके उसने कहा था । [वह बोला–] ' महाराज ! मैं खूब गाढे तीन वस्त्रोंसे जाडा काटता हूँ । ' राजाने पूछा कि तुम्हारे वे तीन वस्त्र क्या हैं ? तब उसने फिर कहा–

६५ रातमें घुटने, दिनमें सूर्य और दोनों शामको आग, इस प्रकार हे राजन् ! घुटने, सूर्य और आगके बलपर मैं शीत काटता हूँ ।

जब उसने इस प्रकार कहा तो राजाने उसे तीन लाखका दान देकर सन्तुष्ट किया ।

६६. तुमने अपनी आभाको धारण करके बलि, कर्ण आदि उन त्यागमूर्ति धनवान पुरुषोंको मुककर

---

* यहाँपर ' अधक ' इस शब्दपर श्लेष है । कौरवोंका पिता धृतराष्ट्र अधा था इसलिये उसको अधक कहा है । भीमका पिता विपुल भी अधा था इसलिये उसका विशेषण भी अधक सार्थक है ।

दिया, जो सज्जनोंके चित्तरूपी कैदखानेमें आवद्ध थे।

इस प्रकार जब वह सारवान् काव्यका उद्गार प्रकट कर रहा था तो राजाने उसका परितोषिक देनेमें अपनेको असमर्थ समझ कर अनुरोधपूर्वक रोक दिया।

[यहाँ P. B. नामक प्रतिमें निम्नांकित वर्णन अधिक पाया जाता है–]

[४९] शीतसे रक्षा करनेके लिये पटी (वस्त्र) नहीं है, आग सुलगानेके लिये सगड़ी नहीं है। कमर भूमिपर घिस गई है–सोनेको शय्या नहीं है, कुटियामें हवाके रोकनेका कोई उपाय नहीं है, खानेको मुट्ठीभर चावल नहीं है, घड़ीभर भी मनमें संतोष नहीं है, शृंगार की कोई वृत्ति नहीं है, मनको प्रसन्न करनेवाली कोई प्रिया नहीं है, लेनदारोंसे संकटमें पडा हूँ; ऐसी दशामें हे भोजराज ! तुम्हारे कृपारूपी हाथी द्वारा ही मेरी इस आपदाकी तटीका नाश हो सकता है।

इस श्लोकमें आई हुई ग्यारह 'टी'[1] के हिसाबसे भोजराजाने उसे ११ लाखका दान दिया।

एक वार, किसी विद्वत्कुलके निवासके लिये घर देखे जा रहे थे। उनके न मिलनेपर राजाने कहा कि जुलाहों और मच्छीमारोंको उजाड़ दिया जाय। जब राजपुरुष उन्हे उजाड़ने लगे तो एक जुलाहा उन्हें रोककर राजाके पास गया, और बोला कि–महाराज ! क्यों हमें उजाड़ रहे हैं ? तो राजाने पूंछा–क्या तू कविता करता है ? वह बोला–

[५०] जिसके चरणोपर राजाओंके मुकुटके मणि लोटते रहते हैं ऐसे हे साहसांक महाराज ! मैं काव्य तो करता हूँ पर सुन्दर नहीं कर पाता। जैसा-तैसा करता हूँ पर सिद्ध नहीं होता। मैं उसका क्या करूँ ? मै कविता करता हूँ, कपडा बुनता हूँ और अब जाता हूँ।

धीवरकी बहू भी हाथमें माँस लेकर राजाके पास गई और बोली–

[५१] 'महाराज, तुम्हारी जय हो !'–'तू कौन है ?'–'लुब्धक (धीवर) की बहू।'–'हाथमें यह क्या है ?'–'मांस !'–'सूखा क्यों है ?'–'यो ही'–और यदि महाराज ! आपको कौतुक हो तो कहती हूँ कि–तुम्हारे शत्रुओंकी प्रियाओंके आँसूकी नदीके किनारे सिद्धोंकी स्त्रियाँ गान करती है। गीतमें अन्धे होकर हरिण चरते नहीं। इसलिये उनका यह मांस दुर्बल हो गया है।

इस प्रकार उक्ति-प्रत्युक्तिमय ये दो काव्य सुनकर राजाने उन्हे नगरके भीतर स्थापन किया।

एक बार, कोई विद्वान्, जो गर्वोद्धत था, उस नगरके निवासियोको घरमें ही गरजनेवाले समझकर अवज्ञापूर्वक वादके लिये आया। नगरके समीप किसी पुरुषसे (धोबीसे) जो वस्त्र धो रहा था बोला–'अरे साड़ीका मैल धोनेवाले ! नगरमें क्या हालचाल हो रहा है ?' वह बोला–

[५२] घोड़े तोरण लगे हुए मकानोंको ढोते है, गायें केसरके सहित कमलोंको चरती है, दही यहाँपर पीला मिलता है, तिलोंमें यहाँ तैल नहीं होता और मकानोके दरवाजेके शिखरपर हिरण चरा करते हैं।

इसके बाद, किसी बालिकासे पूँछा–'तू कौन है ?' तो वह बोली–

[५३] मरे हुए जहाँ जींदा होते है, जिनकी आयु बीत गई है वे उच्छ्वासित होते है और अपने गोत्रमें जहाँ कलह होता है, मै उस कुलकी बालिका हूँ।

इसका अर्थ न समझकर उसने विचार किया, कि जहाँ बालिका भी इस तरहकी विद्यावाली है वहाँके विद्वान् कैसे होंगे, वह उल्टे पाँवें लौट गया।

---

१ इस श्लोकमें 'टी' जिसके अंतमे है ऐसे पटी, कटी, कुटी, घटी, तटी इत्यादि ११ शब्द आये हैं उन शब्दोको गिनकर ११ लाखका भोजने उस कविको दान दिया ऐसा इसका तात्पर्य है।

४७) इसके बाद, एक दूसरे अवसरमें, राजा राजपाटीमें भ्रमणार्थ हाथीपर चढ़कर नगरके भीतर जा रहा था। उस समय किसी भिक्षुकको, पृथिवीपर गिरे हुए अन्न-कणोंको चुनते हुए देखकर बोला—

६७. अपना पेट भरनेमें भी जो असमर्थ हैं उनके जन्म लेनेसे क्या है?

—इस प्रकार उसके पूर्वार्ध कहनेपर,

सुसमर्थ होकर भी जो परोपकारी नहीं उनके [जन्म लेने] से भी क्या है?

६८ 'उनके [जन्म लेने] से भी क्या है'—यह कहनेपर, दानशूर भोजनरेन्द्रने उसको सो हाथी और एक करोड़ सुवर्ण मुद्रायें दीं।

उसके इस वचनके अन्तमें [राजाने कहा]—

६९ हे जननि! ऐसा पुत्र न जन जो दूसरोंके आगे प्रार्थना किया करें।

उसके इस वाक्यके पश्चात् [भिक्षुक बोला]—

उसको भी उदरमें न धारण कर जो दूसरोंकी प्रार्थनाका भंग करें।

जब उसने इस प्रकार कहा तो राजाने पूछा—'तुम कौन हो?' इस पर नगरके प्रधान पुरुषोंने कहा, कि आपके यहाँ, नाना भाँतिके विद्वानोंकी घटामें जब अन्य किसी उपायसे प्रवेश न पा सका तो इसी प्रपञ्चसे स्वामिदर्शनकी इच्छा रखनेवाला यह [व्यक्ति] राजशेखर है। उसको उचित महादानोंसे पुरस्कृत करनेपर उस राजशेखरने ये कवितायें पढ़ीं—

[५४] अच्छृंखल मेघोंके नादसे नाचती हुई मयूरियोंकी उन्नत आवाजसे आकुल, मेघागमन कालमें (वर्षामें) तो जमीनपर भी जल सुविधासे मिल जाया करता है। लेकिन, इस भयानक उष्णता भरे ग्रीष्म कालमें करुणासे एक दूसरेकी ओर देखनेवाली और इधर उधर ताकती हुई मछलियोंका यदि तू पालन नहीं करता, तो, रे कासार (तालाब) तेरी फिर सारता ही क्या है!

७० जिस सरोवरमें, मेंढक मरे हुओंकी भाँति कोटरोंमें सो गये थे, कछुए पृथ्वीमें छिप गये थे, और गाढ़े पंकके ऊपर लोटनेसे मछलियाँ बारबार मूर्छित हो रही थीं, उसी तालाबमें, अकालके मेघने उतरकर ऐसा किया कि उसमें कुंभस्थल तक डूबे हुए हाथियोंके झुंड पानी पी रहे हैं।

इस प्रकार अकालजलद राजशेखरकी यह उक्ति है।

*

राजा भोजकी गूजरातपर आक्रमण करनेकी इच्छा।

४८) इसके बाद, किसी साल, वर्षा न होनेके कारण राजा भीमके देशमें (गूजरातमें) जब, कण और तृण भी नहीं मिलता था ऐसे कुसमयमें, राजपुरुषोंने भोजका आना बताया (अर्थात्—भोजराजाने गूजरात पर चढ़ाई करनेकी बात चलाई)। यह सुनकर भीमको चिंता हुई और उसने अपने दामर नामक सान्धि-विग्रहिकको आदेश किया कि कुछ दण्ड देकर इस साल भोजको यहाँ आनेसे रोको। उसका यह आदेश पाकर वह वहाँ गया। वह दामर अयंत कुरूप समझा जाता था। भोजने [उसका उपहास करनेकी दृष्टिसे] कहा—

७१ 'हे ब्राह्मण! तुम्हारे स्वामीके सन्धि-विग्रह पदपर तुम्हारे जैसे कितने दूत हैं?' [उत्तर—] 'यों तो बहुत ही हैं, हे मालव नरेश! पर वे सब गुणकी दृष्टिसे तीन प्रकारके हैं—अधम, मध्यम और उत्तम। [इनमें] जो जिस गुणके योग्य होता है उसीके अनुसार वे दूत उन उन

राज्योंमें भेजे जाते हैं।' इस प्रकार भीतर ही भीतर हँसते हुए उत्तर देकर उसने धाराके स्वामी (भोज) को प्रसन्न किया।

इस प्रकार उसकी वचन-चातुरीसे राजा चमत्कृत हुआ। गूर्जर देशके प्रति प्रयाण करनेका राजाने नगाड़ा बजवाया। प्रयाणके समय वंदीने यह स्तुतिपाठ किया—

७२. चौड़ [का राजा] समुद्रकी गोदमें प्रवेश कर रहा है और आन्ध्र [पति] पर्वतकी खोहमें निवास कर रहा है, कर्णाटका राजा पट्ट बंध (पगड़ी बाँधना) नहीं करता है, गूर्जर [का राजा] निर्झरका आश्रय लेता है, चेदि [नरेश] अस्त्रोंसे म्लान होगया है और राजाओंमें सुभट समान कान्यकुब्ज कूबड़ा होगया है—हे भोज! तुम्हारे मात्र सेनातंत्रके प्रसारके भयसे ही सभी राजा लोक व्याकुल हो रहे हैं।

७३. कोंकण [का राजा] कोनेमें, लाट (नरेश) दरवाज़ेके पास, कलिङ्ग [पति] आँगनमें सोया करते है। अरे कोशल [नरेश], तू अभी नया है, मेरे पिता भी इस आसनपर सोया करते थे। इस प्रकार जिस (भोज) के कारागृहमें रातमें प्रत्यर्थियोंमें स्थानप्राप्तिके लिये उठा हुआ पारस्परिक विरोध निरंतर बढ़ाता रहता हैं।

प्रयाणके लिये नगाड़े बजवाये जानेके बाद, रातको समस्त राजाओंकी दुर्दशाका दृश्य दिखलानेवाला नाटक अभिनीत होने लगा। उसमें कोई क्षुद्र राजा, कारागारके भीतर सामनेकी ज़मीनपर सुस्थ भावसे सोये हुए तैलिप राजाको उठाने लगा। तैलिपने उससे कहा—'मैं तो यहाँ पुश्त-दर-पुश्तसे वास कर रहा हूँ, आप जैसे नये आये हुए राजाकी बातसे अपना पद कैसे छोड़ दूँ?' राजा भोजने हँसकर दामरसे नाटकके रसावतारकी प्रशंसा की। इसपर वह बोला—'महाराज! यद्यपि नाटकमें रसकी जमावट बहुत उत्तम है तथापि इस नटकी, कथानायकके वृत्तान्तसे जो नितान्त अनभिज्ञता है वह धिक् है। क्यों कि राजा तैलिपदेव सूलीपर चढ़ाये हुए मुञ्जके सिरसे पहचाना जाता है। सभाके सामने जब उसने इस प्रकार कहा तो राजाको उसकी निर्भर्त्सनापर क्रोध हो आया और उसी समय उस सामग्रीके साथ, जो दूसरोंके जुटाये न जुट सकती थी, तिलङ्ग देशके प्रति प्रयाण किया।

४९) बादमें तैलिपदेवको बड़ी भारी सेनाके साथ आता हुआ सुनकर भोज व्याकुल हुआ। उतनेमें उसे दामरने [अपने] राजाके यहाँसे आये हुए एक कल्पित (जाली) आदेशको दिखाकर कहा कि भीम भी चढकर भोगपुरतक आगया है। जलेपर नामक छिड़कनेके समान उसकी उस बातसे राजा भोज खूब संचित हो गया। उसने दामरसे कहा—इस वर्ष किसी तरह तुम अपने स्वामीको यहाँ आनेसे रोको। उसने बार बार इस प्रकार दीनताके साथ कहा और उस अवसरके जाननेवाले [दामर] को हाथीके साथ हथिनी भेंट दी। उनको लेकर वह पत्तनमें आया और भीमको परितुष्ट किया।

५०) एक बार, जब वह धर्मशास्त्र सुन रहा था, उस समय अर्जुनका राधा-वेध (मत्स्य-वेध) सुनकर सोचा कि 'अभ्यास करनेपर क्या कठिन है।' फिर बराबर अभ्यास करके उस विश्वविदित राधावेधको उसने सिद्ध किया और उसकी सारे नगरवासियोको जान हो इसलिये नगरमे खूब सजावट कराई। किन्तु एक तैली और एक दर्जीके, अवज्ञासे उत्सवमें कोई भाग न लेने पर, रजाको उसकी खबर की गई। तैलीने चंद्रशाला (ऊपरी छत) पर खड़े होकर, पृथ्वीपर रक्खे हुए संकडे मुँहके पात्रमें तेल ढालकर; और दर्जीने पृथ्वीपर खड़े होकर ऊपरकी ओर उठाये सूतके दोरेके अग्रभागको आकाशसे पड़ती हुई सुईके छेदमें

पिरो कर अपने अभ्यास-कौशलका परिचय दिया, और फिर राजासे 'यदि शक्ति है तो स्वामी भी ऐसा कर दिखावें' ऐसा कह कर राजाका गर्व खंडित किया। [उसका राधावेध करना देखकर किसी कविने उसकी प्रशंसामें कहा–]

७४ हे भोजराज! मैंने राधा-वेध (मत्स्य-वेध) का कारण जान लिया। वह यह कि आप 'धारा' के विपरीत (राधा) को नहीं सह सकते।

५१) विद्वानों द्वारा इस प्रकार प्रशंसित होते हुए उस राजाको नया नगर बसानेकी इच्छा हुई तो उसने पटह बजवाया। उस समय धारा नामक एक वेश्या अपने अग्निवेताल नामक पतिके साथ लंका जाकर उस नगरका निवेश देख आई, और उसने यह कह कर कि नगरको मेरा नाम देना, लंकाका प्रतिच्छन्द पट (मानचित्र) राजाको दिया। उसके अनुसार राजाने नई धारा नगरी बसाई।

*

दिगंबर कुलचन्द्रको सेनापति बनाना।

५२) किसी दिन वह राजा सायंकालके सर्वावसरके बाद अपने नगरके भीतर [वीरचर्या निमित्त] घूम रहा था, उसी समय किसी दिगंबर विद्वान्को यह कविता पढ़ते सुना–

७५ न किसी सुभटके सिरपर खड्गके टुकड़े किये, न तेजा घोड़ोंपर सवारी ही की और न गौरी स्त्रीको गले ही लगाई–इस प्रकार निरर्थक ही यह नग्न जन्म चला गया।

राजाने सवेरे ही उसको बुलाकर और वह संकेत सुनाकर उसकी शक्ति पूछी। वह बोला–

७६ महाराज! रमणीय दीपोत्सवके बीत जानेपर जब हाथियोंका मद झरने लगेगा तो मैं अपनी शक्तिसे गौड देशके साथ सारे दक्षिणापथको एक छत्रनीचे कर दूँगा।

उसने अपना ऐसा पौरुष प्रकट किया तो राजाने उसे [योग्य समझकर] सेनापतिके पद पर अभिषिक्त किया।

कुलचन्द्रकी गुजरातपर चढाई।

५३) इधर, जब राजा भीम सिन्धु देशकी विजयमें रुका हुआ था, [वह दिगम्बर] सारे सामन्तोंके साथ, अणहिलपुर पर आक्रमण करके, उसके धवलगृहके घटिकाद्वार पर, कौड़ियाँ वपन कराकर उसने जयपत्र ग्रहण किया। तबसे सर्वत्र "कुलचन्द्रने लूट लिया" [कहावत] की प्रसिद्धि हुई। वह जयपत्र लेकर मालवामें गया। श्रीभोजको यह वृत्तान्त निवेदित किया। 'तुमने वहाँपर कोयला क्यों नहीं बोया' [इन कौडियोंके बोनेसे तो यह सूचित होता है कि भविष्यमें] यहाँसे कर वसूल होकर गुर्जर देशमें जायगा।' इस प्रकार सरस्वती-कण्ठाभरण श्रीभोजने [यह भविष्यवचन] कहा।

५४) एक बार चन्द्रातप (चाँदनी) में श्रीभोज राजा बैठे थे, पास-हीमें कुलचन्द्र भी था। पूर्ण चन्द्रमण्डलको देखकर [पुन पुन उसकी ओर देखकर] (राजाने) यह पढ़ा–

७७ जिन लोगोंका रात प्रियाके साथ क्षणभरकी तरह व्यतीत हो जाती है, चन्द्रमा उनके लिये शीतल है, किंतु विरहियोंके लिये तो उल्काके समान सन्तापदायक है।

उस कविके इस प्रकार आधा कहनेपर कुलचन्द्र बोला–

हम लोगोंके न तो प्रिया है और न विरह है, इसलिये मानों दोनोंसे भ्रष्ट होनेके कारण हमको तो चद्रमा दर्पणकी आकृतिके समान दिखाई देता है। न वह उष्ण है, न शीतल।

ऐसा कहनेके अनन्तर ही उसे पुरस्कारमें एक वेश्या प्रदान की गई।

*

५५) इसके बाद, मालव मण्डलसे लौटे हुए दामर नामक सन्धि-विग्रहिकने भोजकी सभाका वर्णन करते हुए [सबको] बहुत आश्चर्य उत्पन्न किया। और वहाँ (मालवामें) जाकर भीमके अलौकिक रूप सौन्दर्यके वर्णनसे भोजको उसे देखनेकी इच्छासे चञ्चल कर दिया। भोजने अनुरोध किया कि 'या तो भीमको यहाँ ले आओ या मुझे वहाँ ले चलो।' इसी तरह भोजकी सभाको देखनेके लिये उत्कण्ठित भीमने भी वैसा ही अनुरोध किया। किसी एक समय, उपायोंका जाननेवाला वह (दामर) बहुतसा उपहार लेकर भीमको, जो विप्रका वेश धारण किए हुए था और हाथमें पानदान लिये था, साथ लेकर भोजकी सभामें गया। प्रणाम करते हुए उस दामर को [भोजने भीमके] ले आनेके वृत्तान्तके बारेमें पूछा। उसने कहा– 'हमारे स्वामी स्वतन्त्र हैं, जो काम उनको अभिमत नहीं उसे जबर्दस्ती कौन करा सकता है। महाराजको ऐसी दुराशा सर्वथा धारण नहीं करना चाहिये।' भोजने भीमकी उम्र, वर्ण और आकृति पूँछी। दामरने सभामें बैठे हुए लोगोंके देखते हुए, पान-दान धारण करनेवालेको लक्ष्य करके कहा–स्वामिन्!

७८. यही आकृति है, यही वर्ण है, यही रूप और यही अवस्था है। इसमें और उस राजामें अन्तर केवल काच और मणिके समान है।

इस प्रकार उसके बतानेपर, चतुर चक्रवर्ती भोजने सामुद्रिक शास्त्रके आधारपर, उस निश्चल दृष्टि-वालेको ही राजा [यही भीम है ऐसा] जब समझ लिया तो, उपायन वस्तुयें (भेंटकी चीजें) ले आनेके बहानेसे उस सन्धि-विग्रहिक (दामर) ने उसे बहार भेज दिया। जब वे (भेंटकी) चीज़ें आ गईं तो दामरने उनका गुण वर्णन करके तथा इधर उधरकी बाते करके बहुत-सा काल काट दिया। जब राजाने कहा कि–'वह पान-दानवाला अभीतक क्यों नहीं आया, कितना विलम्ब करता है?' तो उस (दामर) ने बताया कि वही तो भीम था। तब राजा उसके पीछे सैन्य दौडाने लगा। इसपर दामरने कहा–'बारह बारह योजनके अन्तरपर सवारीके घोड़े खडे हैं, और एक घडीमें योजनभर चली जानेवाली करभियाँ (साँढनियाँ) रखी है। इन सारी सामग्रियोंसे भीम प्रतिक्षण बहुत-सी भूमि तै करता चला जा रहा है। आप उसे कैसे पकडेगे?' उसके ऐसा बतानेपर वह देर तक हाथ मलता रहा।

[यहांपर Pb संज्ञक आदर्शमें निम्नलिखित प्रकरण अधिक पाये जाते हैं–]

इसके बाद एक दूसरे साल, भीम उस डामर को मालव मण्डलमें भेजनेकी इच्छासे वार्ता आदि (नीति) सिखा रहा था। डामरने उठकर वस्त्र झाड़ लिया। तब भीम ने [कारण] पूछा। वह बोला– आपका सिखाया हुआ यहीं छोड़ जाता हूँ। क्यों कि वहाँ जाकर तो मुझे स्वयं ही अवसरोचित बोलना पड़ेगा। दूसरेका सिखाया कितना काम आ सकता है। इसके बाद राजाने उसकी अवसरोचित चातुरी जाननेके लिये, प्रच्छन्न भावसे, सोनेके डिब्बेको राखसे भरकर उसके हाथमें, यह सिखाकर भेंट देनेको कहा कि भोजकी सभाके सिवा अन्यत्र कहीं भी इसे न खोलना। उसे लेकर वह मालवामे गया। भोज की सभामें जाकर उस डिब्बेको, जो अनेक रेशमी वस्त्रोंसे वेष्टित था, राजाको भेंट किया। जब राजाने उसे खोलकर देखा तो भीतर राखका पुञ्ज था। तब राजाने कहा–'अजी, यह कैसी भेंट है?' हाज़िर जवाब डामर ने तत्काल कहा–'महाराज श्रीभीमने एक कोटिहोम कराया है। यह उसीकी रक्षा है, जो तीर्थके समान पवित्र है। प्रीति-सम्बन्धसे उन्होंने आपको भेट किया है।' उसके ऐसा कहनेपर, राजाने प्रसन्न होकर, अपने हाथसे सब लोगोंको वह थोड़ी थोड़ी दी। उन सबोंने उससे तिलक करके उसका वंदन किया। अन्तःपुरमें भी वह रक्षा भेजी गई। बादमें वह डामर सम्मानित होकर, प्रति-प्राभृतके (भेंटके बदलेमें दी हुई भेंटके) साथ लौट आया। भीम को जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उसने भी उसकी पूजा (सम्मानना) की।

पुन एक वार भीमके चित्तमें कौतुक उत्पन्न हुआ। उसने एक बार डामरके हाथमें अपनी मुद्रासे मुद्रित (मुहर किया हुआ) लेख दिया और हाथमें भेंटकी सामग्री देकर उसे मालवामें भेजा। उसने उस भेंटके साथ वह लेख राजाको दिया। राजाने जब खोलकर पढ़ा तो, उसमें लिखा मिला कि–' इसको आप शीघ्र ही मार डालिये।' तब विस्मयके साथ राजाने पूछा–' अजी, इसमें यह क्या लिखा है ? ' तब उस शीघ्रबुद्धिने कहा–' महाराज ! मेरी जन्म-पत्रिकामें ऐसा लिखा है कि जहाँ इसका रुधिर पड़ेगा वहाँ बारह वर्षतक अकाल पड़ेगा। यही जानकर भीमने, स्वदेशके विनाशसे भीत होकर, प्रच्छन्न लेखके साथ मुझे यहाँ भेजा है। ऐसी स्थिति होनेपर आप अपनी रुचिके अनुसार करें।' उसके ऐसा कहनेपर राजाने कहा–' मैं अपने देशकी प्रजाको अनर्थमें नहीं पड़ने दूँगा।' इसके बाद, उसका सम्मान करके उसे विदा किया और वह अपने देशमें आया। उसकी बुद्धिके कौशलसे चमत्कृत होकर भीम उसे बहुत मानने लगा।

*

महाकवि माघका प्रबन्ध।

५६) इसके बाद, भोजराजा माघ पंडितकी विद्वत्ता और पुण्यवत्ताको सदा सुनकर उसके दर्शनकी उत्सुकतासे अनेक राजकीय आदेश बारबार भेजकर श्रीमाल नगरसे जाड़ेके दिनोंमें उसे अपने यहाँ बुलाया और अत्यन्त मानके साथ भोजनादिसे उसका सत्कार किया। बादमें राजोचित विनोदोंको दिखाकर और रातकी आरतीके अनन्तर अपने निकट ही, अपने ही समान पलँगपर सुलाकर, उसे अपनी निजकी शीतरक्षिका (रजाई, लिहाफ) ओढ़ने दी और चिरकाल तक उसके साथ प्रिय आलाप करता हुआ सुखपूर्वक सो गया। प्रातःकाल मांगल्य तुर्यनादसे जब राजाकी नींद खुली तो माघ पंडितने घर जानेके लिये विदा माँगी। राजाने विस्मित होकर अगले दिनके भोजन आच्छादन आदिके सुखकी बात पूँछी। उसने कहा–' उस अच्छे-बुरे अन्नकी बात रहने दीजिये।' और कहा कि शीतरक्षिका (रजाई) के भारसे तो मैं थक-सा गया। राजाने अपना खेद प्रकट करते हुए किसी प्रकार जानेकी अनुज्ञा दी। नगरके उपवन तक राजाने अनुगमन किया। माघ पंडितने भी कहा कि कभी अपने आगमनसे मुझे भी धन्य करें। राजाकी अनुज्ञा लेकर माघ पंडित अपने स्थानपर आया। उसके बाद, कितनेएक दिन बीतनेपर, भोज राजा उसकी विभव-सामग्री देखनेकी इच्छासे श्रीमाल नगरमें आया। माघ पंडितके द्वारा अगवानी आदिसे यथोचित सत्कृत होकर वह अपनी सारी सेनाके साथ उसकी घुड़सालमें ठहरा। फिर वह अकेला माघ पंडितके महलमें गया। वहाँ उसने सञ्चारक भूमि (महलमें जानेकी पगडंडी) को काचसे जड़ी देखी। स्नान करनेके बाद, देवताके मन्दिरमें जानेपर, वहाँकी भूमिपर, जिसका गच मरकतका था, शैवाल सहित जलकी भ्रान्तिसे धोती और चादरको समेटने लगा। तब पुरोहितने उसका स्वरूप बतलाया। फिर देवताकी पूजा की। बाद जब मन्त्रावसर समाप्त हुआ तो, भोजनके समय आई हुई रसोईका आस्वादन किया। ऐसे ऐसे व्यंजनों ओर फलोंको देखकर, जो उस काल और उस देशमें नहीं होते थे, वह चित्तमें बड़ा विस्मित हुआ। सत्कार किये दूध और चावलकी बनी रसोईका आकण्ठ उपभोग किया। भोजनके अंतमें चन्द्रशालापर आरोहण करके, ऐसे ऐसे काव्यों, कथाओं, इतिहासों और नाटकोंको देखा, जिन्हें इसके पहले कहीं देखा या सुना नहीं था। जाड़ेके दिनोंमें भी उसे अकस्मात् उग्र ग्रीष्म ऋतु हो जानेकी भ्रान्ति हुई। उस समय सफेद स्वच्छ वस्त्र पहने, हाथमें तालके पखे लिये हुए अनुचर उसको हवा करने लगे। उसके वक्षोंमें सुन्दर चन्दन लेप दिया गया और उस रातको उसने क्षणभरकी नाई बिता दी। सबेरे जब शंखके नादसे राजाकी नींद खुली तो माघ पंडितने शीतकालमें अकस्मात् कैसे ग्रीष्म ऋतु उतर आई इसका स्वरूप समझाया। [इस प्रकार प्रत्येक क्षण विस्मयके साथ बिताता हुआ

कुछ दिनोंतक वहाँ रहकर] स्वदेशगमनके लिये विदा माँगते हुए, अपने बनाये हुए नये भोजस्वामी मन्दिरके पुण्यको उसे समर्पण कर मालव मण्डलको प्रस्थान किया।

माघ के जन्म दिनके समय उसके पिताने ज्योतिषीसे जन्मपत्र बनवाया था। ज्योतिषीने उसमें लिखा था कि पहले तो इसकी समृद्धि बराबर बढ़ती जायगी; पर बाद में (पिछली अवस्थामें) विभव नष्ट हो जायगा और चरणोंमें कुछ सूजन आ कर मृत्यु प्राप्त करेगा। माघ के पिताने अपने विभव-सम्भारसे ग्रहदशाका निवारण करना चाहा और यह सोचा कि मनुष्यकी आयु यदि सौ वर्ष की होगी, तो ३६ हज़ार दिन होंगे, एक नया कोश (निधि) बनवा कर उसमें उतनी ही संख्याके मणियोंका हार बनाकर रख दिया। इससे सैकडों गुनी अधिक और समृद्धि रख दी। लड़केका नाम माघ रखा और अपने कुलके उचित शिक्षा दे कर और यह समझ कर कि मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया, वह मर गया। इसके बाद माघ कुबेरकी भाँति विशाल समृद्धि-साम्राज्य पाकर, विद्वज्जनोंको उनकी इच्छाके अनुसार धन देने लगा। अपरिमित दानसे अर्थि-जनोंको कृतार्थ करते हुए और भोगकी विधिसे अपनेको अमानुषकी भाँति दिखाते हुए, उसने ' शिशुपालवध ' नामक महा काव्य बनाया। इस काव्यको देखकर विद्वानोंका मन चमत्कृत हो गया। अन्तमें पुण्य-क्षय होने पर जब उसका धन क्षीण हो गया और विपत्तिका समय आ गया, तो उसने अपने देशमें रहना अयुक्त समझ कर, अपनी स्त्रीके साथ मालव मण्डल में जा कर धारा नगरीमें वास किया। राजा भोज के पास पत्नीको यह कह कर भेजा कि मेरा पुस्तक है उसे बंधक रख कर, राजाके पाससे कुछ भी द्रव्य ले आओ। स्वयं उसकी आशामें चिरकाल तक बैठा रहा। उधर भोजने उसकी स्त्रीकी वह अवस्था देखकर संभ्रमके साथ उस पुस्तकको हाथमे लिया और उसकी शलाका निकाल कर उसे खोला तो उसमें पहला ही यह काव्य देखा—

७९. कुमुदवनकी शोभा नष्ट हो गई और कमलोंका समूह शोभान्वित हो उठा। घूक हर्ष छोड़ रहा है और चकवा प्रीतिमान् हो रहा है। सूर्यका उदय हो रहा है और चन्द्रमाका अस्त! अहो, दुर्भाग्यके खेलका परिणाम ' ही ' विचित्र है!

काव्यका मर्म समझकर भोजने कहा कि सारे ग्रंथकी तो बात ही क्या है, इसी एक काव्यके मूल्यके लिये पृथ्वी भी दे दी जाय तो वह कम है। समयोचित और अनुच्छिष्ट इस ' ही ' शब्दके पारितोषिकमें ही एक लाख रुपये दे कर राजाने उसे विदा किया। वह भी जब वहाँसे चली तो याचकोंने उसे माघकी पत्नी समझकर माँगना शुरू किया। इस पर उसने वह सारा-का-सारा पारितोषिक उन याचकोंको दे दिया और स्वयं ज्यों की त्यों घर लौटी। उसने अपने पतिको, जिसके चरनमें कुछ सूजन हो आई थी, उस वृत्तान्तको कह सुनाया। इस पर माघने यह कह कर उसकी प्रशंसा की कि—' तुम्हीं मेरी शरीर-धारिणी कीर्ति हो। ' इसी समय एक भिक्षुकको, जो उसके घरपर आया था, देखा। घरमे उसे देने योग्य कुछ न देखकर दुःखके साथ वह बोला—

८०. धनतो है नहीं, और दुराशा भी मुझे छोड़ती नहीं। मै बुरी तरहसे बहका हुआ हूँ और फिर त्यागसे हाथ भी संकुचित नहीं होता। याचना करना लघुताका कारण है और आत्महत्यामें पाप लगता है। अतः हे प्राणों! तुम स्वयं चले जाओ तो अच्छा है। मुझे इस प्रकार दुःख देनेसे क्या होगा?।

८१. दारिद्र्यकी आगका जो सन्ताप था वह तो सन्तोष रूपी जलसे शान्त हो गया; किन्तु दीन जनोंकी आशा भंग करनेसे जो [सन्ताप] पैदा हुआ है, यह किससे शान्त होगा?।

८२. अकालमें भिक्षा कहाँ? बुरी अवस्थावालोंको ऋण क्योंकर मिले? भू-स्वामियोंसे काम क्योंकर

करावें [। और दान भी और देना चाहे तब कि] बिना दान दिये यह सूर्य भी अस्त हो जाता है। [इस प्रकार] हे गृहिणि! कहो कहाँ और क्या करें! दरिद्रताकी दशा गहन हो गया है।

८३. भूखसे कातर बना हुआ यह पथिक मेरा घर पूछते पूछते कहींसे आया है, तो हे गृहिणी! क्या कुछ है कि इस भूखेको खानेको दिया जाए?'—ऐसे पूछने पर तो 'है' यह कहनेके बाद फिर 'नहीं है' यह बात बिना कहेके ही, केवल आँखोंसे बहते हुए बड़े बड़े अश्रुबिन्दुओंसे सूचित की।

८४ हे प्राणो! जाओ, यात्राके अर्थ और अन्तिम, चले जाओ, बादमें भी तो जाना है: 'फिर ऐसा साथी कहाँ मिलेगा?'

'फिर ऐसा साथी कहाँ मिलेगा?'—इस शब्दके बोलते ही माघ पण्डितकी मृत्यु हो गई।

प्रात:काल राजा भोजने इस वृत्तान्तको सुनकर, श्रीमालनगरमें [अनेक] धनवान् लक्षाधिपोंके रहते हुए भी, जो ऐसा पुरुषरत्न क्षुधापीडित हो कर मर गया, इसलिये उसने उस नगरका नाम 'भिल्लमाल' * ऐसा रख दिया।

इस प्रकार श्री माघपण्डितका प्रबन्ध समाप्त हुआ।

*

महाकवि धनपालका प्रबन्ध ।

५७) प्राचीन कालमें, समृद्धिसे विशाल ऐसी विशाला (उज्जयिनी) नामक नगरीमें, मध्यदेशोत्पन्न संकाश्य गोत्रीय सर्वदेव नामक ब्राह्मण वास करता था। जैनदर्शनके संसर्गसे उसका मिथ्यात्व प्राय: शान्त हो गया था। उसके दो पुत्र थे जिनका नाम धनपाल और शोभन था। एक बार श्रीवर्द्धमान सूरि वहाँ आये। गुणानुरागी होनेके कारण सर्वदेव ने उन्हें अपने उपाश्रयमें निवास कराया और अपनी अनन्य भक्तिसे उन्हें सन्तुष्ट किया। उन्हें 'सर्वज्ञ-पुत्रक' जानकर गुप्त हो जानेवाली पूर्वजोंकी निधिके बारेमें पूछा। उन्होंने वचन-चातुरीसे पुत्रोंका आधा हिस्सा माँग लिया। संकेत बतानेपर निधि मिली। जब वह आधा भाग देने लगा तो सूरिने दोनों पुत्रोंमेंसे आधा हिस्सा माँगा। धनपालने, जिसकी मति मिथ्यात्वके कारण कलुषित हो रही थी, जैन मार्गकी निन्दा करते हुए नहीं कर दी। छोटे लड़के शोभन पर कृपा-परायण हो कर, पिताने उसको देना नहीं चाहा। इसपर उसने अपनी प्रतिज्ञाके भंग होनेके पापको तीर्थमें जाकर प्रक्षालन करनेकी इच्छासे, तीर्थोंके प्रति प्रस्थान करना निश्चित किया। पितृभक्त शोभन नामक छोटे पुत्रने, उसको उस आग्रहसे रोककर, पिताकी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये जैन दीक्षाव्रत ग्रहण कर स्वयं गुरुका अनुसरण किया। धनपाल समस्त विद्याओंका अध्ययन करके श्री भोजके प्रसाद-प्राप्त समस्त पंडित मण्डलमें सुप्रतिष्ठ हुआ और फिर अपने सहोदरकी ईर्ष्यासे बारह वर्षतक अपने देशमें जैन दर्शनियोंका आगमन निषिद्ध कराया।

* श्रीमाल नगरका दूसरा नाम भिल्लमाल भी है। वर्तमानमें वह स्थान इसी नामसे प्रसिद्ध है। श्रीमाली जातिके वैश्य और ब्राह्मण सब इसी स्थानसे निकले हुए हैं। श्रीमालका दूसरा नाम भिल्लमाल ऐसा कब और क्यों पड़ा इसका अन्य कोई दूसरा ऐतिहासिक उल्लेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। महाकवि माघकी जन्मभूमि श्रीमाल थी, यह बात कविके कथन ही से सिद्ध होती है, लेकिन उसकी मृत्युका जो यह करुण वृत्तान्त मेरुतुङ्गाचार्यने लिखा है और उसी प्रसंग परसे भोज राजाने श्रीमालका नाम भिल्लमाल रख दिया यह जो उल्लेख किया है, इसकी सत्यताके लिये और कोई सुनिश्चित प्रमाण जबतक प्राप्त न हो तबतक इस कथनको एक किंवदन्तीके रूपमें ही समझना चाहिए। माघ और भोजकी समकालीनता भी सन्दिग्ध है। और कमसे कम यह भोज प्रसिद्ध धारापति परमारवंशीय राजा भोज तो किसी तरह सम्भवित नहीं है। इसकी विशेष विवेचना आगे ऐतिहासिक अवलोकनवाले खंडमें की जायगी।

उस देशके उपासकोंद्वारा अत्यन्त अभ्यर्थनाके साथ गुरुको बुलानेपर, सकल शास्त्ररूपी समुद्रके पारको प्राप्त कर लेनेवाला वह शो भ न नामक तपोधन गुरुसे अनुमति लेकर वहाँ आया। धा रा में प्रवेश करते ही, पंडित ध न पा ल ने, जो उस समय राजपाटिकामें [राजाके साथ] भ्रमणमें जा रहा था, उसे न पहचान कर, उपहासके साथ कहा–'गर्दभदन्त (गधेके समान दाँतवाले) भदन्त, तुमको नमस्कार!' इसपर उसने–'कपिके वृषणके समान मुँहवाले मित्र, तुम्हें सुख हो!' [इस प्रकार प्रत्युत्तर दिया। तब चमत्कृत होकर ध न पा ल ने सोचा कि मैंने तो दिल्लगीमें भी 'नमस्ते' कहा और इसने तो 'मित्र तुम्हें सुख हो'] इतना ही कहकर अपनी वचन-चातुरीसे मुझे जीत लिया। फिर ध न पा ल के यह कहने पर कि 'आप किसके अतिथि है?' शो भ न मु नि ने कहा–'हमें आपके ही अतिथि समझिये!' उसकी यह बात सुनकर एक विद्यार्थीके साथ उन्हे अपने स्थानपर भेजकर वहीं ठहराया। स्वयं घर आकर ध न पा ल ने प्रिय आलापोंके साथ उसे सपरिकर भोजनके लिये निमंत्रित किया। पर वे तपोधन तो प्रासुक (अनुद्दिष्ट) आहार भोजी थे इसलिये उन्होने निषेध किया। आग्रहपूर्वक जब उसने दोषका हेतु पूँछा तो कहा–

८५. मुनि म्लेच्छ कुलसे भी मधुकरी वृत्तिके साथ भिक्षा ग्रहण करे परन्तु बृहस्पतिके समान श्रेष्ठ कुलीन एक ही गृहस्थके वहाँ भोजन न करे।

इसी प्रकार जैन धर्मके द श वै का लि क सूत्रमें भी कथन है–

८६. जो अनिश्रित हो कर मधुकरके समान नाना स्थानोंमेंसे अपना भिक्षापिण्ड प्राप्त करते हैं उन्हीं बुद्ध और दान्त भिक्षुओंको साधु कहते हैं।

इस प्रकार, अपने धर्मसे और परधर्मसे भी, निषिद्ध ऐसे कल्पित आहारको त्याग करके हम लोग शुद्ध भोजन ग्रहण करते हैं। ध न पा ल उनके चरित्रसे चकित होकर चुप हो रहा और उठकर स्नान करने चला गया। स्नानके आरम्भमें ही अचानक भिक्षाचर्याके लिये आये हुए उन दो मुनियोंको देखा। उन्हें एक ब्राह्मणी, रसोई तैयार न होनेके कारण, दही देने लगी। मुनियोंने पूँछा कि दही कितने दिनोंका है? तो ध न पा ल ने मज़ाक करते हुए कहा 'क्या कोई उसमे कीड़े पड़ गये हैं?' ब्राम्हणीने जवाब दिया कि इसे दो दिन बीत चुके हैं। यह सुनकर दोनों मुनि बोले कि–हाँ कीड़े पड़ गये हैं! यह सुनकर ध न पा ल उसे देखनेके लिये स्नानसे उठकर वहाँ आया। पात्रमें रखे हुए दहीके पास ही एक महावर (लाख) का ढेला रखा जिस पर उन जीवोंने चढ़कर उसे दहीके समान ही सफेद कर दिया। ध न पा ल ने यह देखा और सोचा कि जैन धर्ममें जीवरक्षाकी ही प्रधानता है; और उसमे भी जीवोत्पत्ति विषयक ज्ञानका वैदग्ध्य [विशिष्ट प्रकारका] है। जैसा कि कहा है–

८७. मूंग और उड़द इत्यादि द्विदल धान्य जो कच्चे गोरसमें पड़े तो उसमें त्रस (द्विरिन्द्रियादि) जीवोंकी उत्पत्ति होती है; और तीन दीनके बाद दहीमें भी जीवोंकी उत्पत्ति हो जाया करती है।

यह बात एक जैन शास्त्रमें ही कही गई है। ऐसा निश्चय करके शो भ न मु नि के शुभोपदेशसे सम्यक् विश्वास पूर्वक उसने सम्यक्त्व (जैन धर्म) ग्रहण किया। [इतने दिनोंके बाद अपने मिथ्यात्वको समझते हुए, शो भ न से ही पूँछा कि मेरे भाईको भी कहीं देखा है? शो भ न ने वय, आख्या और गुण आदिमें अपने-ही-से उसकी तुलना की। इसपर उसने अनुमानसे समझा कि यही मेरा भाई है। यह निश्चय करके आनन्दाश्रु त्याग करते हुए उसे आलिंगन करके अपने लडकेको भेज कर उसके गुरुको भी बुलवाया।] स्वभावतः ही ध न पा ल बडा बुद्धिमान था अतएव क र्म्म प्र कृ ति प्रभृति जैन-विचार-ग्रंथोंमें भी बडा प्रवीण हुआ। प्रति दिन सवेरे जिन पूजाके अन्तमें–

८८ अहो! मैंने इसके पहले मोहवश, कुछ ही नगरोंके स्वामीका, जो शरीर दे देनेपर भी दुर्ग्रहणीय है, मति-दान करते हुए अनुसरण किया। इस समय ऐसे त्रिभुवनपति प्रभु मिल गये हैं जो बुद्धि-ही से आराध्य हैं और जो अपना पद तक दे देनेवाले हैं। इससे उन प्राचीन दिनोंका बीत जाना खेदकारक हो रहा है।

८९ हे जिन! जबतक मैंने तुम्हारा धर्म नहीं जाना था तबतक समझता था कि धर्म सब कहीं है। जिस प्रकार धतूरेके विषसे आतुर रोगीको सब कुछ सोना (पीतवर्ण) ही सोना दिखाई देता है, और कोई सफेद वस्तु नजर नहीं आती।

[५५] घासके जैसे नि सार ऐसे उन करोडों श्लोकोंको पढ लेनेसे भी क्या होता है—यदि जिससे 'दूसरेको पीडा न पहुँचाना' इतना भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

[५६] देशका मालिक [तुष्ट होनेसे] एक गाँव देता है, गाँवका मालिक एक खेत देता है, खेतका मालिक शिम्बिका (सेम, छीमी) देता है परन्तु सार्व (सर्वज्ञ जिन) तो सन्तुष्ट होकर अपनी सारी सम्पद दे देते हैं।

इत्यादि वाक्योंको पढ़ा करता। एक दिन राजाने धनपालको शिकार खेलनेके लिये साथ ले लिया। राजाने जब बाणसे मृगको विद्ध किया, तो उसके वर्णनके लिये धनपालके मुँहकी ओर देखा। धनपाल बोला—

९० इस तरहका पौरष रसातलको चला जाय। यह कुनीति है कि निर्दोष और शरणागतको मारा जाय। बलवान् भी जब दुर्बलको मारते हैं तो यह बडे दु खकी बात है। जगत् अराजक हो गया।

उसकी इस निर्भर्त्सनासे क्रुद्ध राजाके यह पूछने पर कि यह क्या बात है—

९१ प्राणान्तके समय यदि तृण भक्षण करना चाहे तो वैरी भी छोड दिया जाता है, तो फिर ये पशु तो सदा तृण ही खाकर जीते रहते हैं, ये क्यों मारे जाते हैं?

राजाको इस कथनसे अद्भुत कृपा उत्पन्न हुई। उसने धनुष्य बाणके भगको स्वीकार करके आजीवनके लिये मृगयाका त्याग किया। बादमें नगरकी ओर जब लौट रहा था, तो यज्ञमण्डपके यज्ञस्तम्भमें बँधे हुए छाग (बकरे) की दीन वानी सुनकर पूँछा कि यह पशु क्या कह रहा है? इस पर धनपालने कहा कि सुनिये—

९२ हे साधो, मैं स्वर्गफलको भोगनेके लिये तृषित नहीं हूँ, मैंने [इसके लिये] तुमसे प्रार्थना भी नहीं की। मैं तो केवल तृण खाकर ही सन्तुष्ट हूँ। तुम्हारा यह कार्य उचित नहीं। यदि तुम्हारे द्वारा यज्ञमें मारे हुए प्राणी निश्चय ही स्वर्गगामी होते हैं तो फिर अपने माता-पिता और पुत्रों तथा बाँधवोंका यज्ञ (बलिदान) क्यों नहीं करते?

उसके इस वाक्यके अनन्तर जब राजाने कहा कि इसका क्या मतलब है? तो फिर बोला कि—

९३ यूप (यज्ञ) करके, पशु मारकर और खूनका कीचड़ बनाकर यदि स्वर्गमें जाया जाता है तो फिर नरकमें कैसे जाया जाता है?

९४ सनातन यज्ञ तो उसका नाम है, जिसमें सत्य तो यूप हो, तप ही अग्नि हो और अपने सारे कर्म समिध् (काष्ठ) हो, अहिंसाकी [उसमें] आहुति दी जाय।

इस प्रकार, शुकसंवादमें कहे हुए वचनोंको उसने राजाके सामने पढ़ा और [ब्राह्मणोंको] जो हिंसाशास्त्रके उपदेशक और हिंस्र प्रकृति हैं, ब्रह्मरूपमें राक्षस बताते हुए, राजाको अर्हद्धर्म (जैन धर्म) की ओर प्रवृत्त किया।

[इस जगह Pb आदर्शमें तो मूल ही में, पर B आदर्शके हाशियेपर निम्नलिखित कथोपकथन अधिक लिखा हुआ पाया जाता है।]

इसके बाद जब राजा गौकी वन्दना करने लगा तो धनपाल भैंसको नमस्कार करता हुआ बोला—

[५७] अपवित्र वस्तु खाती है, विवेक-शून्य है, आसक्त होकर अपने पुत्रसे ही रति करती है, खुराग्रसे और सींगसे जीवोंको मारती है। हे राजन्! ऐसी यह गौ किस गुणसे वन्दनीय है?।

[५८] दूध देनेके सामर्थ्यसे अगर यह गौ वन्दनीय है तो, भैंस क्यों नहीं है? भैंससे इसमें थोड़ी भी तो विशेषता नहीं दिखाई देती।

[५९] अमेध्य भक्षण करनेवाली गायोंका स्पर्श पापको हरनेवाला है, चेतनाहीन वृक्ष वन्दनीय हैं, छागका वध करनेसे स्वर्ग मिलता है, ब्राह्मणोंको खिलाया हुआ अन्न पितरोंको स्वर्गमें पहुँचता है, छल-कपटपरायण देवता आप्त पुरुष हैं, अग्निमें हवन किया हुआ हवि देवताओंको प्रीत करता है—इस प्रकारकी स्पष्ट दोषयुक्त और व्यर्थ श्रुतियोंके वचनोंकी लीलाको कौन ठीक मान सकता है?

[६०] जिनका [प्राणी-] वध तो धर्म है, जल तीर्थ है, गौ वन्दनीय है, गृहस्थ गुरु है, अग्नि देवता है, और ब्राह्मण पात्र है उनके साथ परिचय रखनेसे फल ही क्या हो!

एक बार, जिनपूजा करनेमें, दूसरोंसे पंडित (धनपाल) की विशेष एकाग्रता जानकर राजाने फूलकी डाली देते हुए कहा कि देवोंकी पूजा करो। धनपाल शिव आदि देवताओंके स्थानों पर यो ही घूमकर जिन देवकी पूजा करके चला आया। चार पुरुषके मुँहसे राजाने सारा वृत्तान्त जानकर पूजाका हाल पूँछा। उसने कहा कि महाराज! जहाँ [पूजाका उचित] अवसर हुआ वहाँ पूजा की। राजाने पूछा—'अवसर कहाँ नहीं हुआ?' पण्डित बोला—विष्णुके पास एकान्त कलत्र होनेसे; रुद्रके आधे शरीरमें पार्वती रहनेसे; ब्रह्माके यहाँ इस भयसे कि कहीं ध्यानभंग होनेके कारण शाप न दे दें; विनायकके यहाँ इसलिये कि वे थालीभर मोदक खा रहे थे, उनका स्पर्श मैंने रोका; चण्डिकाके यहाँ उनके शूलास्त्रसे संत्रस्त महिष मेरे सामने न आ जाय इस भयसे, हनुमानके यहाँ उन्हें कोपपूर्ण देखकर यह भय हुआ कि कहीं चपेटादान न कर बैठे; इस तरह, [इन देवोंके स्थानमे] कहीं भी अवसर नहीं हुआ। और भी [शिवलिङ्गको देखकर तो मनमें विचार आया कि—]

[६१] इसके शिरके विना पुष्पमाला व्यर्थ है, और जब ललाट ही नहीं है तो पट्ट बन्ध कैसे हो? जिसके कान और आँख नही है उसके लिये गीत और नृत्य कैसे? और जिसके पैर ही नहीं उसको मेरा प्रणाम कैसा?

इत्यादि बातें कहने पर, राजाने कहा—'फिर अवसर हुआ भी कही?' तब पंडितने 'प्रशमरसनिमग्नं' और 'नेत्रे सारसुधा' इत्यादि (वचन बोलकर) और इसी प्रकारकी बातें कह कर अन्तमें कहा कि [इस प्रकार] जैनालय में सदा अवसर रहता है, अतः वहीं मैने पूजा की।

[६२] इसके बाद—एक दूसरे दिन, शिवमन्दिरके द्वारदेशमें भृंगीगणको देख कर राजाने धनपाल से पूछा कि—यह दुर्बल क्यो है? वह बोला—[भृंगी शिवकी निम्न प्रकारकी विचित्र] लीलायें देखकर सोचता रहता है कि—

[६३] यदि यह (शिव) दिगंबर है तो इसको धनुष्यसे क्या काम है? अगर धनुष्य है ही तो भस्म क्यों? यदि भस्म भी हुआ तो स्त्री क्यों? और यदि स्त्री है तो फिर कामसे द्वेष क्यों है?—इस प्रकारकी अपने स्वामीकी परस्पर विरुद्ध चेष्टाओको देखकर [यह भृंगी हैरान हो रहा है और इसी लिये] शिराओंसे गाढ बँधे हुए अस्थि-शेष शरीरको धारण कर रहा है।

५८) इसके अनन्तर एक बार राजा सरस्वतीकण्ठाभरण नामक प्रासादमें जा रहा था। उस समय धनपाल पंडितसे, जो सदा सर्वज्ञ-शासन (जैन धर्म) की प्रशंसा किया करता था, पूछा कि 'सर्वज्ञ तो कभी एक बार हुए थे। पर अब भी उस धर्ममें क्या कुछ ज्ञानातिशय है?' उसके ऐसा कहनेपर [धनपाल बोला–] 'अर्हत् निरचित (उपदिष्ट) अर्हन्तश्रीचूडामणि नामक ग्रंथमें त्रैलोक्यके तीनों कालके वस्तु विषयके स्वरूपका परिज्ञान आज भी वर्तमान है।' उसके ऐसा कहनेपर राजाने पूछा कि 'हम लोग अभी इस तीन दरवाजेके मण्डपमें स्थित हैं। किस रास्ते होकर यहाँसे बहार निकलेंगे?' राजाको इस प्रकार शास्त्रपर कलंक लगानेको उद्यत होते देखकर उसने 'बुद्धि यह तेरहवीं मात्रा है' इस लोकोक्तिको सत्य करते हुए, भोजपत्रपर राजाके प्रश्नका निर्णय लिख कर उसे मिट्टीके गोलेमें रख दिया, और उसे ताम्बूलग्राहकको सौंपकर राजासे बोला कि 'महाराज, पधारिये!' राजाने अपनेको उसकी बुद्धिके जालमें फँसा समझा और सोचा कि इसने तीनमेंसे ही किसीका निर्णय किया होगा, इसलिये बढइयोंको बुलाकर मण्डपकी पद्मशिलाको हटवा दिया और उसी मार्गसे बहार निकला। फिर उस मिट्टीके गोलेको तोड़कर उसके लिखित अक्षरोंमें, निकलनेके लिये उसी मार्गके निर्णयको पढ़कर कौतुकसे चित्तमें चकित होता हुआ जैन धर्मकी ही प्रशंसा की।

(यहाँ D पुस्तकमें निम्नलिखित पद्य अधिक पाये जाते हैं–)

[६४] जो चीज विष्णु दो आँखोंसे, शिव तीनसे, ब्रह्मा आठसे, कार्तिकेय बारहसे, रावण बीससे, इन्द्र दस सौसे और जनता असंख्य नेत्रोंसे भी नहीं देख पाती, बुद्धिमान पुरुष उसीको एक प्रज्ञा-(बुद्धि) रूपी नेत्रसे स्पष्ट देख लेता है।

(Pb आदर्शमें यहाँ निम्नलिखित एक और कथन अधिक पाया जाता है–)

एक बार जलाश्रय (तालाब) के अच्छे-बुरे-पनके विषयमें पूछ हुई [तो पण्डितने कहा–]

[६५] सचमुच ही तालाबोंमेंका ठंडा और चंद्रमाकी किरणोंसे श्वेत बना हुआ जल खूब पी करके प्राणियोंकी सारी तृष्णा नष्ट हो जाती है और वे मनमें प्रमुदित होते हैं, परन्तु जब सूर्यकी किरणें उसे सोख लेती है तो [उसमेंके] अनन्त प्राणी विनष्ट हो जाते हैं और इसीलिये मुनि-लोग कुआँ बावडी आदिके बनानेके विषयमें उदासीन भाव प्रकट करते हैं।

एक बार राजा अपने बनवाये हुए बहुत बड़े नये तालाबके पास गया। वहाँ पण्डितसे पूछा कि यह धर्मस्थान कैसा है। धनपाल बोला–

[६६] तड़ागके बहाने यह आपकी [एक] दानशाला है जिसमें सदा ही मछली आदि जलजन्तु अच्छी तरहकी रसोई है और जिस स्थानपर बक, सारस, चक्रवाक आदि [मत्स्य भोजी दान ग्रहण करनेवाले] पात्र हैं, वहाँ कितना पुण्य होता होगा सो तो हम नहीं जान सकते।

इससे राजा [मनमें] कुपित हुआ। नगरको आते समय बालिकाके साथ एक बुढ़ियाको वृद्धावस्थामें सिर धुनती हुई देखकर राजाने पूछा-' यह सिर क्यों धुन रही है!' तब धनपाल बोला–

[६७] क्या यह नदी है, या विष्णु? क्या कामदेव है या चंद्रमा? क्या विधाता है अथवा विद्याधर है? क्या इन्द्र है, कि नल है, कि कुबेर है? ना, ना, यह नहीं है, यह भी नहीं है, यह भी नहीं है, बिल्कुल यह नहीं, यह भी नहीं, वह भी नहीं, और वह भी नहीं, यह तो क्रीड़ा करनेमें प्रवृत्त ऐसा हे सखे! स्वयं राजा भोजदेव है।

[इसके सिरके धुननेका यह मतलब है–ऐसा कह कर] इस श्लोकसे रुष्ट राजा को सन्तुष्ट किया।

५९) इसके बाद, धनपालने ऋषभ-पञ्चाशिका स्तुतिकी रचना की। सरस्वतीकण्ठाभरण प्रासाद में उसकी बनाई प्रशस्ति-पट्टिकामें किसी समय राजाने [यह काव्य पढा–]

९५. इसने [अपने जन्ममें] पृथ्वीका उद्धार किया, शत्रुके वक्षःस्थलको विदारण किया, और बलिकी राजलक्ष्मी (विष्णुके पक्षमें बलि नामक राजा और भोजके पक्षमें बलशाली राजा) को आत्मसात् किया। इस प्रकार इस युवकने ये काम एक ही जन्ममें किये जो पुराण पुरुष (विष्णु) ने तीन जन्ममें किये थे।

इस काव्यको पढ़कर उसके पारितोषिकमें एक सोनेका कलश दिया। उस प्रासादसे निकलकर उसीके द्वारके खंभोंपर मूर्तिमान् मदनको, जो रतिके साथ हस्तताल (ताली) दे रहा था, देखकर राजाने धनपालसे उनके हंसनेका कारण पूंछा। इस पर पंडित बोला–

९६. यह है त्रिभुवनमें संयमके लिये विख्यात ऐसा वह शिव, जो इस समय विरहकातर हो कर अपने शरीरमें ही स्त्रीको धारण किये है। इसीने हमें एक समय जीता था! इस प्रकार प्रियाके हाथसे अपने हाथको बजाता हुआ और हंसता हुआ यह मदनदेव जयवान् हो रहा है।

[यहाँ D पुस्तकमें "अन्नदिणे सिवभवणे०" "दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा०" "अमेध्यमश्नाति०" "पयःप्रदान०" "असत्युत्तमाङ्गे" इत्यादि पद्य पाये जाते हैं। पर चूँकि वे यहाँ अप्रासंगिक हैं और Pb आदर्शके अनुसार इसके पहले ही उल्लिखित हो चुके हैं इसलिये फिर उद्धृत नहीं किये गये।]

९७. पाणिग्रहणके समय शिवका जो भूतिभूषित शरीर पुलकित हुआ उसकी जय हो–जिस शरीरमें [पुलकके बहाने] भस्मावशेष मदन मानों फिर अंकुरित हुआ है।

इस प्रकारके तथा इसीतरहके, अन्य अन्य प्रसिद्ध और सिद्ध सारस्वतकवियोके काव्योंको कह कह कर जब धनपाल राजाको रञ्जित कर रहा था, उसी समय द्वारपालने एक व्यापारीका आना निवेदन किया। सभामें प्रवेश करके, राजाको नमस्कार कर, उसने मोमकी बनी पट्टीपर लिखे हुए कुछ काव्योंको दिखाया। राजाके उसके प्राप्तिस्थानके बोरेमें पूछने पर वह बोला कि–'मेरा जहाज अकस्मात् समुद्रमें एक जगह रुक गया, जहाजियोने खोज करके देखा तो वहाँ एक शिवमन्दिर मिला, जिसके ऊपर चारों ओर जल लहरा रहा है पर भीतर पानीका अभाव है। उन्होंने उसकी एक दीवाल पर अक्षर देखकर उसे जाननेकी इच्छासे उसपर मोमकी पट्टी लगा दी। उसी के उभडे हुए अक्षर इस पट्टीपर हैं। राजाने जब यह सुना तो, उसपर [वैसी ही] मिट्टीकी पट्टी लगवा कर, उसपर पड़े हुए उलटे अक्षरोंको पंडितोसे पढ़वाया।

९८. 'लड़कपनसे ही, मेरी प्राप्तिके कारण ही यह उन्नतिकी परा कोटिको प्राप्त हुआ है, और इस समय मेरी ही बातसे यह राजाका लड़का लजाता है।' इस प्रकार खिन्न होकर अपने पुत्ररूपी यशसे अवलंब दिया जाकर वृद्ध 'गुणोंका समूह' समुद्रके तीरपर तपस्याके लिये चला गया।

९९. जो धनुर्धारी प्रतिद्वंद्वियोंकी स्त्रियोंको वैधव्य व्रत देनेवाला है ऐसे उस राजाके दिग्विजयके लिये उद्यत होनेपर और क्रुद्ध होकर प्रति दिशामें उसके भ्रमण करनेपर, और स्त्रियोंकी तो बात ही क्या स्वयं रति भी मारे डरके अपने पतिको, मदान्ध भ्रमरियोंका नील चोला धारण किये हुए पुष्पधनुष्यको [भी हाथमें] नहीं लेने देती।

१००. चिन्तारूपी गंभीर कूपपर महाशोकरूपी चलती अरघट्ट (घड़ारी) परसे निःश्वास फेंककर अपने बड़ी बड़ी आँखरूपी घटीयंत्रसे छोड़े हुए अश्रुधारको और नासिकाकी वंशप्रणालीके

विषम पथसे गिरते हुए इस वाष्प रूपी पानीयको, हे महाराज, तुम्हारे शत्रुओंकी स्त्रियाँ अविराम भावसे स्तनरूपी दो कलशोंमें ढोया करती हैं।

इस प्रकार काव्योंके पूरा पढ़े जानेपर [आगे यह आधा काव्य मिला–]

१०१. 'अहो ! पूर्वकृत कर्मोंका परिणाम प्राणियोंके लिये सचमुच ही बड़ा विषम होता है।'

इस काव्यका उत्तरार्द्ध छित्तप प्रभृति सैकड़ों पंडितोंके पूरा करनेपर भी ठीक नहीं जमता था तब राजाने धनपाल पण्डितसे पूछा [तो उसने अपनी प्रतिभाके बलसे यह यथार्थ पाठ कहा]–" हरेहरे ! जो सिर शिवके सिर पर विराज रहे थे वे गृध्रोंके पैरोंसे लुण्ठित हो रहे हैं "। ' यही उत्तरार्द्ध ठीक जमता है ' इस प्रकार जब राजाने कहा तो पंडित बोला–'यदि पदबन्ध और अर्थ दोनों ही, श्री रा मे श्व र प्रा सा द की दीवालपर ये इसीप्रकार न हों तो, इसके बाद आजीवन मैं कविताका त्याग कर दूं।' उसकी इस प्रतिज्ञाके सुननेके साथ ही राजाने जहाजके यात्रियोंको उसी समुद्रमें गोता लगवाकर मंदिरको खोज निकालनेकी आज्ञा दी। ६ महिने बाद उसे ढूंढ निकाला और उसपर फिरसे मोमकी पट्टी लगा कर [लेखकी नकल ली] उसमें यही उत्तरार्द्ध निकला। यह देखकर [राजाने] उसके उपयुक्त पारितोषिक दिया। इस प्रकार, इस खण्ड प्रशस्ति के अनेक काव्य परंपराके अनुसार समझने चाहिये।

६०) एक बार राजाने सेवामें ढील-ढाल होनेका कारण पंडितसे पूछा। उसने अपनी तिलक मंजरी [नामक कथा] की रचनाको व्यग्रताका कारण बताया। शीतकालकी एक रात्रिके अन्तिम प्रहरमें राजाको कोई विनोद नहीं मिल रहा था। उसने पंडितको बुला कर, स्वयं उसकी उस तिलकमंजरी कथाको पढ़ने लगा और पंडित उसकी व्याख्या करने लगा। राजाने उसके ' रस ' के गिरनेके भयसे उसके नीचे सोनेकी थालीमें कचोलक (कटोरा) रखा और इस तरह [बड़े चावके साथ] समाप्त किया। उस अद्भुत काव्यसे चित्तमें चमत्कृत होकर राजाने कहा कि–' यदि मुझे इस काव्यका कथानायक बनाओ और विनीता के स्थानमें अवन्तीका नाम रखो, तथा शक्रावतारतीर्थकी जगह महाकाल को उल्लिखित करो तो जो माँगो वही मैं तुम्हें दूंगा।' राजाके ऐसा कहने पर उसने कहा कि–जिस प्रकार खद्योत और सूर्यमें, सरसों और सुमेरुमें, काच और काञ्चनमें, तथा धतूरे और कल्पवृक्षमें महान् अन्तर है उसी तरह तुममें और उनमें है। ऐसा कहता हुआ–

१०२. हे दो मुँहवाली, निरक्षर, लोहेकी तराजू ! तुझे क्या कहूँ ? जो तू गुंजाके साथ सोनेको तौलते समय पाताल नहीं चली गई।

इस प्रकार जब पंडित झिड़क रहा था, तो राजाने उस मूल प्रतिको जलती आगमें इंधन बना दिया। इस प्रकार वह द्विधा निर्वेद * होकर और द्विधा अवाङ्मुख × होकर अपने मकानके पिछले भागमें एक पुराने मञ्चपर जा बैठा और नीसासे डालता हुआ लम्बा होकर सो गया। बालपंडिता ऐसी उसकी लड़कीने उसे भक्तिपूर्वक उठाकर स्नान पान-भोजन आदि कराके, तिलकमञ्जरीकी प्रथम प्रतिके लेखनका स्मरण कर करके आधा ग्रंथ लिखा दिया। फिर पण्डितने उत्तरार्द्ध नया लिखकर ग्रंथ संपूर्ण किया।

[यहाँ पर इसके आगे Pb आदर्शमें निम्न लिखित कथन पाया जाता है–]

पंडितने ग्रंथ संपूर्ण किया और फिर रुष्ट होकर नाणा गाँव में चला गया। एक बार भोज की सभामें धर्म नामक वादी आया। उस समय वहाँ ऐसा कोई विद्वान् नहीं था, जो उसके साथ प्रतिवाद करनेका साहस करता।

---

* द्विधा निर्वेदका मतलब दोनों तरहसे निर्वेद हुआ। १ निर्वेद=खिन्न हुआ, २ निर्वेद=ज्ञानशून्य हुआ।

× द्विधा अवाङ्मुख १=नीचा मुखवाला, २=वाणीशून्य मुखवाला।

तब भोजने बहुत मानके साथ धनपालको बुलाया। उसे आते सुन कर ही वह वादी भाग गया। लोगोंने हँसकर कहा—धर्मस्य त्वरिता गतिः=धर्मकी गति शीघ्र होती है। [इस कहावतको उसने चरितार्थ किया] राजाने सम्मान किया....और वहाँपर योगक्षेमके निर्वाह (गुज़र) की क्या हालत थी सो पूछी। पंडित बोला—

[६२] हे राजन्, इस समय हमारा और आपका घर समान है, क्योंकि दोनों ही पृथुकार्तस्वरपात्र (१ गंभीर आर्तनादका पात्र, और २ विपुल सुवर्णपात्रवाला) है, दोनों ही भूषितनिःशेषपरिजन है (१ अलंकारहीन परिजनवाला, और २ सारे परिजन जिसमें भूषित हैं, ऐसा) हैं, और दोनों ही विलसत्करेणुगहना (१ धूलिपूर्ण, और २ हाथियोंसे सुसज्जित) हैं।

(यहाँ P प्रतिमें निम्नलिखित और विशेष पंक्तियाँ पाई जाती हैं—)

एक बार उसने भोजकी सभामें यह काव्य पढ़ा—

[६९] हे धाराके अधीश्वर ! पृथ्वीके राजाओंकी गणनामें कौतूहलवान् होकर इस ब्रह्माने आकाशमें खड़ियासे लकीर खींच खींचकर तुम्हारी ही (अकेलेकी) गणना की। वही रेखायें यह स्वर्गंगा हो गई हैं और तुम्हारे समान पृथ्वीमें अन्य भूमिधव (राजा) का अभाव होनेसे उसने उस खडियाको फेक दिया वही यह हिमालय बना है।

अन्य पंडित इस काव्य [की अत्युक्ति] पर हँसे। पर धनपालने कहा—

[७०] वाल्मीकिने वानरोंसे आहृत (मँगवाये गये) पर्वतोंसे समुद्रको बँधवाया और व्यासने अर्जुनके बाणोंसे। तथापि उनकी बातें अत्युक्ति नहीं समझी जातीं। हम तो कुछ प्रस्तुत विषय ही कहते हैं, तथापि लोग मुँह फाड़ कर हँसते हैं ! इसलिये हे प्रतिष्टे, तुझे नमस्कार है।

एक वार किसी पण्डितके यह कहनेपर कि—हे राजन्, महाभारतकी कथा सुनिये, उसपर परम आर्हत पंडितने कहा—

[७१] कानीन (कुमारी कन्याके पुत्र=व्यास) मुनि, जो अपनी भ्रातृवधूके वैधव्यका विध्वंस करने वाला है, उसकी रचना, जिसमें गोलक (विधवा पुत्र) के पाँच पुत्र पाण्डव नेता हैं, जो स्वयं कुंड (जीवितपतिका स्त्रीके अन्य उपपतिसे उत्पन्न पुत्र) है। कहा गया है कि ये पाँचो समान जातिके हैं ! इनका संकीर्तन करना भी यदि पुण्य-कर और कल्याण-कारक हो तो फिर पापकी दूसरी कौन सी गति होगी ?

६१) शोभन मुनिकी 'शोभन चतुर्विंशतिका स्तुति' प्रसिद्ध ही है।

'इस समय क्या कोई [नया] प्रबंध आदि लिखा जा रहा है ?' राजाके यह पूछनेपर धनपालने कहा—

[७२] गलेमें उतरनेवाली गरम कांजीसे, जल जानेकी आशंकाके कारण सरस्वती मेरे मुँहसे निकल कर चली गई है। इसलिये वैरियोंकी लक्ष्मीके केश पकड़नेमें व्यग्र हाथवाले महाराज ! मेरे पास अब कवित्व नहीं रहा।

राजाने [प्रसन्न होकर दूध पीनेके लिए] सौ गायें दिलवाई। राजाने जब यह पूछा कि 'गायें मिली ?' तो—

[७३] हे नरवर ! ये सौ तो दूध देती नहीं है और ना ही इन सौमेंसे एकको भी बछडा है। इन सौमेंसे बड़ी मुस्किलसे बाँसामा खाती हुई २० गायें घर तक पहुँच सकती हैं !

इस प्रकार धनपालने [उन बुड्ढी और बेकार गायोंकी] बात कही।

[७४] धनपाल कविका सरस वचन और मलयगिरिका सरस चन्दन, हृदयमें रखकर कौन निर्वृत (शान्त) नहीं होता।

[इधर शोभन मुनि स्तुति करनेके ध्यानमें [लीन होनेसे] एक स्त्रीके घर तीन बार [भिक्षा लेने] गया। इससे उस स्त्रीका दृष्टिदोष लगा और वह मर गया। उसने अपने भाईसे अन्त समयमें ९६ स्तुतियोंकी वृत्ति कराके अनशनपूर्वक सौधर्म स्वर्ग प्राप्त किया।]

-इस प्रकार यह धनपाल पंडितका प्रबंध पूर्ण हुआ।

*

६२) कभी, उस नगरका निवासी कोई ब्राह्मण, जिसकी वृत्ति केवल भिक्षा ही थी, एक पर्व दिनमें नगरके सब लोगोंके स्नानमें व्यस्त रहनेके कारण भिक्षा न पाकर खाली ताम्र-पात्रके साथ ही घर लौट आया। इसलिये ब्राह्मणी उसे फटकारने लगी। झगड़ा बढा और ब्राह्मणने उसपर प्रहार किया। आरक्षक पुरुष (नगररक्षक=पुलीस) उसे कैद करके राजमंदिरमें लाये। राजाके पूछने पर उसने यह श्लोक पढ़ा-

१०३ माँ मुझसे सन्तुष्ट नहीं रहती, और अपनी पतोहूसे भी सन्तुष्ट नहीं रहती, वह (बहू) भी न मुझसे और न माँसे [सन्तुष्ट] है। मैं भी न उस (माँ) से और न उस (स्त्री) से [सन्तुष्ट रहता हूँ]। हे राजन्! बताओ इसमें दोष किसका है?

इसका अर्थ पंडितोंके न समझने पर, राजाने अपनी बुद्धिसे उसके अभिप्रायको प्राय समझ कर, उसे तीन लाख [दानमें] दिलवाये। और श्लोकके अर्थका व्याख्यान करते हुए कहा कि दारिद्र ही कलहका मूल है।

सब दर्शनोंसे सत्यमार्गकी पृच्छा।

६३) बादमें, किसी समय, एक बार सब दर्शनोंको एकत्र बुलाकर राजाने मुक्तिका मार्ग पूछा। वे अपने अपने दर्शनका पक्षपात करने लगे। सत्यमार्ग जाननेकी इच्छासे राजाने उन सबको एकमत होनेको कहा। वे सब ६ महीने तक शारदाके आराधनमें लगे रहे। किसी रात्रिके अन्तमें शारदाने यह कहकर कि 'जागते हो?' राजाको उठाया और

१०४ सौगत (बौद्ध) धर्म है सो तो सुनने लायक है (अर्थात् उसके सिद्धान्त सुननेमें अच्छे हैं), और आर्हत (जैन) धर्म है सो करने लायक है। व्यवहारमें वैदिक धर्मका अनुसरण करना योग्य है और परम पदकी प्राप्तिके लिए शिवका ध्यान धरना उचित है।

(अथवा-अक्षय पदका ध्यान करना चाहिए) राजाको तथा दर्शनों (सब मतवाले पण्डितों) को यह श्लोक सुनाकर श्रीभारती तिरोहित हुई।

१०५ 'अहिंसा' जिसका मुख्य लक्षण है वही धर्म है। भारती (सरस्वती) है वही सबकी मान्य देवी है। ध्यानसे मुक्ति प्राप्त होती है यही सब दर्शनोंका मतव्य है।

इन दो श्लोकोंको बनाकर उन्होंने राजाको मुक्तिका निर्णय बताया।

*

शीता पण्डिताका प्रबन्ध।

६४) बादमें, उस नगरकी निवासिनी शीता नामक रन्धनी (रसोई बनानेवाली) को किसी विदेशी-कार्पटिकने सूर्य पर्वके दिन भोजन बनानेके लिए अन्न दे कर, स्वयं जलाशयमें स्नान करते समय फनुनीके तेलका पान कर जानेसे, उसके घरपर आते ही, वमन करके मृत्यु प्राप्त हुआ। उसे देखकर, अपनेका ▪ वधके निमित्त मार डालनेका कलंक लगनेकी आशंकासे उस रन्धनीने मरनेके लिए उसी अन्नको खा लिया। वह [उसके पेटमें] टिक गया। और उसके प्रभावसे उसको प्रतिभाका बड़ा विभव प्रादुर्भूत हुआ। लोगों

विद्याओंका कुछ अभ्यास करके विजया नामक अपनी नव युवती कन्याके साथ श्री भोज की सभाको सुशोभित करती हुई श्री भोज से बोली–

१०६. श्रीमन्महाराज भोज की शूरताकी सीमा तो शत्रुओंके कुलोंका क्षय करने तक है, यशकी सीमा ठेठ ब्रह्माण्डरूपी भाण्ड तक है, पृथ्वीकी सीमा समुद्रके तट तक है, श्रद्धाकी सीमा पार्वती-पति (शिव) के चरणद्वन्द्वमें प्रणाम करने तक है, लेकिन बाकी जो अन्य गुण हैं उनकी तो कोई सीमा ही नहीं है।

इसके बाद विनोद-प्रिय राजाने कुच-वर्णनके लिए विजयाको आज्ञा दी। वह बोली–

१०७. उस पतले शरीरवाली रमणीके स्तनमण्डलकी यदि, ऊँचाई चिबुक तक है; उत्पत्ति भुजलताके मूल तक है; विस्तार हृदय तक है और संहति कमलिनी सूत्र तक है; वर्णकी सीमा स्वर्णकी कसौटी तक है; और कठिनताकी सीमा हीरेकी खानवाली भूमि तक है; तो उसका लावण्य अस्त समय (जीवनकी समाप्ति) तक है।

उसके इस वर्णनको सुनकर, उस आधे कवि राजाने कहा–

[७५] 'उस कमल-नयनीके दोनों कुचोंका क्या वर्णन किया जाय?'–इसपर उसने आधा श्लोक यह कहा– सात द्वीपके 'कर' (महसूल) ग्रहण करनेवाले आप जैसे जहाँ 'कर' (हाथ) देते है। राजाने एक और आधा काव्य पढा–

[७६] 'आघात किये हुए मुरजके समान गंभीर ध्वनिवाले और भ्रमरोंके समान नील [वर्णवाले] बादलोंसे वह दिशा रुद्ध-सी क्यों हो गई है?'

इसके उत्तरार्धमें उसने कहा–

['इस लिये कि] प्रथम विरहके खेदसे म्लान बनी हुई बाला, जिसका मुख आँखोंके उगले हुए आँसुओंसे धो गया है, वह वहाँ वास करती है।'

१०८. 'जगत्को आनंद देनेवाले उस सुरतको नमस्कार है'–इस प्रकार राजाके कहनेपर [क्यों कि] 'जिसके आनुषंगिक फल हे भोजराज, आप जैसे पुरुष हैं।'

विजयाके इस विजयशाली वाक्यको सुनकर राजाने लज्जित होकर मुँह नीचा कर लिया। तब राजाने उसे [अपनी] भोगिनी बनाई। एक बार उसने जालके भीतरसे आते हुए चन्द्र-कर (किरण) के स्पर्श होनेपर [काव्य] पढा–

[७७] हे कलंकके शृंगारवाले चन्द्र! बस करो इस करस्पर्शनकी लीलाको। तुम तो शिवके निर्माल्य हो, इससे तुम्हारा स्पर्श करना उचित नहीं।

[७८] अनुद्यम परायण (आलसी) राजाओंके समान, क्षणभरमे तारायें क्षीण हो गईं; ग्राम्य जनोकी सभामें पंडितकी पण्डिताईके समान चन्द्रमाकी कान्ति म्लान हो गई; जैसे मानों पारेने सोना खा लिया हो वैसी प्राची दिशा पिंगलवर्णा हो गई और निर्धन पुरुषोंके गुणकी तरह ये दीपक भी शोभा नहीं प्राप्त करते।

[७९] कलिकालमें सज्जनोंकी भाँति तारायें विरल हो गईं, मुनिके मनकी नाई आकाश सर्वत्र प्रसन्न हो गया, सज्जनोके चित्तसे दुर्जनकी तरह अन्धकार दूर हो रहा है और निरुद्यमियोंकी लक्ष्मीकी तरह रात जल्दी जल्दी बीत रही है।

इस प्रकार यहाँ पर बहुत कुछ वक्तव्य (काव्य आदि कहने लायक) है जो परंपरा द्वारा जान लेना चाहिए।

–इस प्रकार शीता पंडिताका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

मयूर, बाण और मानतुङ्गाचार्यका प्रबन्ध ।

६५) मयूर और बाण नामक दो साला-बहनोई पंडित, अपनी विद्वत्तासे एक दूसरेके साथ स्पर्द्धा करते हुए भोजकी सभामें लब्धप्रतिष्ठ हुए। एक बार बाण पण्डित बहनसे मिलने गया और उसके घर जाकर रातको द्वारपर सो गया। [उस रातको रूठी हुई] उसकी मानवती बहनको बहनोई द्वारा मनाती सुना। [बाणने] उसपर ध्यान दिया तो उसने यह सुना–

१०९ हे तन्वंगी, प्राय [सारी] रात बीत चली, चन्द्रमा क्षीणसा हो रहा है, यह प्रदीप मानों निद्राके अधीन होकर झूम रहा है, और मानकी सीमा तो प्रणाम करने तक ही होती है, अहो ! तो भी तुम क्रोध नहीं छोड़ रही हो ?–

[काव्यके] ये तीन पद बारबार उसे कहते सुनकर [वह चोथा पाद इस प्रकार बोल उठा–]

' हे चण्डि ! कुचोंके निकटवर्ती होनेसे तुम्हारा हृदय भी [उनके जैसा] कठिन हो गया है ! '

भाईके मुँहसे यह चौथा पाद सुनकर वह लज्जित हो गई और कुपित होकर उसे शाप दिया कि ' तुम कुष्टी हो ! ' उस पतिव्रताके व्रतके प्रभावसे उसे उसी समय कुष्ठ रोग उत्पन्न हो गया। प्रातःकाल शालसे शरीर ढककर राजसभामें आया। मयूरने मयूरकी भाँति कोमल वाणीसे उसे ' वरकोढी ' यह प्राकृत शब्द कहा। इसपर चतुर चक्रवर्ती राजाने उसकी ओर विस्मयके साथ देखा। प्रसगान्तर उठनेपर बाणने देवताराधनका विचार किया ओर लज्जित भावसे वहाँसे उठकर नगरकी सीमापर गया। वहाँ पर एक स्तंभ खडा कर नीचे खदिर काष्ठके अगारसे भरा हुआ कुंड बनवाया। स्तंभके सिरेपर लटकाए हुए छींकेपर स्वयं बैठ गया। वहां सूर्यदेवकी स्तुति बनाना प्रारम्भ किया। प्रति काव्यके अंतमें छींकेकी एक एक रस्सी चाकूसे काटने लगा। इस प्रकार पाँच काव्योंके अन्तमें उसने पाँच रस्सियां काट दीं। इसके बाद छींकेके अग्रभागमें लगा रहकर उसने छट्टे काव्यसे सूर्यदेवको प्रत्यक्ष किया। उसके प्रसादसे तत्काल ही वह तेजवान् काञ्चनकी कान्तिवाला हो गया। दूसरे दिन उत्तम वर्णके चन्दनका शरीरमें लेप करके और दिव्य श्वेत वस्त्र लपेट कर [राजसभामें] गया। उसके शरीरसौन्दर्यको [पूर्ववत्] राजाने देखा तो मयूरने सूर्यके वरका फल बताया। यह सुनकर बाणने बाणकी भाँति इस वाणीसे मयूरका मर्म वेध किया कि ' यदि देवाराधन इतना सरल है तो तुम भी कुछ कोई विचित्र कार्य करके दिखाओ न ? ' उसके ऐसा कहनेपर मयूरने जवाब दिया कि– ' नीरोग आदमीको वैद्यसे क्या काम ? फिर भी तुम्हारी बातको सच कर दिखानेके लिए अपने हाथ-पैर छुरीसे काट देता हूँ और तुमने तो छठे काव्यमें सूर्यको प्रसन्न किया है, परन्तु मैं प्रथम काव्यके छठे अक्षरमें ही भवानी-को प्रसन्न करता हूँ। ' यह प्रतिज्ञा कर सुखासनपर बैठकर चण्डिकाके मंदिरके पिछवाडे जाकर बैठ गया। वहाँ ' मा भाङ्क्षीर्विभ्रमम् ' (ऐसे आदि वाक्यवाली चण्डिका-स्तुति प्रारम्भ की) इसके छठे अक्षरपर ही चण्डिका प्रत्यक्ष हुई और उसकी कृपासे उसका शरीरपल्लव प्रत्यग्र तक सुन्दर हो गया। अपने सामने ही उस प्रसादको देखकर राजा और अन्य राजपुरुषोंने सामने आकर उसका जय-जय-कार किया और बड़े समारोह के साथ उसका नगरमें प्रवेश कराया।

' वरकोढी ' यह प्राकृत शब्द द्वि अर्थी है। ' वर कोढी ' और ' वरक ओढी ' ऐसा इसका पदच्छेद किया जाता है। पहले पदमें वर=अच्छा, कोढी=कुष्ठी अर्थात् अच्छे कुष्ठी (कुष्ठरोगी) बने ऐसा व्यंग्य है। दूसरे पदमें वरक=शाल ओढी=ऊपर डाली अर्थात् ' शाल ओढकर आये हो ! ' ऐसा आश्चर्यद्योतक वचन है।

६६) इसी अवसर पर, मिथ्यादृष्टि वालोंके धर्मको इस प्रकार विजयी होते देख, सम्यग्दर्शन (जैन) द्वेषी कुछ प्रधान पुरुषोंने राजासे कहा—' यदि जैनधर्ममें भी कोई ऐसा प्रभाव वतलाने वाला हो तो श्वेतांवर स्वदेशमें रहे, नहीं तो शीघ्र ही निर्वासित कर दिये जायँ । ' इस प्रकार उनके वचनके पश्चात् श्री मा न तु ंगा चा र्य को वहाँ बुलाकर राजाने कहा कि अपने देवताओंके कुछ चमत्कार दिखाइये । वे वोले—' हमारे देवता तो मुक्त है, उनके चमत्कार क्या हो सकते हैं; तथापि उनके किंकर देवताओंके प्रभावका आविर्भाव देखिये । ' इस प्रकार कहके अपने शरीरको चँवालीस हथकड़ियों और वेड़ियोंसे कसवाकर उस नगरके श्री-युगादि देवके मंदिरके पिछले भागमें बैठ गये । ' भ क्ता म र ' इस आदि वाक्यवाली मंत्रगर्भ नई स्तुति बनाने लगे । इसके प्रति काव्यके अन्तमें एक एक वेड़ी टूटती जाती थी । वेड़ियोंकी संख्याके वरावर काव्य बनाकर स्तव पूरा किया और उस मंदिरको अपने सम्मुख परिवर्तित कर शासनका प्रभाव दिखाया ।

—इस प्रकार श्रीमानतुङ्गाचार्यका प्रवन्ध पूर्ण हुआ ।

*

गूर्जर देशकी विदग्धताका प्रवन्ध ।

६७) वादमें, किसी एक अवसर पर, राजा अपने देशके पंडितोंके पांडित्यकी प्रशंसा करता हुआ गू र्ज र दे श के पण्डितोंको अविदग्ध (असहृदय) कह कर निन्दा करने लगा । इस पर वहांके स्थानीय [गू र्ज र] पुरुषने कहा कि हमारे देशके तो स्त्रियाँ और ग्वाला लोकके साथ भी आपके देशका कोई वड़ा पंडित तक समानता नहीं कर सकता । जव उसने ऐसी वात कही तो राजा उसे मिथ्याभाषी बनानेकी इच्छासे अपना मनोभाव छिपा कर, कुछ दिन तक चुप-चाप रहा । इधर उस स्थान-पुरुषने भी म को यह वृत्तान्त कहलाया । भी म ने स्वदेशकी सीमा पर कुछ रसिक वेश्याओ और कुछ ग्वाल-वेष-धारी पंडितोंको नियुक्त किया । कोई वैसा गोप प्र ता प दे वी नामक वेश्याको साथ लेकर रसिक जनोंके लिये अमृतकी सार-भूत ऐसी धारा नगरी के निकट आया । वहाँ उस वेश्याको सजानेके लिये छोड़कर, सवेरे ही गोप [राजसभाके समीप पहुँचा] राजदौवारिकने उसको राजाके सम्मुख उपस्थित किया । श्री भो ज ने कहा कि ' कुछ कहो ' इस पर—

११०. हे भो ज दे व ! यह तुम्हारे गलेमे जो कण्ठा पडा है वह मुझे वहुत अच्छा लग रहा है । मालूम दे रहा है कि तुम्हारे मुखमें जो सरस्वती और वक्षःस्थलमें लक्ष्मी वस रही है उन दोनोंकी सीमा इसने विभक्त कर दी है ।

इस प्रकार उसकी उक्ति सुनकर विस्मयसे मनमें चकित होकर उसके सामने देख रहा था कि उतनेमें उस उत्तम परिच्छद धारिणी वेश्याको भी देखा । उसके प्रति भो ज ने यह आकस्मिक वचन कहा—' यहाँ क्या ! ' । इसके अनन्तर वह बुद्धि-निधि सुमुखी, जो स्वजाति (स्त्री जाति) की होनेके कारण मानों सरस्वतीकी खास कृपा-पात्र थी और शरीरधारिणी प्रतिभाकी भाँति [दिखाई देती थी], राजाके गंभीर वचनके भी तत्त्वको समझकर उसको [प्राकृत भाषामें] जवाव दिया कि—' पूछते हैं ' उसके इस उचित वचनसे भो ज का मुख-कमल विकसित हो गया । उसको कोशाध्यक्षसे तीन लाख दिलवानेको कहा . पर वह (कोशाध्यक्ष) इस तत्त्वको न समझकर तीन वार कहनेपर भी चुप-चाप बैठा रहा । जब वह नहीं देने लगा तो राजा प्रकाश ही वोला, कि देशकी परिस्थिति और स्वभावकी कृपणताके कारण इसे तीन ही लाख दिला रहा हूं, यदि उदारताके साथ दिया जाय तो इतना बड़ा साम्राज्य भी देना कम ही है । इस आदेशको सुनकर समस्त राजलोकने राजासे प्रार्थना की कि उन दो वाक्योंका अन्वय क्या है ? इस पर वह वोला— 'इसके कटाक्षोंकी दोनों अंजन रेखाओंको कान तक फैली हुई देखकर मैंने कहा कि ' यहाँ क्या ? ' इसने

जवाब दिया कि-'दोनों नेत्र कान तक फैली हुई अजन रेखाके बहाने कानोंके पास यह निर्णय करने गये हैं कि क्या यह वही श्री भोज हैं जिनके बारेमें आप लोगोंने पहले सुन रखा है? यही बात ये पूछते हैं।' प्राकृत भाषामें, व्याकरणके नियमसे द्विवचनका प्रयोग बहुवचनसे होता है। इसी बातकी आशका करके इसने 'पुच्छति' ऐसा जवाब दिया है। अपनी बुद्धिसे बृहस्पतिकी भी अवज्ञा करनेवाले ऐसे जो पण्डित हैं उनके लिये भी जो अर्थ अविषयीभूत है, उसे सहसा ही कहती हुई यह मानों प्रत्यक्षरूपा भारती ही है। सो इसके पारितोषिकमें तीन लाख क्या चीज है? । इसके बाद तीन बार 'तीन लक्ष' देनेके लिये कहनेके कारण अपने सामने ही उसे नव लाख दिलवाया। इस तरह राजा भोजको गूर्जर जनोंकी चतुरता मालूम हो गई तो उसने कहा-'विवेक तो गूर्जर देश ही में है।' [और तब राजाने 'मालवीय पडित और गूर्जर गोपाल समान हैं' इस वृद्धजनोंकी वाणीको सत्य मानकर उन्हें विदा किया।]

इस प्रकार यह वेश्या और गोपका प्रबन्ध है।

*

६८) वह राजा लड़कपनसे ही-

१११ मनुष्य यदि मृत्युको सिरपर बैठी हुई देखे तो उसे आहार भी अच्छा न लगे, तो फिर अकृत्य (अनुचित कार्य) करनेकी तो बात ही कहाँ हो।

इस तरहको जाननेके कारण धर्म कार्यमें अप्रमत्त रहता। एक बार [रातको] निद्रा भगके अनन्तर 'कोई विद्वान् आ कर [कहता है] कि एक तेज घोड़ेपर सवार हो कर तुम्हारे पास प्रेतपति (यमराज) आ रहा है, इस लिए उसके अनुसार धर्म-कर्मके लिए सज्जित हो जाइए' इस बचनको बोलनेके लिए नियुक्त किये हुए पडितको प्रतिदिन उचित दान देता रहा। एक बार अपराह्नमें राजा सिंहासन पर बैठा हुआ पान देनेवालेके दिये हुए बीड़ेसे पानके पत्तेको पहले ही मुँहमें डाल लिया। जब नीतिविदोंने उसका कारण पूछा तो इस प्रकार कहा-'यमराजके दाँतके भीतर पड़े हुए मनुष्योंके लिये वही वस्तु अपनी है जो या तो दान कर दी गई है, या उपभोगमें ली गई है। और तो सशयवाली है। तथा और भी-

११२ [मनुष्यको] नित्य ही उठ उठ कर विचारना चाहिये कि आज मैंने कौनसा सुकृत किया। [दिनके पूरा होने पर] आयुका एक टुकड़ा ले कर रवि अस्त हो जायगा।

११३ लोग मुझे पूछते रहते हैं कि आपका शरीर तो कुशल है। [लेकिन यह नहीं सोचते कि-] हम लोगोंको कुशल कैसे? आयु तो दिन-प्रतिदिन बीतती ही जा रही है।

११४ [इस लिये] कल जो करना है उसे आज ही कर लेना चाहिये, जो दोपहरके बाद करना है उसे उसके पहले ही कर लेना चाहिये। मृत्यु इसकी प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने किया है या नहीं किया।

११५ क्या मृत्युकी मौत हो गई है, बुढ़ापा बूढा हो गया है, विपत्तियाँ विपदामें पड़ गई हैं और व्याधियाँ बीमार हो गई हैं जो ये आदमी दर्प करते रहते हैं?

इस प्रकार अनित्यता सबधी चार श्लोकोंका यह प्रबध है।

*

भोजका भीमके पास चार वस्तुयें माँगना।

६९) अन्य किसी दिन भोजने भीम राजाके पास दूतके मुखसे चार चीजें माँगीं। एक वस्तु यह 'जो यहाँ है, वहाँ नहीं,' दूसरी 'वहाँ है, यहाँ नहीं,' तीसरी 'जो दोनों जगह है,' और चौथी 'जो

कहीं भी नहीं है।' विद्वानोंके लिये भी इसका अर्थ समझना सन्दिग्ध होनेसे अणहिल्लपुरमें इसके लिये ढौंडी पिटवाई जा रही थी तब किसी गणिकाने उस ढौंडीको छू कर विज्ञापित किया कि-(१) गणिका, (२) तपस्वी, (३) दानेश्वर और (४) जुआड़ी रूप इन चार चीज़ोंको भेज दीजिये। उसके कहने पर राजाने उस दूतको ये चीजें सौंप दी। 'ऐसा ही होना चाहिये' यह कह कर दूत चारों चीजें ले कर जैसे आया था वैसे ही वापस चला गया।

इस प्रकार चार वस्तुओंका यह प्रबंध है।

*

७०) एक बार राजा भोज वीरचर्यामें घूम रहा था। उस समय किसी अभागेकी स्त्रीको—

११६. लोकमें तो ऐसा सुना जाता है कि मनुष्यको [अपनी आयुमें] दश दशायें आती हैं। पर मेरे पतिकी तो एक ही [दरिद्र] दशा [सदा बनी रहती] है, सो मालूम देता है कि बाकीको चोरोंने चुरा लिया है।

यह पढ़ते सुन कर उसकी दुरवस्था पर राजाको दया आई और प्रातःकाल उसके पतिको सभामें बुला कर उसका कुछ भी अच्छा भविष्य सोच कर, दो बिजौरे नीबुओंको, जिनमेंसे प्रत्येकमें एक एक लाखकी कीमतके रत्न गुप्त भावसे रखवा कर, उसे इनाममें दे दिये। उसने भी इस वृत्तान्तको कुछ न समझ कर, कुछ दाम ले कर, साग-भाजीकी दूकान पर जा कर बेच दिये। उस (दूकानदार) ने भी उसका हाल न जान कर उन दोनों नीबुओंको किसीको भेंट दे दिया। उस आदमीने फिर से उन्हें उसी राजा भोजको भेंट किया।

११७. समुद्रवेलाकी चञ्चल तरंगोंसे घसीटा हुआ यदि कोई रत्न पहाड़ी नदीमें आ भी जाय तो वह फिरसे उसी मार्गसे उसी रत्नाकर (समुद्र) में ही चला जाता है।

इस अनुभवसे राजाने [इस उदाहरणमें] भाग्य ही को तथ्य माना। क्यों कि, कहा भी है कि—

११८. वर्षा कालमे अशेष जगत्के प्रीत होने पर भी चातक तो जलका एक बूंद भी नहीं पाता। सच है, अलभ्य वस्तु कैसे मिल सकती है।

इस प्रकार यह बिजौरे नीबूका प्रबंध है।

*

७१) अन्य किसी एक रातको, राजाने अपने क्रीड़ा-शुक (तोते) को गुप्त रूपसे '**एक अच्छा नहीं है**' यह बात पढ़ा कर उसे सिखाया कि तुम प्रातःकाल सभामें यही वाक्य उच्चारण करना। बादमें जब उस तोतेने वैसा ही कहा तो राजाने पंडितोंसे उसका मतलब पूछा। वे उसका मतलब न जानते हुए, उसके जाननेके लिये, उन्होंने ६ महीनेकी मुहलत माँगी। इसके बाद उनका मुख्य वररुचि इसका मतलब समझनेके लिये देशान्तरमें भ्रमण करने लगा। वहां किसी पशुपालने उससे कहा कि मैं इसका मतलब आपके स्वामीको बता सकता हूं। पर मैं अपने इस कुत्तेके बच्चेको, बूढा होनेके कारण, न तो ढो सकता हूं,—और बड़ा प्रिय होनेके कारण, ना ही छोड़ सकता हूं। उसके ऐसा कहने पर उसे साथ लेनेकी इच्छासे वररुचिने उस कुत्तेको कपड़ेमें लपेट कर अपने कन्धे पर रख लिया और उस पशुपालको साथ ले कर राजाकी सभामें गया। वहाँ उसको उत्तर देनेवाला बताया। इसके बाद, राजाने उस पशुपालसे उसी बातको पूछा। [उसने जवाब दिया—] महाराज, इस जीवलोकमें लोभ ही '**एक अच्छा नहीं है**'। राजाने फिर पूछा—'कैसे?' वह बोला—इसलिये कि यह

ब्राह्मण इस कुत्तेको, जो यद्यपि अस्पृश्य है, तथापि उसे कन्धे पर ढोता है, वह लोभ ही की लीला है। इसलिये लोभ ही एक अच्छा नहीं है।

इस प्रकार यह 'एक अच्छा नहीं है' प्रबन्ध पूरा हुआ।

*

७२) ‡ अन्य किसी समय, केवल मित्रको साथ ले कर राजा रातमें घूम रहा था, तो उसे बड़े जोरकी प्यास लगी। तब उसने एक वेश्याके घर जा कर मित्रके मुखसे जल माँगा। तब बड़े प्रेमके साथ श भ ली नामक दासी बड़ी देर करके, ईखके रससे भरा पात्र, कुछ खेदके साथ ले आई। मित्रने जो खेदका कारण पूछा, तो बोली कि पहले ईखकी एक ही लट्ठीमेंसे, जब वह शूलसे छेदी जाती थी तो, इतना रस निकल आता था कि घड़ेके साथ पुरवा (शकोरा) भी भर जाता था, पर इस समय राजाका मन प्रजाके विरुद्ध हो रहा है, इसलिये बड़ी देरके बाद भी केवल पुरवा ही भर पाया है। यही इस खेदका कारण है। राजाने उसके खेदके कारण को सुन कर विचार किया कि जिस वणिकने शिव मन्दिरमें वह बडा नाटक करवाया है उसको मैंने अपने मन ही मन, लूटनेका विचार किया था, इसलिये इसकी यह बात ठीक ही समझनी चाहिए। बादमें लौट कर अपने स्थान पर आ कर सो गया। दूसरे दिन प्रजा पर वत्सल भाव मनमें रखता हुआ राजा वेश्याके घर गया। उस दिन उसने यह कह कर राजाको सन्तुष्ट किया कि आज राजा प्रजाके प्रति कृपावान् है, क्यों कि आज ईखसे बहुत रस निकला है।

इस प्रकार यह इक्षुरसका प्रबंध पूर्ण हुआ।

*

७३) अन्य किसी एक अवसर पर, धा रा न ग री के शाखापुरमें एक गोत्र देवीका मदिर था जिसमें नमस्कार करनेके लिये [राजा] नित्य आया करता था, उसमें कुछ वेलाका व्यतिक्रम हो गया। इससे यह देवता प्रत्यक्ष हो कर द्वार पर आ कर उस राजाको देखने लगी, जो उस समय बहुत थोड़े नौकरोंके साथ द्वार-देश पर आ पहुंचा था। राजाको देख कर ससम्भ्रम वह अपने आसन पर बैठनेकी गड़बड़में, निजका आसन लांघ गई। राजाने प्रणाम करके इस वृत्तान्तको पूछा। देवताने निकट ही शत्रुसेनाका आना बता कर कहा कि शीघ्र जाओ। कुछ ही समयमें राजाने अपनेको गू र्ज र सैन्यसे घिरा पाया। वेगवान् घोड़ेपर चढ़कर तेजीसे जाता हुआ वह धा रा नगरीके फाटक पर पहुँचा, तो उस समय आ ह्या और को ह्या नामके दो गु ज रा ती सवारोंने उसके कंठमें धनुष्य फेंके और यह कह कर उसे छोड दिया कि 'तुम इतने-ही-से मार डाले जाते!'

११९. जिसके 'गुण'-वान् धनुपने, मानों यह समझ कर ही कि यह भो ज 'गुणी' है भागते हुए उस राजाको घोड़ेसे [नीचे] नहीं गिराया।

इस प्रकार यह घुड़सवारोंका प्रबन्ध पूर्ण हुआ।

*

[इसके आगे Pb प्रतिमें निम्नांकित प्रबंध पाया जाता है-]

अन्यदा एक वार रातमें जग कर राजा भो ज ने अपनी समृद्धिके विस्तारको अपने हृदयमें सोच कर काव्यके ये तीन चरण पढ़े-

---

‡ यह इक्षुरसवाला प्रबंध किसी प्रतिमें, विक्रम राजाके सम्बन्धमें लिखा हुआ मिलता है और इसलिये इसके पहले, ऊपर पृष्ठ ९ पर भी यह आया हुआ है, लेकिन वहाँ यह प्रक्षिप्त मालूम देता है।

[८०] मनोहर युवतियाँ, अनुकूल स्वजन, अच्छे बांधव और प्रेममय वचन बोलनेवाले नौकर हैं।
[द्वार पर] हाथियोंके झुंड गरज रहे हैं, और तरल (तेज़) घोड़े [हिनहिना रहे हैं]–

इस प्रकार राजा जब यह बारंबार बोल रहा था और चौथे चरणके लिये अक्षर ढूंढ रहा था, उसी समय कोई वेश्याव्यसनी विद्वान्, जो अपनी वेश्याके वचनसे रानीके दो कुण्डल चुरानेके लिये राजाके महलमें चौर बन कर घुसा था, उसने उन तीन चरणोंको सुना। तब उसने सोचा कि 'जो होना हो सो हो, पर जो चौथा चरण मनमें स्फुरित हो आया है उसे कैसे दबा रखूं?' और वह बोला–

'आंखोंके मींच जाने पर [इनमेंसे फिर] कुछ भी नहीं है।'

राजाने सन्तुष्ट हो कर कुण्डलके साथ उसको मनोवांछित दिया।

७४) अन्य समय, एक बार, वही राजा, राजपाटीसे लौट कर नगरके गोपुरमें [जब आ रहा था तब] एक बिना लगामका घोड़ा दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा, जिसे देख कर लोक आकुल-व्याकुल हो कर इधर उधर भागने लगे। उनमें एक तक्र विक्रय करनेवाली ग्वालिन भी सपाटेमें आ गई और उसके सिरपर जो छाँछसे भरी हुई हंडिया थी वह नीचे गिर पड़ी। उसमेंसे नदीके प्रवाहकी तरह गोरस निकल कर वह चला, जिसे देख कर उसका मुख-कमल खिल उठा। भोजने यह देख कर पूछा कि विषादके समय भी तुम्हारे इस हर्षका कारण क्या है? राजाके यह पूछने पर वह बोली–

१२०. राजाको मार कर, पतिको सांपसे काटा हुआ देख कर, मैं विधिवश परदेशमें वेश्या हुई। पुत्रको [अपने साथ] वेश्यागामी पा कर मैं चितामें प्रविष्ट हुई। इसके बाद, गोपकी गृहिणी बनी; तो फिर आज मैं इस तक्रके लिये क्या शोच करूं?

[वह इस प्रकार बोली। उस प्रदेशसे एक बड़ी नदी प्रादुर्भूत हुई, जिसका नाम मही पड़ा।]

इस प्रकार गोपगृहिणीका यह प्रबंध समाप्त हुआ।

*

७५) एक बार, प्रातःकाल, श्री भोज एक उपशिला (छोटे पत्थर) को लक्ष्य करके आनन्दपूर्वक धनुर्वेदका अभ्यास कर रहा था, उसी समय श्वेताम्बर वेशधारी श्री चंदनाचार्यने अपनी तत्कालोत्पन्न प्रतिभाकी सुन्दरतासे इस उचित पद्यको कहा–

१२१. यह खण्डित शिला चाहे खण्डित हो जाओ, पर हे राजन्! इसके बाद क्रीड़ा करना बस कर दीजिये; और देव! प्रसन्न हो कर पाषाणवेधके व्यसनकी यह रसिकता छोड़िये। क्यों कि अगर यह क्रीड़ा बढ़ी तो बड़े बड़े पर्वतोंको वेध करोगे और यह धरती ध्वस्ताधारा (आधार जिसका ध्वंस हो गया है) हो कर, हे नृपतिलक! पातालके मूलमें चली जायगी।

उनकी इस प्रकारकी कविताके चमत्कारसे चमत्कृत हो कर भी राजाने कुछ सोच कर कहा–'सर्व-शास्त्र-पारंगत हो कर भी आपने जो 'ध्वस्ताधारा' यह पढ़ा उससे कोई उत्पात सूचित होता है।'

*

भोज और कर्णका संघर्ष।

७६) इधर, डाहल देशके राजाकी देमति नामक रानी महा योगिनी थी। एक बार, जब कि वह आसन्न प्रसवा थी, सदैव ज्योतिषियोंसे यह पूछा करती थी कि 'किस शुभ लग्नमें उत्पन्न पुत्र सार्वभौम (सम्राट) होता है?' इसके बाद, उन्होंने अच्छी तरह विचार कर बताया कि 'जब शुभ ग्रह उच्च राशि, और केन्द्र (प्रथम

चतुर्थ, सप्तम, और दशम) में हों, तथा पाप ग्रह तृतीय, षष्ठ और एकादशमें हों, तो जो पुत्र होगा वह सार्वभौम राजा होगा। यह सुन कर, निश्चित प्रसव समयके बाद, १६ पहर तक, योगकी युक्तिसे गर्भस्तंभ करके ज्योतिषीके निर्णीत लग्नमें कर्ण नामक पुत्रको उसने जन्म दिया। उस गर्भधारणके दोषसे पुत्रप्रसवके अनन्तर आठवें पहरमें वह मर गई। सुलग्नमें जन्म होनेके कारण कर्णने अपने पराक्रमसे दिग्मण्डलको आक्रान्त किया। एक सौ छत्तीस राजाओंके, भौंरेके समान काले-काले केश-कलापसे उसके दोनों निर्मल चरण-कमल पूजे जाते थे और चारों प्रकारकी राजविद्याओंमें परम प्रवीणता प्राप्त करके, विद्यापति प्रभृति महाकवियोंसे वह स्तुत होता था। जैसे [एक बार कर्पूर कविने कहा-]

१२२ +जिनके मुँहमें तो 'हारावाप्ति'[१] है, आँखोंमें 'कंकणभार'[२] है, नितंबमें 'पत्रावली'[३] है, और दोनों हाथ 'सतिलक'[४] है—हे श्री कर्ण! तुम्हारे शत्रुओंकी स्त्रियोंको, विधिवश, वनमें, इस समय भूषण पहननेकी यह कैसी [विलक्षण] रीति ग्रहण करनी पड़ी है!

ऐसा कहने पर चतुर चक्रवर्ती राजाने कहा-'यदि 'विधिवश' ऐसा हुआ तो फिर वर्णनीय राजाका क्या रहा? दैवने भी जिस बातकी चिन्ता नहीं की वह हो।' अतएव राजाको इसमें कुछ भी चमत्कार नहीं जान पड़ा और उसे बिना कुछ दिये ही बिदा कर दिया। घर जाने पर भार्याने पूछा-'क्या दिया राजाने?' उसने कहा-'वही वृत्तस्वरूप!' (अर्थात् श्लोकमें जो वर्णन किया गया है वही स्वरूप) वह बोली-यदि 'विधिवशात्' की जगह 'तव वशात्' कहा गया होता तो वह सब कुछ दिलाता। तब फिर नाचिराज कविने कर्ण नृपकी स्तुति की। जैसे-

[८१] गोपियोंके पीन पयोधरसे विष्णुका हृदय [रूपी कमल] आहत हो गया है इसलिये मैं समझता हूँ कि लक्ष्मी कमलकी आशंकासे तुम्हारे नेत्रोंमें ही अब विश्राम कर रही है। इसलिये हे श्रीमन् कर्ण नरेश! जहाँ तुम्हारी भ्रूलता चलती है वहाँ भयभ्रान्त हो कर दारिद्र्यकी मुद्रा टूट जाती है।

इससे अत्यन्त तुष्ट हो कर राजाने हाथके साकले इत्यादिके उचित दानसे उसे पुरस्कृत किया। इस प्रकार जब वह मार्गमें आ रहा था, तो कर्पूर कविने स्त्रीसे कहा कि राजाने इसे जो कुछ दिया है उसे, अब मैं अपने घर ले आता हूं। यह कह कर वह उसके सामने गया।

[८२] 'हे कन्ये! तू कौन है?'-'कर्पूर कवि! क्या तू मुझे नहीं पहचानता?'-'क्या भारती है?'-'सच है'-'तू विधुरा क्यों है?'-'मैं लूट ली गई!'-'माँ किसके द्वारा?'-'दुष्ट विधाताके द्वारा'-'उसने तुम्हारा क्या ले लिया?'-'मुञ्ज और भोज रूपी दोनों आँख'-'तो जी कैसे रही हो?'-'क्यों कि दीर्घायु श्री नाचिराज कवि अन्धेकी लकड़ी रूप बने होनेसे।'

नाचिराज कविने इस काव्यसे सन्तुष्ट हो कर कर्णराजसे जो कुछ स्वर्ण, दुकूल आदि प्राप्त किया था वह सब कर्पूर कविको दे दिया। कर्ण नरेन्द्रने यह सुना, तो कर्पूरको बुलाके पूछा कि-'हे कवे! भोजके विद्यमान रहते 'मुञ्ज-भोज' यह पद कैसे उदाहृत किया?' वह बोला-'महाराज, जल्दी में 'हर्ष-मुञ्ज' की जगह मुञ्ज-भोज मुँहसे निकल गया।' तब राजाने सोचा कि यह बात भोजका अमंगल सूचित करती है।

[८३] श्रीमत् कर्ण नरेन्द्रने मान और विभवसे सब याचकोंका मनोरथ पूर्ण कर दिया, इसलिये चिंतामणिके आँगनमें शिखावाली दूर्वायें हमेशा श्यामल हो रही है। कल्पतरुके शून्य तलमें निर्भीक हो कर पशु-पक्षी खेल रहे हैं। और कामधेनु निकट ही स्कंदको बैठा कर आलससे निद्रा ले रही है।

+ इस पद्यमें शब्दोंके श्लेष द्वारा दो भिन्न अर्थ निकाले गये हैं। १ हारावाप्ति=हारकी प्राप्ति और 'हा' ऐसे 'राव' शब्दकी प्राप्ति। २ कंकण=हाथका आभूषण और क=पानी उसका कण=अश्रुबिंदु। यों तो पत्राली स्तन पर बांधी जाती है, लेकिन इन स्त्रियोंको तो पहननेके लिये पूरे वस्त्र नहीं है इस लिये पत्रावलीसे नितंब प्रदेशको ढाकना पड़ा है। ४ सतिलक तो कपाल होता है लेकिन इन स्त्रियोंके तो अब हाथ ही सतिलक=तिलवाले हैं।

७७) इस प्रकार महाकवि गण उसके नाना यशकी स्तुति करते थे। एक वार उस कर्ण राजाने श्रीभोजके प्रति प्रधानोंको भेज कर [यह कहलाया—] 'आपकी नगरीमें आपके वनाये हुए १०४ मन्दिर हैं, इतने ही आपके गीत-प्रबंध और इतने ही विरुद हैं; इसलिये, या चतुरंग [सेना] की लड़ाईमें, या द्वन्द्व युद्धमें, या चारों विद्याओंका शास्त्रार्थ करनेमें, या त्यागमें मुझे जीत कर एक सौ पांच विरुदोंके पात्र वनो। नहीं तो मैं तुम्हें जीत कर १३७ राजाओंका स्वामी बनूंगा।' इस प्रकार उसके प्रभावके आविर्भावसे भोजका मुखकमल किंचित् म्लान हो गया। वह काशी नगरीके स्वामीको सब प्रकारसे जीत जाने योग्य समझ कर और अपनेको पराजित मान कर, अनुरोधपूर्वक उसकी अभ्यर्थना करके इस प्रकार उससे स्वीकार कराया कि—'मैं अवन्तीमें, और श्री कर्ण वाणारसीमें एक ही लग्नमें नींव दे कर स्पर्द्धाके साथ ऐसे मंदिर वनवावे जो ५० हाथ ऊंचे हों। जहाँके प्रासादमें प्रथम कलश ध्वजारोपणका उत्सव हो उसमें दूसरा राजा छत्र-चामर छोड़ कर, हाथी पर वैठ कर वहाँ आवे। इस प्रकार भोजके यथा-रुचि अंगीकार करनेकी वात जव कर्णके कानों पहुँची तो वह यद्यपि क्रुद्ध हुआ तथापि भोजको उस तरह भी नीचा दिखानेके लिये [उद्यत हुआ]। एक ही लग्नमें अलग अलग दोनों जगह जव प्रासाद आरंभ किये गये तो, सारी तैयारी करके, सूत्रधारोंसे कर्णने अपने प्रासादको बनाते समय पूछा कि—'वताओ एक दिनमें, सूर्योदय और सूर्यास्तके वीच कितना काम किया जा सकता है?' इसके जवावमें उन्होने, चतुर्दशीके अनध्यायके दिन, सात हाथ ऊंचे ग्यारह मन्दिर, सूर्योदयमें आरम्भ करके शामको कलश तक बना कर राजाको दिखा दिये। उस सारी सामग्रीसे राजाने प्रसन्न हो, आलस्य छोड कर, भोजके मन्दिरका जव मुंड़ेरा वाँधा जा रहा था तभी अपने मंदिर पर कलश स्थापित करा दिया; और ध्वजारोपणका लग्न निर्णय कर, दूत भेज कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये श्रीभोजको निमंत्रित किया। तब मालवा मण्डलका अधिपति भोज अपनी प्रतिज्ञा भंग होनेके भयसे, उस तरह जानेमें असमर्थ हो कर चुप हो रहा। इसके वाद प्रासाद पर ध्वजारोपण हो जानेके वाद, पुरातन कर्णके नवीन अवतारके समान उस कर्ण राजाने उतने ही राजाओंके साथ प्रयाण करके श्रीभोजके ऊपर आक्रमण किया। उस अवसर पर श्रीभोजके राज्यका आधा हिस्सा देनेकी प्रतिज्ञा करके श्रीकर्णने मालवमण्डल पर पूंठ पीछेसे आक्रमण करनेके लिये श्रीभीमको आमंत्रित किया। इस तरह उन दो राजाओंसे आक्रान्त होने पर राजा भोजका दर्प, मंत्रसे आक्रान्त सर्पके विषकी भाँति दूर हो गया। अकस्मात् उसी समय भोजका स्वास्थ्य विगड़ गया जिसको वहाँ वालोंने छुपा रखा, और नियुक्त मनुष्यों द्वारा सभी घाटोंके रास्ते रोक दिये गये तथा अन्यदेशीय पुरुषोंका प्रवेश एकदम अटका दिया गया। तव भीमने अपने सन्धिविग्रहिक दामरको, जो उस समय कर्णके पास था, भोजका वृत्तान्त जाननेके लिये अपने आदमी भेज कर पूछा। उसने भी उस पुरुषको एक गाथा पढ़ा कर भेजा, जिसने श्रीभीमकी सभामें आ कर कह सुनाया। यथा—

१२३. आमका फल [अब] पक गया है, वृन्त शिथिल हो गया है, आँधी जोरोंसे चल रही है और शाखा काँपने लगी है। और आगे हम नहीं जानते कि इस कार्यका परिणाम क्या होगा।

इस गाथाके रहस्यको जान कर राजा भीम चुप हो रहा। श्रीभोजके परलोक-मार्ग की यात्रा जव निकट आई तो उसने उपयुक्त धर्मकृत्य किया और समस्त राजपुरुषोंको राज्यानुशासन दे कर और यह आदेश दे कर कि मेरे हाथ विमानके वाहर रखना, स्वर्ग गया।

[२४] अरे! पुत्र, कलत्र और पुत्रियोंको क्या कर रहे हो और खेती वाड़ीको भी क्या कर रहे हो! मनुष्यको तो अपने हाथ पग दोनों झाड़कर अकेले ही आना है और अकेले ही जाना है।

भोजके इस वाक्यको वेश्याने लोगोंसे कहा।

*

कर्णसे भीमका आधा भाग लेना।

७८) [इसके बाद, जब वह राजा भोज स्वर्गगामी हुआ] तो उस वृत्तान्तको जान कर कर्णने उसके दुर्गम दुर्गको तोड़ कर भोज की सारी लक्ष्मी हस्तगत की। तब श्री भीमने दामरको आदेश किया कि– 'तुम या तो श्री कर्णसे मेरा प्राप्य आधा राज्य ले आओ या अपना सिर ले आओ।' इस प्रकार राजादेश पालन करनेकी इच्छासे, ३२ पदातियोंके साथ, उसने राजाके तंबूमें घुसकर मध्याह्न कालमें सोये हुए श्री कर्णको बन्दीरूपमें गिरफ्तार किया। इसके बाद उस राजाने राज्य ऋद्धिके दो विभागोंमेंसे एकमें शिव, शालिग्राम, गणेश इत्यादि देवताओंको रखा और दूसरेमें राज्यकी अन्य सारी वस्तुओंको रखा। 'अपनी इच्छाके अनुसार इन दोमेंसे एक हिस्सा ले लो।' उसके ऐसा कहने पर, वह सोलह प्रहर तक तो वैसे ही पड़ा रहा, फिर भीमकी आज्ञा [आने पर] देवताओंके भंडारको ले कर ही उन्हें श्री भीमको भेंट किया। इस प्रबंधका सारा इतिहास इन दो काव्योंमें संग्रहीत है। जैसे–

१२४ पचास हाथ प्रमाणके दो शिवमंदिर एक ही लग्नमें प्रारम्भ किये गये। यह स्थिर हुआ कि जिस राजाके मंदिर पर पहले कलशारोपण होगा, उसके पास दूसरा राजा छत्र और चामर रहित हो कर आयगा। इस संवादमें राजा भोजकी बुद्धि व्ययसे विमुख हो गई और इस प्रकार वह कर्णदेवके द्वारा जीता गया।

१२५ भोज राजाके स्वर्ग जानेके बाद अतिबली कर्णने जो धारापुरीके भंग करनेका उपाय किया तो राजा भीमको सहायक बनाया। उसके भृत्य दामरने बंदी किये हुए कर्णसे गणपतिके सहित नीलकंठेश्वरको सोनेकी पालखीके साथ ग्रहण किया।

१२६ कवियों और कामियोंमें, योगियों और भोगियोंमें, धन देनेवालों और सज्जनोंका उपकार करनेवालोंमें, तथा धनी, धनुर्धर और धार्मिकोंमें भोज जैसा राजा पृथ्वी तलपर नहीं हुआ।

१२७ राजा भोजने अपने त्यागोंके कारण कल्पवृक्षके समान अशेष दुःखोंको त्रासित किया, साक्षात् बृहस्पतिकी नाईं शीघ्रतापूर्वक नाना प्रबंधोंकी रचना की। राधा-वेध (मत्स्य-वेध) करने में वह अर्जुनके समान [सिद्ध] था। इसीलिये बहुत दिनोंसे, उसकी कीर्तिसे उत्सुक-चित्त देवताओंके द्वारा निमंत्रित हो कर वह स्वर्ग गया।

इस प्रकार भोजके अनेक प्रबंध हैं जो परंपराके अनुसार जानने चाहिये।

*

इस प्रकार श्रीमेरुतुङ्गाचार्यरचित प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थका 'श्रीभोजराज और श्रीभीमराजके नाना यशोंका वर्णन' नामक यह दूसरा प्रकाश समाप्त हुआ।

---

८. सिद्धराजादि प्रबन्ध ।

मूलराज कुमारकी प्रजावत्सलताका प्रबन्ध ।

७९) इसके बाद, किसी समय, गूर्जर देशमें अनावृष्टिके कारण जब वर्षा नहीं हुई तो विशोपक (?) दण्डाहि देशके ग्रामोंके कुटुम्बी (कुनबी=किसान) जनोंके राजाका कर (भाग) देनेमें असमर्थ हो जाने पर राजनियुक्त व्यापारियों (कर्मचारियों) ने उस देशके सभी लोगोंको, उनके धन और जनके साथ, पत्तनमें ले आकर राजा भीमके सामने निवेदित किया । एक दिन सवेरे श्री मूलराज कुमारने टहलते टहलते देखा कि राज्यके आदमी फसलका दाण (कर) वसूल करनेके लिये सभी लोगोंको व्याकुल कर रहे हैं । अपने निकटके आदमियोंसे उस सारे वृत्तान्तके जानने पर उसकी आँखोंमें करुणाके कुछ आँसू आ गये । बादमें घुड़दौड़के मैदानमें उसने अपनी अनुपम कला दिखा कर राजाको सन्तुष्ट किया । उसपर राजाने आदेश दिया कि ' वर माँगो ' । उसने [राजाको] सूचित किया कि–' यह वरदान अभी भाण्डागार ही में रखा रहे । राजाने जब कहा कि–' अभी क्यों नहीं कुछ माग लेते ? ' तो उसने कहा कि–' प्राप्ति होनेका कोई प्रमाण दिखाई नहीं देता–इसलिये । ' राजाके उसका अनुरोध पूर्वक खुलासा पूछने पर, उन कुटुंबियोंका लगान माफ कर देनेका उसने वर माँगा । तब हर्षके कारण जिसकी आँखें आँसुओंसे गद्गद् हो गई हैं ऐसे उस राजाने ' ऐसा ही हो ' कह कर ' और भी कुछ माँगो ' यह कहा ।

१२८. केवल अपना ही भरण-पोषण करनेवाले क्षुद्र पुरुष तो हजारों है पर जिसका परार्थ ही स्वार्थ है ऐसा सज्जनोंका अगुआ पुरुष तो [हजारोंमें] कोई एक होता है । वाडव अग्नि समुद्रको अपने दुष्पूरणीय पेटको भरनेके लिये पीता है पर बादल तो पीता है ग्रीष्मके तापसे तपे हुए जगतका सन्ताप दूर करनेके लिये ।

इस प्रकार इस काव्यार्थके भावको समझ कर, अधिक लोभका निग्रह करके फिर और कुछ नहीं माँगा । इस तरह मानोन्नत हो कर वह अपने स्थान पर गया । उसके द्वारा, इस तरह बन्धन-विमुक्त बने हुए वे लोग देवताकी भाँति उसकी पूजा और स्तुति करने लगे । दैववशात् तीसरे ही दिन, उनके सन्तोषकी दृष्टिसे स्तुत होता हुआ [वह राजकुमार] मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग लोकको चला गया । राजा, राजपुरुष और बन्धन-विमुक्त वे सब प्रजाजन उस शोकसागरमें डूब गये जिन्हें [अन्यान्य] समझदार लोगोंने, अनेक प्रकारके बोधवचन सुना सुना कर, कितने ही दिनोंके बाद उनको शोक-विमुक्त किया ।

इसके बाद, दूसरे साल, यथेष्ट वृष्टि होनेके कारण खूब फसल पैदा हुई । इससे वे किसान लोग अत्यन्त हर्षित हो कर, उस वर्षका और बीते हुए वर्षका भी, लगान देनेको तत्पर हुए पर राजाने उसे ग्रहण नहीं किया । तब उन्होंने एक उत्तर-सभाका सम्मेलन किया । सभा और सभ्योंका लक्षण यह है–

१२९. वह सभा ही नहीं जिसमें वृद्ध न हों, और वे वृद्ध नहीं जो धर्मका कथन नहीं करते । वह धर्म नहीं है जिसमें सत्य नहीं और वह सत्य नहीं है जो कल्पितसे अनुविद्ध हो ।

ऐसा [शास्त्र] निर्णय कर सभ्योंने राजासे गत साल और उस सालका लगान ग्रहण करवाया । राजाने उस द्रव्यसे तथा खजानेमेंसे और कुछ द्रव्य मिला कर मूलराज कुमारके कल्याणार्थ नया त्रिपुरुष प्रासाद [नामक शिवमन्दिर] बनवाया ।

८०) इसने पत्तनमें श्री भीमेश्वरदेव और भट्टारिका (पटरानी) भीरुआणीके [नामसे शिवके] प्रासाद बनवाये। संवत् १०७७ से लेकर ४२ वर्ष १० मास ९ दिन राज्य किया। (B P प्रतियोंमें—संवत् १०६५ से आरंभ कर ४२ वर्ष राज्य किया।)

कर्णराजा और मयणल्लादेवीका वृत्तान्त।

८१) उसकी रानीने जिसका नाम उदयमति था [और जो नरवाहनखंगारकी लड़की थी], पत्तनमें एक बहुत बडी नयी वापी (बावडी) बनवाई, जो सहस्रलिंग सरोवरसे भी कहीं अधिक आकर्षक थी।

८२) इसके बाद, सं० ११२० चैत्र वदि ७ सोमवार, हस्त नक्षत्र, मीन लग्नमें श्री कर्णदेवका राज्याभिषेक हुआ।

८३) इधर, शुभकेशी नामक कर्नाटदेशका राजा घोडेसे [जिसको अपने काबूमें न रख सकनेके कारण] उडाया जा कर किसी घने जंगलमें जा पडा। वहाँ पत्र फलसे भरे किसी वृक्षकी छायाका उसने आश्रय लिया। उसके पास ही दावाग्नि लगी। जिस वृक्षने [अपनी छायामें] विश्राम दे कर उपकार किया था उसे, कृतज्ञताके कारण छोड कर चले जानेकी उसकी इच्छा न हुई। और इसलिये, उसीके साथ दावानलमें उसने अपने प्राणोंकी आहुति दे दी। फिर इसके बाद, मंत्रियोंने उसके पुत्र जयकेशीको राज-पद पर अभिषिक्त किया। क्रमशः उसके एक मयणल्लादेवी नामकी पुत्री पैदा हुई। शिवभक्तोंने उसके सामने [किसी समय] ज्यों ही सोमेश्वरका नाम लिया त्यों ही उसको अपने पूर्व जन्मका स्मरण हो आया कि—'मैं पूर्व जन्ममें ब्राह्मणी थी। बारहों मासके उपवास करके प्रत्येकके उद्यापनके समय बारह वस्तुओंका दान किया करती थी। [इसके बाद] श्री सोमेश्वरको प्रणाम करनेके लिये प्रस्थान करके बाहुलोड नगरमें आई। वहाँपर कर देनेमें असमर्थ हो [आगे] न जा सकी। उसीके शोकमें, यह प्रतिज्ञा करके कि 'भविष्य जन्ममें मैं इस करको मिटादेने वाली बनूं'—मर कर इस कुलमें पैदा हुई। ऐसी यह उसे पूर्व जन्मकी स्मृति हुई। इसके अनुसार बाहुलोडके करको हटा देनेकी इच्छासे उसने गूर्जर नरेश जैसे श्रेष्ठ वरकी कामना करके अपने पितासे यह सब वृत्तान्त कहा। जयकेशी राजाने यह व्यतिकर जान कर अपने प्रधान पुरुषोंके द्वारा, श्री कर्णसे अपनी पुत्री श्री मयणल्लादेवीको [पत्नीरूपमें ग्रहण करनेकी] स्वीकृति माँगी। श्री कर्णने जब उसकी कुरूपताकी बात सुनी तो वह उदासीन हो गया। पर उस कन्याका मन उसीमें लगा देख कर पिताने मयणल्लादेवीको उसके यहाँ, स्वयंवरा रूपमें—जिसने स्वयं अपना वर चुन लिया है—उसीके पास भेज दिया। इधर कर्ण गुप्तरूपसे स्वयं ही उसे कुरूपा देख कर उसके प्रति सर्वथा निरादर हो गया। राजाके इस प्रकार त्यागके कारण अपनी आठ सखियोंके साथ मयणल्लादेवीको प्राणत्याग करनेकी इच्छुक जान कर श्री कर्णकी माता उदयमति रानीने, उनकी यह विपद देखनेमें असमर्थ हो कर, उन्हींके साथ प्राणत्यागका सङ्कल्प किया। क्यों कि—

१३० महान् लोग अपनी विपत्तिसे उतने दुःखी नहीं होते जितने दूसरोंकी विपत्तिसे। अपने ऊपर आघात होने पर जो पृथ्वी अचल रहती है वही दूसरोंकी विपद देख कर काँपने लगती है।

इसके बाद महा उपद्रव उपस्थित हुआ जान कर मातृभक्तिवश श्री कर्णने उससे विवाह कर लिया। पर बादमें [बहुत समय तक] उसकी ओर नजर उठा कर ताका भी नहीं।

८४) एक बार मुंजाल मंत्रीको कञ्चुकीसे यह मालूम हुआ कि राजाका मन किसी अधम स्त्रीके प्रति साभिलाष है। [यह जान कर] उसने ऋतुस्नाता मयणल्लादेवीको, उसीका रूप धारण कराके एकान्तमें

उसके पास भेजा। राजाने यह समझ कर कि यह वही स्त्री है, उसके साथ सप्रेम उपभोग किया और उससे उसको गर्भाधान हो गया। फिर उसने सङ्केत बतानेके लिये राजाके हाथसे उसकी नामाङ्कित अँगूठी ले ली और अपनी अँगुलिमे पहन ली। बादमें प्रातःकाल, उस दुर्विलासके कारण राजाको ग्लानि हुई और उस रहस्यमय वास्तविक वृत्तान्तको न जानते हुए उसने प्राणत्याग करनेका संकल्प किया। स्मृतिशास्त्रियोंके, ताँबेकी बनी हुई प्रतप्त मूर्तिके साथ आलिंगन करनेसे इसका प्रायश्चित हो जायगा, ऐसा विधान बतलानेसे राजाने उसी प्रकार करनेकी इच्छा की। तब उस मंत्रीने वह सारी बात जैसी बनी थी वैसी कह सुनाई।

(इस जगह P प्रतिमें निम्नलिखित श्लोक मिलते हैं -)

[८५] [अपने] भारी पराक्रमके कारण तो वह पिता [भीम] के समान हुआ। और रमणीय आकारके कारण वह राजा अपने पुत्र [जयसिंह-सिद्धराज] के समान हुआ।

[८६] विना कर्ण (राजाके) के स्त्री-नेत्रोंको कहीं भी रति (प्रीति) नहीं प्राप्त होती थी इसी लिये उन (स्त्री-नेत्रो) की प्रवृत्ति कर्ण (कान) तक हुई। (अर्थात् इसी लिये मानों स्त्रियोंके नेत्र कानतक लंबे होने लगे।)

[८७] मानों कर्ण और अर्जुनके उस पुराने वैरको स्मरण करते हुए ही, उस कर्णने [अपने] अर्जुन (स्वेत) यशको देशान्तरमें पहुँचा दिया।

सिद्धराज जयसिंहका जन्म।

[८८] जिस प्रकार दशरथके पुत्र मनोहर गुणोसे युक्त श्री राम हुए उसी प्रकार इस [कर्ण] का जगद्विजयी ऐसा जयसिंह नामक पुत्र हुआ।

८५) अच्छे लग्न (मुहूर्त) में पैदा हुए उस पुत्रका नाम राजाने 'जयसिंह' ऐसा रखा। वह बालक जब तीन वर्षका था उसी समय समवयस्क कुमारोंके साथ खेलता हुआ सिंहासनपर आरूढ हो गया। इस बातको व्यवहार विरुद्ध समझ कर राजाने ज्योतिषियोसे पूछा। उन्होंने निवेदन किया कि यह [बड़ा] आभ्युदयिक लग्न है। राजाने उसी समय उस पुत्रका राज्याभिषेक करा दिया।

८६) सं० ११५० पौष वदी ३ शनिवार, श्रवण नक्षत्र, वृष लग्नमें, श्री सिद्धराजका पट्टाभिषेक हुआ।

८७) राजा स्वयं, आशापल्ली नामक ग्रामके रहनेवाले आशा नामक भीलके ऊपर युद्धके लिये चढाई करके गया। भैरव देवीका शुभ शकुन होने पर, वहाँ कोछरब्बा नामक देवीका मंदिर बनवाया [और वहीं शिबिर-निवेश किया] फिर, एक लाख खड्गके अधिपति उस भीलको जीत कर और उस प्रासादमें जयन्ती देवीकी प्रतिष्ठा करके, कर्णेश्वर देवताका मन्दिर और कर्णसागर तालावसे सुशोभित कर्णावती पुरीकी स्थापना कर खुद वहीं राज्य करने लगा। उस राजाने पत्तनमे श्री कर्णमेरु नामक प्रासाद बनवाया।

सं० ११२० चैत्र सुदि ७ से ले कर, सं० ११५० पौष वदी २ तक, २९ वर्ष ८ मास २१ दिन इस राजाने राज्य किया।

सिद्धराजका राज्यवर्णन—लीला वैद्यका प्रबन्ध।

८८) इसके बाद, जब श्री कर्णका स्वर्गवास हो गया तो श्रीमती उदयमति देवीका भाई मदनपाल असमंजस भावसे वर्तने लगा। उसने लीला नामक वैद्यको,—जिसने देवतासे वरप्रसाद पाया था और तात्कालिक नागरिक लोग हृतहृदय हो कर जिसकी काञ्चन-दान आदि पूजा द्वारा अभ्यर्चना किया

करते थे—अपने महलमें बुलाया। शरीरमें बनावटी रोग बतला कर नाडी दिखाई। वैद्यने उपयुक्त पथ्यका सेवन करना बतलाया तो [उस मदनपालने कहा] 'वही तो नहीं है।' और इसीलिये मैंने तुम्हें बुलाया है। [किसी और प्रकारका] पथ्य दे कर भूख शान्त करनेके लिये तुम्हें नहीं [बुलाया है]। इसलिये बत्तीस हजार [रुपये] हाजर करो, यह कह कर उसे बंदी कर लिया। उसने वह सब वैसा करके (अर्थात् उसका मागा हुआ द्रव्य दे-दिला कर) फिर इस तरहका अभिग्रह (नियम) ग्रहण किया कि—'मैं इसके बाद प्रतीकारके लिये राजाका घर छोड़ कर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा'। इसके बाद परम आतुर रोगियोंका प्रस्रवण (पेशाब) मात्र देख कर ही वह उनका निदान और चिकित्सा करता रहा। [एक समय] किसी मायावीने, कल्पित रोगकी चिकित्सा कौशलको जाननेकी इच्छासे एक बैलका मूत्र दिखाया। उसने अच्छी तरह उसे देख कर सिर हिलाते हुए कहा—'यह बैल बहुत खानेके कारण फूल गया है। इसलिये शीघ्र ही इसे तेलकी नाली दो। नहीं तो मर जायगा।' ऐसा कह कर उसने उसके चित्तमें चमत्कार उत्पन्न किया।

एक बार राजाने अपनी गर्दनकी पीडाका प्रतीकार पूछा। उसके यह कहने पर कि, दो पल भर कस्तूरीको भिगो कर लेप करनेसे रोग शान्त होगा, वैसा ही किया गया। गर्दन ठीक हो गई। फिर राजाकी पालकी ढोनेवाले किसी गरीब मनुष्यने ग्रीवा (गर्दन) की पीडाकी दवा पूछी। उससे कहा कि 'करीरकी जड़ घिस कर उसके रसमें उसी जगहकी मिट्टी मिला कर उसका लेप करो।' तब राजाने पूछा कि यह क्या बात है? इस पर उसने बताया कि 'आयुर्वेदज्ञ लोग देश, काल, बल, शरीर और प्रकृति देख कर चिकित्सा किया करते हैं।'

एक बार, कुछ धूर्त एक मत हो कर दो दोकी संख्यामें पृथक् पृथक् हो गये। पहले दोने बाजारके रास्तेमें पूछा कि 'क्या बात है कि आप शरीरसे खिन्न दिखाई देते हैं।' दूसरे दोने श्रीमुञ्जालस्वामी प्रासादके सोपान पर [वही बात] पूछी। तीसरे दोने राजद्वार पर और चौथे दोने द्वारतोरण पर वही बात पूछी। इस प्रकार बार बार पूछनेसे उसे [अपने स्वास्थ्यके विषयमें बड़ी] शंका उत्पन्न हो गई और तत्काल ही उसे माहेन्द्र ज्वर हो गया। [और उससे] तेरहवें दिन वह वैद्य मर गया।

इस प्रकार यह ठ० लीला वैद्यका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

८९) इसके बाद, सान्तू नामक मंत्री, कालकी नाँई अन्यायी उस मदनपालको मारनेकी इच्छासे किसी समय, कर्णके पुत्र—कुमार जयसिंह—को हाथी पर चढ़ा कर राजपाटिकाके बहाने उसके घर ले गया और वहाँ [कुछ तूफान मचवा कर] वीरोंके हाथसे उसको मरवा डाला।

*

उदयन मन्त्रीका प्रबन्ध।

९०) इधर, मरुदेशका रहनेवाला कोई श्रीमालवंशीय वणिक् जिसका नाम 'उदा' था, अच्छा घी खरीदनेके लिये, वर्षाकालकी अँधेरी रातमें कहीं जा रहा था। वहाँ जंगलमें उसने देखा कि कुछ कर्मचारी किसी खेतमें एक क्यारीसे दूसरी क्यारीमें जल भर रहे हैं। उनसे पूछा कि तुम लोग कौन हो। उन्होंने जब कहा कि 'हम फलाँ आदमीके कामुक (हितचिंतक) है' तो उसने पूछा कि मेरे भी कहीं हैं? इस पर उनके यह बताने पर कि 'कर्णावतीमें है' वह सकुटुंब [उस स्थानको छोड़ कर] वहाँ (कर्णावती) पहुँचा। वहाँ पर वायटीय जिन मन्दिरमें [देवदर्शन करते हुए उसको] किसी 'लाछि' नामक एक छिंपिका श्राविकाने, उसे साधर्मिक जान कर प्रणाम किया। उसके यह पूछने पर कि आप किसके अतिथि हैं? [उदाने कहा कि] 'मैं विदेशी हूँ, आप ही का अतिथि समझिए!' यह सुन कर उसने उसको अपने साथ ले जा कर, किसी वणि-

-कूके घर भोजन बनवा कर उसे खिलाया और अपने घरके नीचेके तल्लेमें खाट बिछवा कर रहनेकी जगह दी। कालक्रमसे उसके पास खूब सम्पत्ति हो गई। फिर उसने अपना निजका ईंटोका घर बनवानेकी इच्छा की। उसकी नींव खोदते समय [जमीनमेसे] अपरिमित धन निकल आया। वह उस स्त्रीको बुला कर उस निधिको जब देने लगा तो उसने अस्वीकार किया। उसी निधिके प्रभावसे, वहाँ पर, वह उ द य न मंत्रीके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

९१) [फिर उस धनसे] उसने क र्णा व ती में अतीत, भविष्य और वर्तमानके चौवीस चौवीस जिनोंसे सुशोभित श्री उ द य न वि हा र [नामक मन्दिर] बनवाया।

९२) उसको भिन्न भिन्न मातासे उत्पन्न ऐसे चार पुत्र हुए, जिनके नाम चा ह ड, आ म्ब ड, बा ह ड और सो ला क इस प्रकार थे।

*

सान्तू मंत्रीका प्रबन्ध

९३) एक दूसरे अवसर पर, सा न्तू नामक महामंत्री हाथी पर चढ़ कर राजपाटिकामें जा कर लौटा और अपनी ही बनवाई हुई सा न्तू व स हि का मे देववन्दन करनेकी इच्छासे उसमे प्रवेश करते हुए, उसने, किसी चैत्यवासी श्वेतांबर यतिको, वार-वेश्याके कंधे पर हाथ रखे हुए देखा। मंत्रीने हाथीसे उतर कर उत्तरासङ्ग करके, पञ्चाङ्ग प्रणामके द्वारा, गौ त म मुनिकी भाँति, उसको प्रणाम किया। वहाँ पर क्षणभर ठहर कर, फिर उसे प्रणाम करके, वह चला गया। वह यति तो लाजके मारे मुँह नीचा किये पातालमें गड़ा-सा जाने लगा; और फिर तत्काल सब छोड़-छाड़ कर 'म ल धा री श्री हे म सू रि के पास उपसम्पदा ग्रहण करके, संवेग रससे पूर्ण हो श त्रु ञ्ज य पर्वत पर चला गया और बारह वर्षतक वहाँ तप किया। किसी समय वही मंत्री श्री श त्रु ञ्ज य पर देवचरणोकी यात्राके लिये गया तब वहाँ उस मुनिको अपरिचितकी नाँई देख कर, उसके चरित्रसे मनमे चकित हो कर, उसका गुरुकुल आदि पूछा। 'असलमें तो आप ही गुरु हैं'—उसके ऐसा कहने पर कान बंद करके मंत्रीने कहा – नहीं, नहीं, ऐसा मत कहिये।' असल बात न जाननेके कारण ऐसा कहते हुए उस मंत्रीसे उसने कहा—

१३१. चाहे गृही हो चाहे त्यागी, जो जिसको शुद्ध धर्ममे स्थापित करता है वही उसका धर्मगुरु होता है।

इस प्रकार उसे मूल वृत्तान्त बता कर उसकी धर्ममें दृढ़ता निर्माण की।

इस प्रकार यह मन्त्री सान्तूकी दृढ़धर्मताका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

मयणल्लादेवीका सोमेश्वरकी यात्रा करना।

९४) उसके बाद, श्री म य ण ल्ला दे वी ने, अपने पूर्व जन्मकी स्मृतिके ज्ञानसे जाना हुआ, पूर्वभवका वह वृत्तांत, जब सि द्ध रा ज से कह बताया, तो वह श्री सो म ना थ के योग्य सवा करोड़ मूल्यकी सुवर्णमयी पूजा-सामग्री साथ ले कर यात्राके लिये माताके साथ चला। वह इस प्रकार, बा हु लो ड़ न ग र पहुँची, तो वहां पर, पञ्चकुल – कर वसूल करने वाले राजपुरुष – के द्वारा, कापडी आदि प्रवासी भिक्षुक गण, कर देनेके लिये पीडित किये जा कर, उनकी अवहेलना की गई। वे आँखोंमें, आंसू भर कर पीछे लौटने लगे। म य ण ल्ला दे वी ने जो यह बनाव देखा तो उसके दर्पणसे [स्वच्छ] हृदयमे उनकी पीड़ा संक्रान्त हो गई। वह भी [उनके साथ यात्रा किये बिना] पीछे लौटने लगी। तब सि द्ध रा ज ने बीचमे पड कर कहा—'स्वामिनि! आपका यह कैसा संभ्रम है? आप क्यों पीछे लौट रहीं हैं?' राजाके ऐसा कहने पर [उसने कहा–] जभी यह कर सर्वथा वन्द कर दिया जायगा तभी मै सो मे श्व र को प्रणाम करूँगी, अन्यथा नहीं। और तो क्या, इसके बाद भोजन और पानका भी मुझे नियम है।' यह सुन कर राजाने पञ्चकुलको बुलाया और उसका हिसाब पूछा, तो उसमें ७२

लाखकी आमदनी माफ़ की। राजाने उस करके पट्टेको फाड कर, माताके कल्याणार्थ उस करको उठा दिया और अञ्जलीमें जल ले कर उसकी प्रतिज्ञा की। इसके बाद उस (मयणल्लादेवी) ने सोमेश्वरके पास जा कर उस सुवर्णसे पूजा की, तथा तुलापुरुषदान, गजदान आदि अनेक महादान दिये। रातको वह ऐसे गर्वके साथ कि 'मेरे समान समारमें न कोई हुई और न कोई होने वाली है' गाढी नींदमें सो गई। तपस्वी वेष धारण करके उसी देव (सोमेश्वर) ने [स्वप्नमें प्रत्यक्ष हो कर के] कहा—'यहीं मेरे देवालयमें एक कार्पटिक स्त्री यात्राके लिये आई है। तुम्हे उसका पुण्य माँगना चाहिये। ऐसा आदेश करके जब वह देवता अन्तर्धान हो गये तो [फिर प्रात काल] राजपुरुषोंसे खोज करा कर उस स्त्रीको उसने बुलवाया। उसके पुण्यको माँगने पर भी वह किसी तरह जब देनेको तत्पर न हुई तो उसने पूछा कि 'यात्रामें तुमने क्या [द्रव्य] व्यय किया है?' तो वह बोली कि मैं भीख माँग माँग कर १०० योजन दूरसे, कई देश पार करके, कलके दिन यहाँ देवालयमें आई हूँ। तीर्थोपवास करके, पारणामें किसी सुकृतिके यहाँसे, मैं निर्भागिनी थोडासा पिण्याक (खली) प्राप्त करके, उसके एक टुकडेसे मैंने श्री सोमेश्वरकी पूजा की, एक टुकडा अतिथिको दिया और एक टुकडा स्वय खा कर उपवासका पारणा किया। आप तो वडी पुण्यवती हैं—जिसके पिता, भाई, पति और पुत्र राजा हैं। आपने यह बाहुलोडकर, जो ७२ लाखका था, उठवा दिया है। सवा करोड़ मूल्यकी सामग्रीसे देवकी पूजा कर अगणित पुण्य अर्जन किया है। आप मेरे इस क्षुद्र पुण्य पर क्यों लोभ करती हैं? और यदि क्रोध न करें तो कुछ कहूँ। असलमें तुम्हारे पुण्यसे मेरा पुण्य अधिक है। क्यों कि—

१३२ सपत्ति होने पर नियम करना, शक्ति रहते सहन करना, यौवनावस्थामें व्रत लेना और दरिद्रावस्थामें दान देना,—यह सब बहुत थोडा होने पर भी अधिक पुण्यका कारण होता है।

इस प्रकारके युक्ति-युक्त वाक्यसे उसने उसके गर्वका निराकरण किया।

*

९५) इसके बाद, सिद्धराज जब समुद्रके किनारे खडा हो कर उसको देख रहा था तब एक चारणने आ कर इस प्रकार स्तुति की—

१३३ हे चक्रवर्ती नाथ! तुम्हारे चित्तको तो कौन जानता है, लेकिन मैं समझता हूँ कि हे कर्णपुत्र आप शीघ्र ही लङ्का लेना चाहते हैं और उसीके लिये यहाँ खडे खडे मार्ग देख रहे हैं।

[तब एक] दूसरे चारणने कहा—

१३४ हे जेसल (जयसिंह)! यह समुद्र दौड कर तुम्हारे पैर धो रहा है, इसलिये कि तुमने और तो सब राजाओंको जीत लिया है और सिर्फ एक मेरा विभीषण राजा बाकी रह गया है, सो उसको छोड दीजिए।

*

सिद्धराजका मालवाके साथ सघर्ष।

९६) राजा जब इस प्रकार यात्रामें व्यस्त था, उसी समय मालवाका छलान्वेषी राजा यशोवर्मा गूर्जर देशमें [आ कर] उपद्रव करने लगा। सान्तू मत्रीने पूछा कि 'भर्त्ता, आप कैसे इस चढाईसे निवृत्त हो सकते हैं?' उसने कहा कि 'यदि तुम अपने स्वामीकी सोमेश्वर देवकी यात्राका पुण्य मुझे दे दो तो।' ऐसा कहने पर उस मत्रीने उसके चरण धो कर, उस पुण्यदानके निदानरूप जलको चुल्लूमें ले कर उसके हाथ पर छोड दिया और ऐसा करके उसको [गूर्जर देशसे] वापस लौटाया। [यात्रासे लौट कर] श्री सिद्धराज जब नगरमें आया और मत्री और मालवनरेशके उस वृत्तान्तको सुना तो वह बडा क्रुद्ध हुआ। मत्रीने उससे

[शांत करते हुए] यों कहा—' स्वामिन् ! यदि मेरे देनेसे तुम्हारा पुण्य चला जाता है तो मैं उसका तथा अन्य पुण्यवानोंका पुण्य इसी तरह आपको भी दे देता हूँ। और असलमे तो वात यह थी कि जिस-किसी भी उपायसे शत्रुसेनाको स्वदेशमें प्रवेश करनेसे रोकनी जरूर थी।' ऐसा कह कर उसने नृपतिका अनुनय किया। इसके वाद इसी अमर्षवश उसने मा ल व म ण्ड ल पर चढ़ाई करनेकी इच्छा की। स ह स्र लिं ग [सरोवरादि] धर्म-स्थानके कार्यका जो आरंभ किया गया था उसकी देखरेखका काम मंत्रियों और शिल्पियों (कारीगरों) को सौंपा। वड़ी शीघ्रताके साथ उसका काम चलने पर राजाने युद्धके लिये प्रयाण किया। वहाँ जय-जयकारके साथ वारह वर्ष तक युद्ध होता रहा। फिर भी जव किसी प्रकार धा रा [नगरी] का किला नहीं टूटता दिखाई दिया तो [एक दिन राजाने यह] प्रतिज्ञा की कि धा रा के किलेको तोड़े विना आज अन्न ही न खाऊँगा। सायंकाल हो जाने पर भी ऐसा करनेमें असमर्थ होनेके कारण, सचिवोंने आटेकी वनावटी धा रा वनवा कर और वहाँ पर प र मा र राजपुत्रको अपने सैनिकों द्वारा मरवा कर, उस प्रतिज्ञाका निर्वाह कराया। इस प्रकार प्रपञ्चसे राजाने प्रतिज्ञा तो पूरी की, लेकिन कार्यमे सफलता प्राप्त न होनेसे वापस लौटनेकी अपनी इच्छा मु ञ्जा ल नामक मंत्रीको वताई। उसने अपने गुप्तचरोंको तीन रास्ते, चौराहे और चवूतरे इत्यादिक स्थानो पर भेज कर, धा रा के किलेके भंग होनेकी वातें जाननी चाहीं। लोगोंके परस्पर वार्तालाप करते हुए, धा रा के रहने वाले किसी [जानकार] पुरुषने कहा कि ' दाक्षिण दिशाके दरवाज़ेकी ओरसे शत्रुसेना हमला करे तव ही कहीं धा रा के किलेका तोड़ना सफल हो सकता है, अन्यथा नहीं।' यह वात सुन कर [उन गुप्त चर लोगोंने] मंत्रीको सूचित किया। उसने इस वृत्तान्तको गुप्तरूपसे राजाको विज्ञापित किया। राजाने भी यह वृत्तान्त जान कर उधर ही से सेनाके साथ आक्रमण किया। तो भी दुर्गको वड़ा दुर्गम समझ कर राजा स्वयं ' य शः प ट ह ' नामक अपने प्रधान वलवान् पट्ट हाथी पर चढ़ा। उसके पीछे सा म ल नामक महावत खड़ा रहा। त्रिपोलिया दरवाजेके दोनों किवाडोंको, जिनके अंदर लोहेकी जवर्दस्त अर्गला लगी हुई थी, तोडनेके लिये उस हाथीने अपना सर्व सामर्थ्य खर्च कर दिया। किवाड तो टूट गये लेकिन हाथीकी हड्डी भी साथमें टूट गई। महावतने सि द्ध रा ज को उस परसे उतारा और ज्यो ही वह स्वयं उस पर चढ़नेको उद्यत हुआ त्यों ही वह हाथी पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह हाथी वड़ा वीर होनेके कारण मर कर अपने यशसे धवल हो कर व ड स र ग्राममें य शो ध व ल नाम ग्रहण करके विनायक रूपसे अवतीर्ण हुआ।

१३५. सिद्धिके स्तनरूप शैलके तटदेशके आघातके कारण मानों जिसका दूसरा दांत टूट गया है, वह एक दाँत धारण करनेवाला गजवदन (विनायक) तुम्हारा श्रेय करे।

इस तरह उसकी स्तुति [की जाती] है। इस प्रकार दुर्गका भंग करने पर युद्धमें आरूढ य शो व र्मा को [सन्धि-विग्रहादि] ६ गुणोंसे वाँध कर, उस जगह पर अपनी जगन्मान्य आज्ञाकी उद्घोषणा करवाई और य शो व र्म [राजाको वन्दि वना कर अपने साथमे ले] प त्त न मे आया।

[तव कवियोने ऐसी स्तुतियां पढ़ीं—]

[८९] अरे क्षत्रियो, ऐसा न समझो कि इस सि द्ध रा ज के कृपाणने अनेक राजाओंकी सेनाका नाश किया है इसलिये अव इसकी धार कुंठित हो गई है। नहीं नहीं; प्रवल प्रतापरूप अग्निके ऊपर आरूढ हो कर यह सम्प्राप्तधार (=१ जिसने धा रा नगरीको प्राप्त किया है, २ जिसने तेज़दार धार पाई है) कृपाण चिरकाल तक मा ल व रमणियोका अश्रुजल पी कर और अधिक तेज होगा

[९०] हे महाराज ! आपने शत्रुओके विजय करनेमें दूधकी धाराके समान जो उज्ज्वल यश प्राप्त किया है उसके कारण आपकी तलवार तो उज्ज्वल ही थी पर इन मा ल व - नारियोके काजल [मिश्रित अश्रुजल] पी पी कर, इसने, उसकी महिमा सूचक, यह कालिमा धारण कर ली है।

सिद्धराज और हेमचन्द्राचार्यका मिलन।

९७) प्रति दिन सब दर्शन [के आचार्यो] को आशीर्वाद और दानके लिये बुलाये जाने पर, यथावसर बुलाये गये श्री हेमचन्द्र प्रभृति जैनाचार्य श्री सिद्धराज के पास गये। राजाके दुकूल आदि दे कर उनका सत्कार करने पर, उन सभी अप्रतिम प्रतिमा पूर्ण पंडितों द्वारा दोनों तरह पुरस्कृत हो कर हेमचन्द्राचार्यने राजाको इस प्रकार आशीर्वाद दिया—

१३६ हे कामधेनु! तू अपने गोमयके रससे भूमिका आसेचन कर, हे समुद्रो! तुम अपने मोतियोंसे स्वस्तिक बनाओ, हे चन्द्र! तू पूर्णकुंभ बन जा और हे दिग्गजो! तुम अपने सरल सूडोंसे कल्पवृक्षके पत्ते तोड़ कर उनके तोरण सजाओ — क्यों कि संसारका विजय करके सिद्धराज आ रहा है।

इस प्रकार निष्प्रपंच (सरल) काव्यके विवेचन करने पर उनकी वचन-चातुरीसे चित्तमें चमत्कृत हो कर राजाने [यथेष्ट] प्रशंसा की। इस पर कुछ असहिष्णुओंके — अर्थात् ब्राह्मणोंके — यह कहने पर कि 'हमारे शास्त्रोंके — अर्थात् पाणिन्यादि व्याकरण ग्रंथोंके — अध्ययनके बल पर ही इन (जैनों) की विद्वत्ता है।' राजाने श्री हेमचंद्र आचार्यसे पूछा। [उन्होंने कहा—] प्राचीन कालमें श्री जिनेन्द्र महावीरने अपने शैशव कालमें इन्द्रके सामने जिसकी व्याख्या की थी उसी जैनेन्द्र व्याकरणको हम लोग पढ़ते हैं। उनके ऐसा कहने पर उस पिशुनने कहा कि इन पुरानी बातोंको तो छोड़ दो और हमारे समयके ही किसी तुम्हारे व्याकरण कर्त्ताका पता बता सकते हो तो बताओ। इस पर वे राजासे बोले कि यदि महाराज श्री सिद्धराज सहायक हों तो, मैं ही स्वयं कुछ दिनोंमें ही पंचाङ्ग पूर्ण नूतन व्याकरण तैयार कर सकता हूँ। राजाने कहा— मैंने [साहाय्य करना] स्वीकार किया। आप अपने वचनका निर्वाह करें। ऐसा कह कर उसने सब सूरियोंको विदा किया। वे भी अपने अपने स्थानको गये।

राजाने [पहले ही यह एक] प्रतिज्ञा कर ली थी कि यशोवर्माके हाथमें बिना म्यानकी छुरी देकर और उसको अपने पीछे बिठा कर हाथी पर सवार हो कर हम नगरमें प्रवेश करेंगे। राजाकी इस प्रतिज्ञाको सुन कर मुञ्जाल नामक मंत्री [असंतुष्ट बना और उस] ने प्रधान पद छोड़ दिया। राजाके बार बार कारण पूछने पर

१३७ राजा लोक चाहे संधि [करना] न जाने और विग्रह भी [करना] न जाने, पर यदि वे [मंत्रियोंका] आख्यात (कहा हुआ) ही सुनते रहें तो इसीसे वे पण्डित हो सकते हैं।

इस प्रकारका नीतिशास्त्रका उपदेश है। महाराजने स्वयं अपनी बुद्धिसे जो यह प्रतिज्ञा की है, भविष्यमें वह बिल्कुल ही हितकर न होगी। राजाने प्रतिज्ञाभंग होनेके भयसे भीत हो कर कहा कि 'प्राणोंका त्याग करना अच्छा है। किन्तु विश्वविदित इस प्रतिज्ञाका नहीं।' इस पर मंत्रीने काठकी छुरी बना कर शालवृक्षके पाण्डुरंगके गोंदसे उसे परिमार्जित कर, पीठेके आसन पर बैठे हुए यशोवर्माके हाथमें दी। उसके आगेके आसन पर राजा सिद्धराज बैठा और खूब समारोहके साथ उसने अणहिल्लपुरमें प्रवेश किया।

प्रावेशिक मंगलकी धूमधाम समाप्त हो जाने पर राजाने व्याकरण वृत्तान्तकी याद दिलाई। इस पर बहुतसे देशोंके तज्ज्ञ पंडितोंके साथ सभी व्याकरणोंको नगरमें मंगवा कर श्री हेमचन्द्राचार्यने श्री सिद्धहेम नामक नूतन पंचाङ्ग व्याकरण एक वर्षमें तैयार किया। इसका ग्रंथप्रमाण सवालाख श्लोक था। राजाके निजके बैठनेके हाथी पर उस पुस्तकको रख कर उसका जुलूस निकाला गया। उसके ऊपर श्वेतछत्र लगवाया गया और दो चामरग्राहिणियां चामर ढलने लगीं। इस प्रकार उस ग्रंथकी महिमा करके उसे कोशागारमें रखा। फिर राजाकी

आज्ञासे अन्य व्याकरणोको छोड़ कर लोग सब उसीका अध्ययन करने लगे। इस पर किसी मत्सरीने राजासे कहा कि 'इस व्याकरणमे आपके वंशका तो कोई उल्लेख ही नहीं है।' इससे राजाके मनमें क्रोध हुआ। यह बात किसी राजपुरुषसे जान कर श्री हे मा चा र्य ने [तत्क्षण] बत्तीस श्लोक नूतन निर्माण करके बत्तीस ही सूत्रपादोंके अन्तमें उन्हें संलग्न कर दिया। प्रातःकाल जब राजसभामें व्याकरण बांचा गया तो—

१३८. हरिकी भाँति बलि बंधकर (=१ बलिको बाँधनेवाला, २ बलियोंको बंदी करनेवाला), शिवकी नाँई त्रिशक्तियुक्त, और ब्रह्माकी तरह कमलाश्रय (=१ कमलका आश्रय लेनेवाला, और २ कमला-लक्ष्मीका आश्रय) श्री मू ल रा ज नृपकी जय हो।

इत्यादि, चौ लु क्य वं श की स्तुतिवाले बत्तीस श्लोक बत्तीस सूत्रपादोके अन्तमें आये सुन कर राजा मनमें प्रमुदित हुआ और उस व्याकरणका उसने खूब प्रचार कराया। इसी प्रकार श्री सि द्ध रा ज के दिग्विजय वर्णनमें [हे मा चा र्य ने] **द्व्या श्र य** नामक [काव्य] ग्रंथ बनाया।

[हे मा चा र्य के बनाए इस सिद्ध हैम व्या क र ण के विषयमे विद्वानोने ऐसी उक्तियाँ कही हैं—]

१३९. हे भाई! पा णि नि के प्रलापको बंद करो, का तं त्र का चींथड़ा मत फाडो शा क टा य न के कटु वचनको मत पढ़ो, और क्षुद्र चां द्र व्या क र ण से क्या मतलब है, भलॉ, और क ण्ठा भ र ण आदि व्याकरणोंसे अपने आपको कोई क्यों भुलायेगा, जब कि अर्थमधुर ऐसी श्री सि द्ध हैं म की उक्तियाँ सुननेको मिलती हैं।

९८) इसके बाद, श्री सि द्ध रा ज ने प त्त न में य शो व र्म रा जा को, **त्रि पु रु ष** प्रभृति सभी राजप्रासादों और **स ह स्र लिं ग** प्रभृति धर्मस्थानोको दिखा कर बताया कि—[हमारे राज्यमे] प्रतिवर्ष देवदायमें एक करोड़ द्रव्य व्यय किया जाता है!। और फिर उससे पूछा कि 'यह सुंदर है या असुंदर?'। वह बोला—मैं तो अठारह लाख संख्यावाले (?) मा ल व दे श का राजा हूँ, तो भी मैं तुमसे पराजित कैसे हुआ?। पर यह देश तो पहले ही म हा का ल दे व को अर्पण कर दिया गया है और उसी देवद्रव्यका हम मा ल वी लोग उपभोग कर रहे है; और इसीलिये हमारा उदय और अस्त होता रहता है। आपके वंशवाले राजा भी इतना देवद्रव्य व्यय करनेमे असमर्थ हो कर उसका लोप करेंगे और फिर सारा देवदाय बंद हो जानेपर इसी प्रकार वे विपत्तिग्रस्त हो कर समूल नष्ट हो जायँगे।

*

सिद्धराजका सिद्धपुरमें रुद्रमहालय बनवाना।

९९) इसके पश्चात्, एक बार श्री सि द्ध रा ज ने सि द्ध पु र में रु द्र म हा ल य का प्रासाद बनवाना चाहा। किसी [प्रसिद्ध] स्थपति (कारीगर) को अपने पास रख कर, प्रासादके प्रारंभ होनेके समय उसकी कैलासिकाको—जो उसने किसी साहुकारके यहाँ एक लाखमे बंधक रखी थी—छुड़ा कर उसको दिलवाई। वह बांसकी कमाचियोंकी बनी हुई थी; उसे देख कर राजाने पूछा कि क्या बात है? इस पर उस स्थपतिने कहा कि मैने महाराजकी उदारताकी परीक्षाके लिये ऐसा किया है। फिर उस द्रव्यको राजाकी अनिच्छा रहते हुए भी लौटा दिया। फिर क्रमानुसार २३ हाथ ऊँचा सर्वांगपूर्ण प्रासाद बनवाया। उस प्रासादमे अश्वपति, गजपति, नरपति प्रभृति बड़े बड़े राजाओंकी मूर्तियाँ बनवा कर रखीं और उनके सामने हाथ जोड़े हुए अपनी मूर्ति भी बनवाई। [जिसका आशय यह है कि राजा] उनसे वर माँगता है कि देशका भङ्ग करते हुए भी इस प्रासादका कोई भंग न करें। उस मंदिर पर ध्वजारोपका उत्सव करते समय सभी जैन प्रासादोकी पताकायें उतरवा दी गई। जैसे मा ल व दे श के म हा का ल के मंदिरमे जब वैजयंती चढ़ाई जाती है तब जैन प्रासादोमें ध्वजारोपण नहीं होने पाता।

---

१ यह कलासिका नामका कारीगरका कोई ओजार है जिसका ठीक अर्थ समझमे नहीं आता।

सिद्धराजका पाटनमें सहस्रलिंग सरोवर बनवाना ।

१००) एक बार, सिद्धराजने मालवकमण्डलके प्रति जाना चाहा तब किसी व्यवहारीने [जो उस काममें नियुक्त अधिकारी था] सहस्रलिंग सरोवरके कारखानेके लिये कुछ द्रव्य और भाग माँगा। राजा उसे कुछ भी दिये बिना चला गया। कुछ दिनोंके बाद द्रव्याभावसे उस कामके चलनेमें देरी होते देख, उस व्यवहारी (अधिकारी) ने अपने लड़केसे किसी धनाढ्य पुरुषकी स्त्रीका ताडङ्क (करन फूल) चुरवा लिया, और फिर स्वयं उसके दण्डस्वरूप तीन लाख द्रव्य दे दिया। उससे वह काम पूरा हो गया। यह बात मालवमण्डलमें, वर्षाकालमें ठहरे हुए राजाने सुनी। सुन कर उसे जो आनन्द हुआ उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके बाद वर्षाकालकी घनी वृष्टिसे जब सारी पृथ्वी एक समुद्रकी भाँति जलमय हो गई तो प्रधान पुरुषोंने राजाको बधाई देनेके लिये किसी मरुदेशवासीको भेजा। उसने [जा कर] राजाके सामने विस्तार पूर्वक वर्षाका स्वरूप कहना आरम्भ किया। इसी बीच, उसी समय आया हुआ कोई धूर्त गुजराती जल्दीसे बोल उठा–' महाराज बधाई ! सहस्रलिंग सरोवर [जलसे परिपूर्ण] भर गया है। उसके ऐसा कहनेके साथ ही राजाने उस गुजरातीको अपने शरीरके सारे आभरण दे दिये। वह मरुवासी छींकेसे गिरे हुए मार्जार की भाँति देखता ही रह गया।

१०१) इसके बाद, वर्षा बीतते ही, राजा वहाँसे लौटा। [रास्तेमें] नगर महास्थान (वडनगर) में डेरा डाला और वहाँ बनवाये गए मच-मंडपमें राजसभाकी बैठक की गई। नगरके प्रासादोंमें ध्वज लगे हुए देख कर ब्राह्मणोंसे पूछा कि 'ये कौनसे प्रासाद हैं ?' उन्होंने जब वहाँके जिन और ब्रह्माके मंदिरोंका हाल बताया तो क्रुद्ध हो कर राजाने कहा कि ' जब मैंने गूर्जरमंडलमें, जैन मंदिरोंमें पताका लगानेका निषेध किया है, तो फिर आप लोगोंके इस नगरमें इन जैन मंदिरों पर ये पताकायें क्यों उड़ रहीं हैं ?' उन्होंने कहा कि–' सुनिये, कृतयुगके प्रारंभमें श्रीमहादेवने इस महास्थान की स्थापना करते हुए श्री ऋषभनाथ और श्री ब्रह्मदेवके प्रासाद स्वयं बनवाये और उन पर ध्वजायें चढाईं। सो इन दोनों प्रासादोंका सुकृतियों द्वारा उद्धार होते रहने पर ये चार युग बीत गये। दूसरी बात यह है कि–पहले यह नगर शत्रुञ्जय महागिरिकी उपत्यका भूमि था। क्यों कि नगर पुराणमें भी कहा है कि–

१४० कहा जाता है कि आदिकालमें इस जिनेश्वरके पर्वतकी मूलभूमिका विस्तार पचास योजन था ऊपरकी भूमिका विस्तार दश योजन था और ऊँचाई आठ योजन थी।

कृतयुगमें आदिदेव श्री ऋषभदेवके पुत्र भरत नामक हुए। उन्हींके नामसे यह 'भरतखण्ड' प्रसिद्ध हुआ।

१४१ नाभि और [उनकी पत्नी] मरुदेवीके पुत्र श्री वृषभ (ऋषभ देव) हुए जिन्होंने समदृक् हो कर मुनियोग्य चर्याका आचरण किया। वे स्वच्छ, प्रशान्त अन्त करण, समदृक् और सुधी थे। ऋषिगण उनके अर्हत पदको मानते हैं।

१४२. मरुदेवीके गर्भसे नाभिके (श्री ऋषभदेव) पुत्र हुए जो अष्टम [विष्णुके अवतार स्वरूप] थे और सब आश्रमसे नमस्कृत थे। जिन्होंने धीरोंको अथवा वीरोंको [मोक्षका] मार्ग दिखाया।

(यहा P प्रतिमें निम्नलिखित–अनुवादवाले–श्लोक अधिक पाये जाते हैं–)

[९१] स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत नामक हुए, उनके पुत्र हुए अग्नीन्ध्र, उनके नाभि और उनके पुत्र ऋषभ।

[९२] मोक्षधर्मका विधान करनेकी इच्छासे वा सु दे व ही अंशरूपसे अवतीर्ण हुए हैं, यह बात उनके विषयमें [मुनियोंने] कही है। उनके सौ पुत्र हुए जो सभी ब्रह्मपारंगत थे।

[९३] उनमें सबसे ज्येष्ठ भ र त थे जो नारायणके भक्त थे। जिनके नामसे यह अद्भुत ऐसा भा र त व र्ष विख्यात हुआ।

[९४] अर्हन्, शिव, भव, विष्णु, सिद्ध, बुध, परमात्मा, और पर—ये सभी शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं।

[९५] मनीषियोने जैन, बौद्ध, ब्राह्म, शैव, कापिल और नास्तिक इन छहोंको दर्शन कहा है।

[९६] उसमे, इन सबके कुलके आदि बीज वि म ल वा ह न है। म रु दे व और ना भि ये भ र त खं ड में कुल-सत्तम (कुलश्रेष्ठ) हुए।

इत्यादि पुराण वाक्योंको सुना कर, विशेष विश्वासके लिए श्रीवृषभदेवके मन्दिरके भण्डारमेंसे, राजा भ र त के नामसे अंकित, पाँच आदमियों द्वारा उठाये जाने लायक काँसेका बड़ा ताल ले आ कर राजाको ब्राह्मणोंने दिखाया। और इस प्रकार जैनधर्मका आदिधर्म होना उन्होंने सिद्ध किया। इसके बाद खेदसे मनमें खिन्न हो कर राजाने, एक वर्षके बाद, जैन मंदिरों पर पुनः ध्वजारोपण करवाये।

१०२) तदुपरान्त, प त्त न में पहुँचने पर राजाको जब सरोवरके खर्चका हिसाब बताया गया तो व्यवहारीके उस अपराधी पुत्रसे दण्डस्वरूप तीन लाख लिये जानेकी भी बात सुनी। वह तीन लाख उसके घर भिजवा दिया। इसके बाद वह व्यवहारी राजाके लिये हाथमें भेंट ले कर उसके समीप आया और बोला कि ‘यह आपने क्या किया?’ तब फिर उस कर्मस्थायके अधिकारी व्यवहारीसे राजाने कहा—‘जो व्यवहारी कोटीध्वज है वह ताडङ्कका चोरनेवाला कैसे हो सकता है? तुमने इस धर्मस्थानके बनवानेमें कुछ धर्मभाग मांगा था, लेकिन उसके न मिलने पर प्रपञ्चमें चतुर—तथा मुँहसे मृग और भीतरसे व्याघ्रकी वृत्तिवाले, ऊपरसे खूब सरल और अंतरसे शठभाववाले मनुष्यकी तरह—तुम्हीने यह कर्म (ताडङ्ककी चोरी) करवाया है।’ [इस प्रकारकी और भी कितनी ही बातें कह कर उसे खूब लज्जित किया।]

१४३. जिस सरोवरके भीतर, शिवके मन्दिरके दीपक प्रतिबिंबित हो कर पातालमें सर्पोंके सिरपरके मणियोंकी भाँति शोभा पाते हैं।

१४४. सि द्ध रा ज के इस सरोवरके शोभित रहते, मेरा मन मानसरोवरमें नहीं रमता, पम्पा सर उसक आनंद सम्पादन नहीं करता और अच्छोद सरोवर, जिसका जल बहुत ही अच्छा है, वह भी असार (जान पड़ता) है।

*

एक बार श्री सि द्ध रा ज ने रा म च न्द्र [कवि] से पूछा ‘ग्रीष्म ऋतुमें दिन क्यो बड़े होते हैं?’ रा म च न्द्र ने कहा—

[९७] हे श्री गि रि दु र्ग के मल्ल महाराज! आपके दिग्विजयके उत्सवमें दौड़ते हुए वीरोंके घोडोंकी टापूसे पृथ्वीमण्डल खोद डाला गया है और हवासे उड़ी हुई उसकी धूलने जा कर आकाशगंगामें मिल कर उसे पंकस्थलीके रूपमें परिणत कर दिया है। इससे उसमें दूर्वा उग गई है और उसे सूर्यके घोड़े चरने लग गये हैं। इसी लिए यह दिन बडा हो गया है।

[९८] मार्गणोंने तुम्हारे शत्रुओंके पास लक्ष (निशाना) पा लिया है और तुम्हारे पास वे विलक्ष (निशानेसे रहित) हो कर रहे हैं। फिर भी हे सिद्धराज! तुम्हारा 'दाता'पनका जो यश है वह ऊपर सिर उठाये रह रहा है—बढ़ता चला जाता है।

*

इसके बाद, एक बार राजाने प्रथिलाचार्य जयमङ्गल सूरिसे नगरवर्णन करनेको कहा। उन्होंने कहा—

[९९] मालूम होता है कि इस नगरीकी नागरिकाओंके चातुर्यसे निर्जित हो कर सरस्वती देवी है सो हक्की-बक्की-सी हो कर अपनी कच्छपी नामक वीणाको अपने बाहुमे उतार कर यहाँ पर छोड़ दी है और स्वयं पानी वहन करने लगी है। उसकी इस वीणाका यह सहस्रलिंग सरोवर तो मानों तुंबा है और कीर्तिस्तंभ मानों उसका उच्च दण्ड है।

१०३) इसके बाद, जब श्रीपाल कविकी रची हुई सहस्रलिङ्ग सरोवरकी प्रशस्ति, पट्टिका पर लिखी गई तो उसके संशोधनके लिये सर्व दर्शनके (आचार्योंके) बुलाये जाने पर श्रीहेमचन्द्राचार्यने [अपने प्रधान शिष्य] रामचन्द्र पण्डितको यह कह कर भेजा कि 'प्रशस्ति काव्य जो सभी विद्वानोंको अनुमत हो तो उसमें अपना कुछ भी पाण्डित्य मत दिखाना।' फिर उन सब विद्वानोंने प्रशस्ति काव्यको शोधनेकी दृष्टिसे पढ़ा और राजाके अनुरोधसे तथा श्रीपाल कविके चतुरतापूर्ण पाण्डित्यसे प्रसन्न हो कर सारे काव्यको मान्य किया। उसमें भी उन सभीने निम्नलिखित काव्यकी विशेष प्रशंसा की—

१४५ "कोशसे युक्त होते हुए भी तथा दल (१ पत्ता, २ सेना) से समृद्ध हो कर भी यह कमल अपने कण्टकोंके समूहको उच्छिन्न करनेमें असमर्थ है और इसके अतिरिक्त पुंस्त्व भी नहीं धारण करता। (कमल शब्द पुंल्लिंग नहीं है) [दूसरी ओर सिद्धराजका जो कृपाण है] यह अकेला ही बिना कोश-(म्यान) के भी भूतलको निष्कण्टक कर रहा है, ऐसा समझ कर लक्ष्मीने [अपने उस निवासस्थान रूप] कमलको छोड़ कर इसके कृपाणका आश्रय लिया है।

इस विषयमें श्रीसिद्धराजने रामचन्द्रसे खास पूछा तो उसने कहा कि 'यह कुछ सदोष है।' उन सभी पंडितोंसे पूछे जाने पर [उसने कहा कि] 'इस काव्यमें सेनाका वाचक 'दल' शब्द और कमल शब्दका 'नित्यक्लीबत्व' ये दो दोष चिन्तनीय हैं। तब उन सभी पंडितोंसे अनुरोध करके राजाने 'दल' शब्दको तो सेनाके अर्थमें प्रमाणित कराया। किन्तु कमल शब्दका 'नित्यक्लीबत्व' जो लिङ्गानुशासनसे असिद्ध है उसे कौन प्रमाणित कर सकता। इसलिये 'पुंस्त्वं च धत्ते न वा' (कभी पुंस्त्व धारण करता है, कभी नहीं) इस प्रकार इस पदमें अक्षरभेद कराया [जिसमे वह अशुद्धि दूर हो गई]। उस समय रामचन्द्रको सिद्धराजका दृष्टिदोष लगा और वह ज्यों ही वसतिमें प्रवेश करने लगा त्यों ही उसकी एक आँख नष्ट हो गई।

*

१ इस श्लोकमें 'मार्गण' और 'लक्ष' शब्द पर श्लेष है। 'मार्गण' का एक अर्थ है बाण और दूसरा अर्थ है मगन=याचक। 'लक्ष' का एक अर्थ है लाख संख्या परिमित द्रव्य और दूसरा अर्थ है लक्ष्य=निशाना। मार्गणका अर्थ जब बाण ऐसा विवक्षित है तब उसके साथ लक्षका अर्थ निशाना लेना होगा, और जब मगन=याचक ऐसा अर्थ अपेक्षित होगा तब लक्षका अर्थ लाख द्रव्य लेना होगा। सिद्धराजके मार्गण याने बाण विपक्ष याने शत्रुके पक्षमें लब्धलक्ष्य–निशाना प्राप्त करनेवाले – होते हैं, कभी व्यर्थ नहीं जाते, और वे ही बाण (शत्रुके फेंके हुए) सिद्धराजके पक्षमें विलक्ष–लक्ष्यभ्रष्ट हो कर रह जाते हैं। इसके विपरीत, मार्गण याने याचक लोक हैं वे सिद्धराजके पास लब्धलक्ष याने लाखोंका द्रव्य प्राप्त करते हैं और शत्रु पक्षवालोंके पास विलक्ष याने विगतलक्ष–बिनाही प्राप्तिके रह जाते हैं।

१०४) किसी समय, सान्धिविग्रहिकों द्वारा डा ह ल दे श के राजाका निम्न लिखित श्लोक, जो यमल पत्र (मित्रताका संबंध सूचक पत्र) पर लिखा हुआ था, सुनाया गया—

१४६. आ-युक्त हो कर लोकमें प्राणदान करता है, वि-युक्त हो कर मुनियोंको प्रिय होता है, सं-युक्त हो कर सर्वथा अनिष्ट कारक बनता है और केवल—अकेला होने पर स्त्रियोंका प्रिय बनता है।

राजाने पूछा कि 'इसमें क्या बात है?' उन्होंने कहा—'आपके देशमें एक-से-एक प्रधान ऐसे बहुतसे विद्वान् रहते हैं। सो उनसे इस दुर्बोध्य श्लोककी व्याख्या कराइये।' उनकी यह बात सुन कर सभी विद्वान् उसका अर्थ सोचने लगे पर किसीकी समझमें नहीं आया। राजाने आचार्य हे म च न्द्र से पूछा। उन्होंने इस प्रकार व्याख्या की—'इसमें 'हार' शब्दका अध्याहार है। उसके साथ 'आ' उपसर्गका योग होनेसे 'आहार' बनता है जो सब जीवोंको प्राण देता है। 'वि' उपसर्गके योगसे 'विहार' बन कर दोनों तरहसे यतियोंका प्रिय होता है। 'सं' के योगसे 'संहार' बनता है जो सर्वथा अनिष्ट लगता है और बिना किसी उपसर्गके स्त्रियोंका प्रिय आभूषण गलेका 'हार' होता है।'

*

१०५) एक दूसरी बार, स पा द ल क्ष देशके राजाने

'उगी हुई चन्द्रकला तो गौरीके मुखकमलका अनुहार नहीं कर सकती।'

इस प्रकारकी समस्यावाला आधा दोहा यहाँ पर (पा ट न में) भेजा। अन्यान्य उन कवियोंके उसकी पूर्ति न करने पर

'(और) जो न देखी गई वैसी प्रतिपदाकी चन्द्रकलाकी उपमा दी कैसे जाय।'

इस प्रकारका उत्तरार्द्ध कह कर मुनीन्द्र हे म च न्द्र ने उसको पूर्ण किया।

*

सिद्धराजका सौराष्ट्रके राजा खंगारको विजय करना।

१०६) श्री सि द्ध रा ज ने, न व घ ण नामक आ भी र राणाका निग्रह करनेमें, पहले ग्यारह बार अपनी सेनाका पराजित होना जान कर, व र्द्ध मा न (व ढ वा ण) आदि नगरोंमें बड़े बड़े प्राकार बनवा कर, स्वयम् ही उसके लिये प्रयाण किया। उस (न व घ न) के भागिनी पुत्रने [किलेका रहस्य आदि बतलानेवाले] संकेत देते समय यह वचन लिया था कि 'किलेका कब्जा करते समय इस न व घ न को सिर्फ द्रव्यमारसे मारना (अर्थात् भारी दण्ड दे कर द्रव्य वसूल करना), लेकिन किसी शस्त्रके मारसे नहीं मारना।' [राजाके किल सर कर लेने पर] उस न व घ न को उसकी स्त्रीने कहीं अन्दर छुपा दिया जिसको राजाने उस विशाल महलमेंसे बहार खींच निकाला और धनके भरे हुए बर्तनोंसे उसे पीट पीट कर मार डाला। उसकी स्त्रीको यह कह कर कि 'इसको हमने द्रव्यके मारसे ही मारा है' अपने वचनका पालन बतलाया और उसे शांत किया।

शोकसे निमग्न उसकी रानी [सू न ल दे वी] के ये वाक्य कहे जाते है—

१४८. वह राणा स्वघरमें नहीं है। न कोई उसे लाया है, न कोई लायेगा। खं गा र के साथ मैं स्वयं अपने प्राण अग्निमे क्यों न होम दूँ।

१४९. और सब राणा तो बनिये है और उनमें यह जे स ल (ज य सिं ह) बडा सेठ है। हमारे गढके नीचे इसने यह कैसा व्यौपार मांड रखा है।

१५०. हे गौरवशाली गि र ना र तेंने क्यों मनमें मत्सर धारण कर लिया है? खं गा र के मरने पर तेंने अपना एक शिखर भी नहीं गिराया।

[१०१] हे गरवा गिरनार ! तुम पर वारि जाती हूँ । [खगारके लिये] लवा बुलावा आया है। इसके जैसा मारक्षम (समर्थ) सजन फिर दूसरी बार तुझे नहीं मिलेगा ।

[१०२] मुझको इतने-ही-से सतोष होगा, जो प्रभु (स्वामी) के पगोंमें [मेरा भी शरीर अग्निद्वारा] प्रदीप्त हो । न मुझे रानीपनकी चाहना है, न रोष है। ये दोनों खगार के साथ चले गये।

[१०३] हे मन ! अब तबोल मत माँगो, खुले मुँह मत झाको । देउलवाडे के सग्राममें खगार के साथ वह सब चला गया है।

[१०४] हे जेसल ! मेरी बाँह मत मोडो और बारबार निरूप भाव न बताओ । नरघनके विना नदीमें नया प्रवाह नहीं आता ।

[१०५] हे वढवाण ! मैं तुझसे क्या उड्ड-भूल जाना चाहती हूँ लेकिन भूल नहीं सकती। हे भोगावा (वढवाणके पासकी नदी) तेंने सोनाके समान प्राणोंका भोग लिया।

इस प्रकारके बहुतसे वाक्यें [कहे जाते] हैं। वे यथाप्रसग जानलेने योग्य है।

१०७) इसके बाद, मह० जाम्बके वशज दण्डाधिपति सजन की योग्यता देखकर उसे सुराष्ट्र देश का प्रबन्धक (गवर्नर) नियुक्त किया । उसने स्वामीको विना सूचन किये ही, तीन वर्षके वसूल किये हुए [राजकीय] द्रव्यसे श्री उज्जयन्त (गिरनार) पर्वत पर स्थित नेमिनाथके काठके बने हुए जीर्ण मन्दिरको उखाड कर उसके स्थानमें नया पथरका मन्दिर बनवाया । चौथे वर्ष चार सामतोंको भेज कर राजाने सज्जन दण्डाधिपतिको पत्तनमें बुलवाया । उससे [पिछले] तीन वर्षका वसूल किया हुआ द्रव्य माँगने पर, साथमें लाये हुए उसी देशके व्यवहारियोंसे उतना ही धन ले कर देता हुआ वह बोला – 'महाराज ! श्री उज्जयन्तके मदिरके जीर्णोद्धारका पुण्य अथवा यह धन इन दोनोंमेंसे चाहे सो एक ले लें । ' उसके ऐसा बताने पर उसकी अतुलनीय बुद्धिसे चित्तमें चमत्कृत हो कर सिद्धराज ने तीर्थोद्धारका पुण्य लेना ही स्वीकार किया । वह सज्जन फिर उसी देशका अधिकार पा कर, उसने शत्रुजय और उज्जयन्त इन दोनों तीर्थोंमें उनके बीचके बारह योजन विस्तृत अतरके जितना ही लवा दुकूलका बना हुआ महाध्वज चढ़ाया ।

इस प्रकार यह रैवतकोद्धार प्रबन्ध समाप्त हुआ ।

*

सिद्धराजका शत्रुंजयकी यात्रा करना ।

१०८) इसके बाद, एक बार फिर सोमेश्वरकी यात्रा कर वापस लौटते समय श्री सिद्धराजने, रैवतकगिरिकी उपत्यकामें डेरा डाल कर, अपना कीर्तन (मदिरादि धर्मस्थान) देखना चाहा । उसी समय मत्सरपरायण ब्राह्मणोंने यह कह कर पिशुनवाक्योंसे उसे रोका कि 'यह पर्वत सजलाधार लिंगके आकारका है, इसलिये इसे पैरोंसे स्पर्श करना उचित नहीं है । ' राजाने वहाँ पर पूजा भिजवा कर प्रस्थान किया और शत्रुञ्जय महातीर्थके पास आ कर पड़ाव डाला । वहाँ पर भी उन्हीं निर्दय चुगलखोर ब्राह्मणोंने हाथमें कृपाण ले कर तीर्थ पर जानेका मार्ग रोका । उनके ऐसा करने पर श्री सिद्धराजने सवेरा होनेके पहले ही, कापड़ीका वेष बना कर, और जिसके दोनों ओर गगाजलके पात्र रखे हुए हैं ऐसी वहगी कधे पर रख कर, खुद इन ब्राह्मणोंके वीचमें हो कर पर्वत पर चढ़ गया । किसीने उसके स्वरूपको नहीं जाना । [ऊपर जा कर] गगाजलसे श्री युगादि देव (ऋषभनाथ) को स्नान कराया और पर्वतके पासके बारह गाँवोंका शासन उस

१ ये जो वाक्य ऊपर अनूदित किये गये हैं, उनमेंका कितनाक कथन अस्पष्ट और अस्फुटार्थक है । जो अर्थ यहा पर दिया गया है वह निर्भ्रान्त है ऐसा नहीं कह सकते ।

देवको दान कर दिया। तीर्थका दर्शन कर वह उन्मुद्रित-लोचन हुआ और अमृताभिषिक्त होनेकी नाँई खडा रह गया। [पर्वतकी रमणीयता देख कर] सोचने लगा कि 'इस सल्लकी-वन और नदियोंसे परिपूर्ण पर्वत पर, यहीं, [नये] विंध्यवनकी रचना करूँगा' – इस प्रकारकी जो सफल प्रतिज्ञा [पहले की थी और तदनुसार] हाथियोंका झुंड पानेके लिये जो मेरा मन बेहाथ हो गया था, उस मनोरथसे मैंने इस तीर्थकी पवित्रताका ध्वंस करनेवाला मानस पाप किया है और इसलिये मुझ पापीको धिक्कार है।' इस प्रकार श्री देव-पादके सामने राजलोक द्वारा विदित अपने आपकी निंदा करता हुआ वह आनंदके साथ पर्वत पर से नीचे उतरा।

*

वादी श्रीदेवसूरिका चरित्रवर्णन।

१०९) अब यहाँ पर देवसूरिका चरित्र वर्णन करेंगे। – उस अवसर पर कुमुदचंद्र नामक दिगम्बर [विद्वान्] भिन्न भिन्न देशोंके चौरासी वादियोंको वादमें जीत कर, कर्णाटक देशसे गूर्जर देशको जीतनेकी इच्छासे कर्णावती नगरमें आया। वहाँ भट्टारक श्री देवसूरि चतुर्मास करके रहे हुए थे। एक वार श्री अरिष्टनेमिके मंदिरमें जब वे धर्मशास्त्रका व्याख्यान कर रहे थे तो उस दिगंबरके साथी पंडितोंने उनकी वह अनुच्छिष्ट (मौलिक, विशुद्ध) वाणी सुनी। उन्होंने जा कर वह वृत्तान्त कुमुदचन्द्र से कहा तो उसने उनके उपाश्रयमें तृणके साथ जल प्रक्षेप कराया। पर, खण्डन, तर्क आदि प्रमाण शास्त्रोंमें प्रवीण ऐसे उस महर्षि पंडितने जब इस पर कुछ ध्यान न दे कर उसकी अवज्ञा की, तो उस दिगम्बरने श्री देवाचार्य की बहन तपोधना शीलसुन्दरी को चेटकाधिष्ठित करके, नाच, जलानयन आदि अनेक विडंबनाओंसे उसे विडंबित किया। चेटक (टोना आदि) के दूर होने पर वह जब स्वस्थ हुई तो उस उत्कट पराभवसे दुःखित हो कर वह अपने आचार्यकी खूब भर्त्सना करने लगी। उसे रोक कर आचार्य चिन्तामग्न हो रहे।

(यहाँ पर P प्रतिमें इस विषयके निम्नलिखित पद्य पाये जाते हैं–)

[१०३] हा! मै किसके आगे पुकार करूँ? मेरे प्रभु तो कर्णरहित हैं। इनसे तो वह सुगत (बुद्ध) देव ही अच्छा है जो अपने शासनका तिरस्कार होने पर [उसका प्रतिकार करनेकी इच्छासे] अवतार धारण करता है।

[साध्वीके इस वाक्यको सुन कर आचार्य मनमें सोचने लगे–]

[१०४] आः! गुरुजनके प्रमाणोंकी व्याख्याका श्रम मेरे पास केवल उनके कंठके सुखा देने भरका पुष्ट फल देनेवाला मात्र हुआ–गुरुओका मुझे पढ़ानेके लिये किया गया परिश्रम व्यर्थ ही हुआ!–जो मैं उनके शासन (धर्म संप्रदाय) के प्रति की गई इस प्रकारकी विडंबनाओंके डंबरको शान्त मनसे सुन रहता हूँ।

[देवसूरिके द्वारा कही गई यह उक्ति सुन कर उस श्रेष्ठ आर्याने कहा–]

[१०५] दुष्ट वादियोंके निर्दलनमें अंकुश जैसी श्री देवी, जो श्वेताम्बरोंके अभ्युदयके लिये मंगलमयी कोमल दुर्वा जैसी है, गुरुवर श्री देवसूरि के ललाट पट्ट पर प्रथमावतारकी स्थिति लावे।

श्री देवसूरि ने [दिगम्बर विद्वान्से] कहा–'वादविद्याविनोद (शास्त्रार्थ-विनोद) के लिये आप पत्तन चलें। वहाँ राज-सभामें आपके साथ वाद करेंगे।' उनके ऐसा आदेश करने पर वह दिगंबर अपने आपको कृतकृत्य मानता हुआ पत्तनको पहुँचा। [उसका आना सुन कर] श्री सिद्धराजने, जिसके मातामहका वह विद्वान् गुरु था, सामने जा कर उसका योग्य सत्कार किया। वह वहीं डेरा डाल कर ठहरा। सिद्धराजने

श्री हे मा चा र्य से वादमें निष्णात ऐसे आचार्यकी बात पूछी। उन्होंने चारों विद्याओंमें परम प्रवीणता प्राप्त, जैन मुनिरूप हाथियोंके यूथपति, श्वेतांबर शासनके लिये वज्रके प्राकार जैसे मानेजानेवाले, राजसभाके शृंगारहार, क र्णा व ती में [चातुर्मास] रहे हुए, वादविद्याके पारगामी, वादिहस्तियोंके लिये सिंहस्वरूप श्री दे वा चा र्य को बताया। इसके बाद उनको बुलानेके लिये, श्री संघके लेखके साथ राजाकी विज्ञप्तिका वहां पहुंची। उसे पा कर दे व सू रि प त्त न में आये और राजाके अनुरोधसे वाग्देवीकी आराधना की। उस देवीने आदेश दिया कि– 'वाद करते समय, वा दि वे ता ली य श्री शा न्ति सू रि विरचित उ त्त रा ध्य य न बृ ह द्वृ त्ति में उल्लिखित दिगंबर वादस्थल विषयक चौरासी विकल्प जालका उपन्यास करके, उसे प्रपंचित करोगे तो दिगंबरके मुखमें मुद्रा लग जायगी।' देवीके इस आदेशके बाद, गुप्त भावसे कु मु द चं द्र के पास पंडितोंको यह जाननेके लिये भेजा कि किस शास्त्रमें इसकी विशेष कुशलता है। उनके द्वारा उसकी यह निम्न लिखित उक्ति सुनी–

१५३ हे देव! आदेश कीजिये मैं सहसा क्या करूं? लंकाको यहीं ले आऊं, या जंबूद्वीपको यहाँसे ले जाऊं? क्या समुद्रको सुखा दूं, या उस उच्च पर्वतको, जिसकी चोटीका एक पत्थर कैलास है, उसे खेल-ही-में उखाड कर समुद्रको बाँध दूँ, कि जिसके प्रक्षेपसे क्षुब्ध हो कर समुद्रका पानी बह जाय।

इस उक्तिको सुन कर, श्री दे वा चा र्य और श्री हे मा चा र्य दोनों उसकी सिद्धान्तविषयक बहुत अल्प कुशलता समझ कर उसे अपने मनमें 'जीत लिया, जीत लिया' ऐसा मान बडे प्रसन्न हुए। इसके बाद दे व सू रि आचार्यका प्रधान शिष्य र त्न प्र भ, प्रथम रात्रिमें गुप्त वेष करके कु मु द चं द्र के डेरेमें गया। उसने (कुमुदचंद्रने) पूछा कि–'तुम कौन हो?', 'मैं देव हूँ', 'देव कौन?', 'मैं', 'मैं कौन?', 'तुम कुत्ते', 'कुत्ता कौन?', 'तुम', 'तुम कौन?', 'मैं देव', ['तुम कहाँसे आये?', 'स्वर्गसे' 'स्वर्गमें क्या बात चल रही है?', 'कुमुदचन्द्रका सिर ९५ पल है', 'इसमें प्रमाण क्या है?' 'काट कर तौल लो'] इस प्रकारकी उसकी उक्ति-प्रत्युक्तिके बंधनमें जब वह चाककी तरह चक्कर खाने लगा, तो अपनेको देव और दिगम्बरको श्वान बना कर, जैसे गया था वैसे ही लौट आया। [पीछेसे] उस चक्रदोषको ठीक ठीक समझा तो मनमें अतिशय विषण्ण हो कर, इस प्रकारकी उचित कविता बना कर उस मायावी कु मु द च न्द्र ने दे व सू रि के पास भेजी–

१५४. अरे श्वेताम्बरो! इस प्रकारके विकटाटोप वचनोंके द्वारा, संसार वृक्षके अतिविकट कोटरमें, इस मुग्ध जन-समूहको क्यों गिराते हो? यदि तत्त्वातत्त्वके विचारमें आप लोगोंको थोडीसी भी कामना हो तो सचमुच ही कु मु द च न्द्र के दोनों चरणोंका रात-दिन ध्यान किया करो।

इसके बाद श्री दे व सू रि के चरणका परम परमाणु (विनीत शिष्य), बुद्धिवैभवसे चा णा क्य का भी उपहास करनेवाले पंडित मा णि क्य ने निम्नलिखित श्लोक उसके पास भेजा–

१५५ अरे! वह कौन है जो सिंहके केसजालको पैरोंसे छूना चाहता है? वह कौन है जो तेज भालेकी नोकसे अपनी आँख खुजालना चाहता है? वह कौन है जो नागराजके सिर परकी मणिको अपनी शोभाके लिये उतारना चाहता है? जो यह करना चाहता है वही वंदनीय ऐसे श्वेतांबर शासनकी निन्दा करना चाहता है।

फिर र त्ना क र पंडितने भी इस श्लोकको कु मु द चं द्र के पास उपहासके सहित भेजा–

१५६ नग्नों (दिगम्बरों) ने जो युवतियोंकी मुक्तिका निरोध किया है इसमें क्या तत्त्व है वह तो प्रकट ही है। फिर वृथा ही कर्कश तर्कके लिये यह अनर्थमूलक अभिलाषा क्यों करते हो?

श्री हे म चं द्रा चा र्य ने सुना कि श्री म य ण ल्ला देवी कु मु द चं द्र की पक्षपातिनी है और सभाके अपने संपर्कवाले सभ्योंसे उसकी जयके लिये नित्य अनुरोध कर रही है, तो उन्होंने, उन्हीं सभासदोंसे यह वृत्तान्त कहलवाया कि 'वादस्थल पर दिगंबर लोक तो स्वीकृत सुकृत्यको अप्रमाणित करेंगे और श्वेताम्बर प्रमाणित करेंगे।' यह सुन कर रानीने व्यवहारवहिर्मुख उस दिगंबर परसे अपना पक्षपात हटा लिया।

इसके बाद, भाषोत्तर (वादका विषय) लिखानेके लिये कु मु द चं द्र तो पालकीमें बैठ कर, और पण्डित र त्न प्र भ पैदल ही चल कर, राजाके अक्षपटल (न्यायविभाग) कार्यालयमें आये। वहांके अधिकारियोंको कु मु द चं द्र ने अपनी यह भाषा (वादके विषयमें निजकी प्रतिज्ञा) लिखवाई–

१५७. केवली होने पर [मनुष्य] भोजन नहीं करता, चीवर सहित [मनुष्य] निर्वाण नहीं पाता और स्त्रीजन्ममें मुक्ति नहीं मिलती।

श्वेतांबरोंका इसके विरुद्ध यह उत्तर था–

१५८. केवली होने पर भी [मनुष्य] भोजन करता है, सचीवर [मनुष्य] को भी निर्वाण मिलता है, और स्त्रीजन्ममें भी मुक्ति होती है – यह दे व सू रि का मत है।

इस प्रकार भाषा और उत्तर लिख लेनेके अनंतर वादका स्थान और समय निर्णीत हुआ। उसमें सि द्ध रा ज के सभापतित्वमे, षड्दर्शन-प्रमाणको जाननेवाले सभ्यलोग जब उपस्थित हुए तो, तो सुखासन (पालकी) में बैठ कर, सिरपर श्वेत छत्र धारण किये हुए और जयडिंडिम बजाते हुए, वादी कु मु द च न्द्र ने सभामें प्रवेश किया। उसके आगे बाशके सिरेपर, उसके प्राप्त किये हुए जयपत्र लटक रहे थे। सि द्ध रा ज ने उसके बैठनेके लिये सिंहासन दिलवाया। प्रभु श्री दे व सू रि ने मुनीन्द्र श्री हे म चं द्र के साथ सभामें एक ही आसनको अलंकृत किया।

फिर, वादी कु मु द चं द्र ने, जो अवस्थासे वृद्ध था, श्री हेम चं द्र से – जिनकी शैशवावस्था कुछ ही समय पहले व्यतीत हुई थी; अर्थात् जो अब भी पूर्ण युवा नहीं हुए थे – कहा कि 'आपके द्वारा तक्र क्या पीत है? अर्थात्–आपने तक्र (छांस) पी है?'। इस पर श्री हे म चं द्र ने उससे कहा –'क्या वृद्धावस्थाके कारण तुम्हारी बुद्धि अस्थिर हो गई है? जो ऐसा अनाप-सनाप बोल रहे हो! तक्र श्वेत होता है, पीत तो हल्दी होती है!' इस वाक्यसे नीचा मुँह हो कर उसने पूछा कि–' आप दोनोंमे वादी कौन है?' श्री सूरिने उसका कुछ तिरस्कार करनेके इरादेसे [अपनेको लक्ष्य कर लेकिन शब्दभेदके साथ] कहा 'यह आपका प्रतिवादी है'। ऐसा कहने पर कु मु द चं द्र [उसके मर्मको ठीक न समझ कर] बोला–'मुझ वृद्धका इस शिशुके साथ क्या वाद हो सकता है?' उसकी यह बात सुन कर [आचार्य हे म च न्द्र ने कहा–] 'वृद्ध तो मैं हूँ; और आप तो शिशु ही हैं–जो अब तक भी कंदोरा बान्धना नहीं जानते और वस्त्र नहीं पहनते।' राजाके इन दोनोकी इस प्रकारकी वितंडाका निषेध करने पर, परस्पर इस प्रकारकी प्रतिज्ञा निश्चित हुई–**"पराजित होने पर श्वेतांबर तो दिगंबर हो जायंगे, और [उसके विरुद्ध] दिगंबर देशत्याग करेंगे।"** प्रतिज्ञा निश्चित हो जाने पर स्वदेशके कलंकसे डरनेवाले दे वा चा र्य ने, सर्वानुवादका परिहार करके और देशानुवादका अनुसरण करके, कु मु द चं द्र से कहा कि–' पहले आप ही अपना पक्ष स्थापित करें।' उनके ऐसा कहने पर कु मु द चं द्र ने राजाको पहले यह आशीर्वाद दिया–

१५९. हे राजन्! आपके यशके स्मरण होने पर सूर्य खद्योतकी चमक जैसा प्रतीत होता है, चन्द्रमा पुराने मकड़ीके जालकी भाँति फीका जान पड़ता है और (हिमाच्छादित) पर्वत मशकसे जान पड़ते हैं। आकाश उसमें भौंरे जैसा हो जाती है और इसके बाद तो वाणा बन्द हो जाती है।

उसके इस अपशब्दको सुन कर कि 'वाणी बद हो जाती है'– सभ्य लोग उसे अपने ही हाथों वधा समझ कर बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद देवाचार्यने राजाको, यह आशीर्वाद दिया–

१६०. हे चालुक्य महाराज! तुम्हारा यह राज्य और यह जिनशासन चिरकाल तक प्रवर्तित रहें। (राज्यपक्षमें पहला अर्थ–) जो राज्य शत्रुओंको शान्ति नहीं प्राप्त करने देता है, उज्ज्वल आकाशकी-सी उल्लसित कीर्तिकी प्रभासे जो मनोहर हो रहा है, न्यायमार्गके प्रसारकी पद्धतियोंका जो गृह बना हुआ है और जिसमें परपक्षके हाथियोंका सदैव मद उतारनेवाले ऐसे कौन हाथी बलवान् नहीं है।

(जिनशासनपक्षमें दूसरा अर्थ–) जो जिनशासन नारियों (स्त्रियों) को मुक्तिपद प्रदान करता है, श्वेतवस्त्रोंको धारण करनेवाले यतियोंकी उल्लसित कीर्तिसे मनोहर लग रहा है, नय मार्ग (जैन तत्त्व पद्धति) के विविध प्रस्तार और भङ्गियोंका गृहरूप है और जिसमें अन्य मतवादियोंके गर्वका जय करनेवाले केवलज्ञानी कभी भी भोजन नहीं करते ऐसा विधान नहीं है–वह जिनशासन चिरजीव रहो।

इसके बाद, वादी कुमुदचद्रने केवलि-मुक्ति, स्त्री-मुक्ति और चीवर सिद्धिके निराकरण रूप अपने पक्षके उपन्यासमें, कबूतर पक्षीकी भाँति मन्द मन्द और बार बार स्खलित वाणीसे बोलना शुरू किया। इसे देख कर सभ्यलोग, ऊपरसे तो उसे उत्साहपरक वचन कह रहे थे और अन्दर दिलमें हस रहे थे। इस प्रकार कितनाक उपन्यास (स्वपक्ष स्थापन) करनेके बाद, अन्तमें [देवाचार्यको लक्ष्य करके कहा कि] 'अब आप बोलिये'। देवाचार्यने प्रलय कालमें उन्मीलित प्रचण्ड पवनसे विक्षुब्ध समुद्रके तरगाघातके समान गभीर वाणीसे, उत्तराध्ययन सूत्रकी बृहद्वृत्तिमें कथन किये हुए चौरासी विकल्पोंका उपन्यास करना प्रारभ किया। इसे देख कर, भास्वत् प्रकाशके प्रसारसे म्लान हो जाने वाले कुमुद–रात्रिविकासी कमल–की भाँति निष्प्रभ हृदय कुमुदचद्रने भयसे चित्तमें भ्रान्त हो कर, उस बातको समझनेमें असमर्थ बन कर, फिरसे उसी उपन्यासके दुहरानेकी प्रार्थना की। श्री सिद्धराजके तथा और सभ्योंके निषेध करने पर भी, उन्होंने उसे अप्रमेय प्रमेय लहरियोंके द्वारा प्रमाण-समुद्रमें डुबोना शुरू किया। इस तरह निरतर वाक्प्रवाह चलने पर, सोलहवें दिन अकस्मात् देवाचार्यका कण्ठ रुद्ध हो गया। तब मत्रशास्त्रविद् श्री यशोभद्र सूरिने, जिन्होंने कुरुकुल्ला देवीके मदिरमें अतुलनीय वर प्राप्त किया हुआ था, उनकी कण्ठनालीसे क्षणभरमें क्षपणक (दिगबर) के किये गये अभिचारके प्रभावसे पड़ा हुआ केशोंका गुच्छा बाहर निकाल दिया। इस विचित्र व्यापारके निरीक्षणसे चतुर लोगोंने श्री यशोभद्र सूरिकी भूरि प्रशसा की और कुमुदचद्रकी खूब निंदा की। इस प्रकार (पहलेने) प्रमोद और (दूसरेने) विषाद धारण किया। इसके बाद, देवसूरिने पक्षके उपन्यासके उपक्रममें 'कोटाकोटि' शब्द कहा। कुमुदचद्रने उस शब्दकी व्युत्पत्ति पूछी। तब काकल पडितने, जिसके कण्ठमें आठों व्याकरण लोट रहे थे, शाकटायनव्याकरणमें कहे हुए 'टाप् डीप्' सूत्रसे निष्पन्न 'कोटाकोटिः' 'कोटीकोटिः' 'कोटिकोटिः' इन तीनों सिद्ध शब्दोंका निर्णय सुनाया। पहले-हीसे 'वाचस्ततो मुद्रिता' इस कहे हुए अपशब्दके प्रभावसे उसका मुख मुद्रित (बन्द) हो गया, और फिर स्वय ही बोला कि–'मैं श्री देवाचार्यसे जीता गया'। श्री सिद्धराजने उसे पराजित कह कर अपद्वारसे बाहर कर दिया। इस पराभवके कारण उसका सिर फट गया और वह मर गया।

इसके अनन्तर श्री सिद्धराजने आनन्द उल्लसित मनसे देवाचार्यके प्रभावकी ख्याति करनेकी इच्छा की। उनके सिर पर चार श्वेतच्छत्र धारण कराये गये, खूब सुदर चामर ढलाये गये, शखोंके युगल

बजवाये गये, डंकोंकी चोटसे मानों आकाशका पेट गुडगुडा रहा था और उत्तम प्रकारकी दुंदुभियोंके नादसे दिगंतराल भरा जा रहा था। राजाने स्वयं अपने हाथका अवलंबन दे कर, 'हे वादि चक्रवर्ती, पधारिये।' ऐसी स्तुतिपूर्वक उन्हें राजसभासे प्रस्थान करवाया। वा ह ड नामक उपासकने उस समय तीन लाख [द्रम्म] याचकोंको दान किये। इस तरह जगत्के आनंद स्वरूप कन्द (मूल) के कन्दल (अंकुर) समान मंगलके बारंबार उच्चारित होने पर, उसी वा ह ड द्वारा बनवाये गये श्रीमहावीर देवके प्रासाद (मन्दिर) में, देवको नमस्कार करने बाद, उसीकी वसति (उपाश्रय) में जा कर उन्होंने आश्रय लिया। सूरिकी अनिच्छा होने पर भी राजाने उनको पारितोषिकके रूपमें **छाला** आदि बारह गांव भेंट दिये। [भिन्न भिन्न समर्थ आचार्यों द्वारा की गई] उनकी स्तुतिके कुछ श्लोक इस प्रकार हैं—

१६१. जिनके प्रसाद-ही-का मानों सुखप्रश्नके समय दर्शन (श्वेतांबर संप्रदाय) उच्चारण करता है, उन वस्त्रप्रतिष्ठाचार्य श्री दे व सू रि को नमस्कार है।—इस प्रकार श्री प्र द्यु म्ना चा र्य ने कहा।

१६२. यदि सूर्यके समान दे वा चा र्य, कु मु द चं द्र को न जीत पाते तो कौन श्वेतांबर, संसारमें कटिमें वस्त्र पहनने पाता।—इस प्रकार हे मा चा र्य ने कहा।

१६३. जिस नग्नने कीर्तिरूपी कंथा उपार्जन करके अपना व्रतभंग किया था, दे व सू रि ने उस कंथाको छीन कर उसे निर्ग्रंथ (नंगा) कर दिया।—इस प्रकार श्री उ द य प्र भ दे व ने कहा।

१६४. अभी तक भी जिन्होंने लेख-शालाका त्याग नहीं किया उन देवसूरि (बृहस्पति) के साथ, वादविद्याको जानने वाले प्रभु दे व सू रि की, तुलना कैसे की जाय।—इस प्रकार श्री मु नि दे वा चा र्य ने कहा।

१६५. जिनकी प्रतिभाके धाम-तेजसे [त्रस्त हो कर] कीर्तिरूपी योगवस्त्रका त्याग कर देने वाले [उस] नग्न [दिगंबर] को भारतीने मानों लाजके कारण छोड़ दिया, वह दे व सू रि तुम्हारा कल्याण करें।

१६६. अशेष केवलियोंकी भुक्ति स्थापन कर जो सत्राकार बने तथा स्त्रियोंकी मुक्तिके युक्त उत्तर द्वारा मोक्ष तीर्थ बने, और नग्नको जीत लेने पर श्वेताम्बरशासनके प्रतिष्ठागुरु बने, उन प्रभु श्री दे व सू रि की महिमा, देवता और गुरुकी अपेक्षा भी अपरिमित है।—इस प्रकार दो श्लोक श्री मे रु तुं ग सू रि ने कहे।

इस प्रकार यह देवसूरिका प्रबन्ध समाप्त हुआ।

*

पत्तनके बसाह आभडका वृत्तान्त।

११०) इसके बाद, प त्त न का रहने वाला, जिसका वंश विलुप्त हो गया है ऐसा, आ भ ड नामक एक वणिक्पुत्र कंसारेकी दुकान पर, गागर घिसनेका काम, किये करता था। उसको वहां रोज पाँच विंशोपकका उपार्जन होता था। वह अपना सारा दिन उस काममें व्यतीत कर, दोनों शाम प्रभु श्री हे म सू रि के चरणोंके पास बैठ कर प्रतिक्रमण किये करता था। स्वभाव-ही-से चतुर होनेके कारण उसने अगस्त्य और बौद्ध मत आदिके '**रत्न परीक्षा**'के ग्रंथोंको पढ डाला और रत्नपरीक्षकोंके निकट रह कर उस परीक्षामें दक्ष हो गया। किसी समय, श्री हे म चं द्र मुनीन्द्रके निकट उसने, धनाभावके कारण, स्वल्प प्रमाणमें परिग्रह-परिमाण व्रतका नियम लेना चाहा। सामुद्रिक विद्याके जानकार प्रभुने भविष्यमें उसके भाग्य वैभवका खूब प्रसार होना जान कर, तीन लाख द्रम्मसे अधिक द्रव्य न रखनेका उसे नियम कराया। इसके बाद, संतोष पूर्वक वह अपना व्यवहार

करने लगा। किसी अवसर पर, वह किसी गाँवको जा रहा था, तो उसने रास्तेमें बकरियोंका एक झुंड जाते देखा। उसमें एक बकरीके गलेमें पाषाणका एक खण्ड बन्धा देखा, जिसको रत्नपरीक्षक होनेके कारण, परीक्षा करके देखा तो वह सच्चा रत्न मालूम दिया। फिर उस रत्नके लोभसे, मूल्य दे कर उस बकरीको उसने खरीद लिया। मणिकार (मणियारे) के पाससे उस रत्नको सान पर चढवा कर उसे देदीप्यमान बनवाया और फिर श्री सिद्धराजके मुकुट बनानेके अवसर पर, एक लाख मूल्य पर राजा-ह्ही-को दे दिया। उसी मूल धनसे उसने एक बार बिकनेको आये हुए मंजिष्ठाके कई बोरे खरीदे और जब बेचनेके समय उन्हें खोलकर देखा तो समुद्रके चोरोंसे छिपानेके लिए, व्यापारियोंने उनमें सोनेकी पट्टियाँ छिपा रखी हुई मालूम दीं। फिर उसने सब बोरे खोल कर उनमेंसे वे पट्टियाँ निकला लीं। इस तरह फिर वह सारे नगरमें मुख्य ऐसा सिद्धराजका मान्य (नगर सेठ) और जिन-धर्मकी प्रभावना करने वाला [प्रसिद्ध] श्रावक हुआ। प्रति दिन, प्रति वर्ष, स्वेच्छानुसार जैन मुनियोंको अन्न वस्त्र आदि दिया करता और गुप्तरूपसे स्वदेश और विदेशमें नये नये धर्मस्थान बनवाता तथा पुराने धर्मस्थानोंका जीर्णोद्धार करवाता रहा। पर किसी पर उसने अपनी प्रशस्ति नहीं लिखवाई। [कहा भी है कि]—

१६७ लतासे आच्छन्न वृक्षकी नाईं और मृत्तिकासे आच्छादित बीजकी नाईं प्रच्छन्न (गुप्तरूपसे) किया हुआ सुकृत कर्म प्राय सैंकडों शाखाओंवाला विस्तृत हो जाता है।

इस प्रकार यह वसाह आभडका प्रवन्ध समाप्त हुआ।

*

सिद्धराजकी तत्त्वजिज्ञासा और सर्वदर्शन प्रति समानदृष्टि।

१११) एक दूसरी बार, श्री सिद्धराज संसार सागरको पार करनेकी इच्छासे, सर्व देशके सर्व दर्शनोंमेंसे, प्रत्येकसे देवतत्त्व, धर्मतत्त्व, और पात्रतत्त्वकी जिज्ञासासे पूछने लगा, तो मालूम हुआ कि, वे प्रत्येक अपनी स्तुति और दूसरेकी निंदा कर रहे हैं। इससे उसका मन [खूब] संदेह-दोलारूढ हो गया। श्री हेमाचार्यको बुला कर उनसे विचारणीय कार्यको पूँछा। आचार्यने चतुर्दश विद्याओंके रहस्यका विचार करके, इस प्रकार एक पौराणिक निर्णय कह सुनाया कि—' पहले जमानेमें किसी व्यवहारी [गृहस्थ] ने अपनी पहली परिणीत पत्नीको छोड़ कर किसी रखेलिनको अपना सर्वस्व दे दिया। इससे उसकी पूर्व पत्नी, सर्वदा ही, उसको अपने वशमें करनेके लिये अभिचार (मन्त्र-तन्त्र आदि) के उपाय पूछा करती। किसी गौड (बंगाल) देशीय [जादुगर] ने बताया कि—" तुम्हारे पतिको मैं ऐसा कर दूँ कि तुम उसे फिर रस्सीमें बाँधे रखो " ऐसा कह कर, उसने कोई एक ऐसी अचिन्त्यवीर्य औषधि ला दी और कहा कि—" इसे भोजनमें खिला देना "। ऐसा कह कर वह चला गया। कुछ दिनोंके बाद जब क्षयाह (श्राद्धका दिन) आया तो उस स्त्रीने वैसा ही किया—पतिको वह औषधि खिला दी। फलस्वरूप वह (पति) साक्षात् बैल हो गया। उसका फिर कोई प्रतीकार न जान कर वह, सारी दुनियाकी झिड़कियाँ सहती हुई, अपने दुश्चरितके ऊपर शोक करने लगी। एक बार [ग्रीष्म कालके] दोपहरके समय, सूर्यके कठोर किरणोंसे खूब संतप्त हो कर भी, किसी शाद्वल भूमिमें वह अपने उस पशुरूप पतिको चरा रही थी और किसी वृक्षके नीचे बैठ कर खूब निर्भर भावसे विलाप कर रही थी। अकस्मात् उसने आकाशमें कुछ आलाप सुना। पशुपति (शिव) भवानीके साथ विमानमें बैठे हुए उस समय वहाँसे निकले। भवानीने उसके दु खका कारण पूछा। इस पर शिवने वह वृत्तात ज्यों का त्यों कह सुनाया। फिर भवानीके आग्रह करने पर शिवने यह भी बताया कि, उसी वृक्षकी छाया में, पुरुष बननेकी औषधि है,

और वे अन्तर्धान हो गये। फिर वह स्त्री उस वृक्षकी छायाको रेखांकित करके, उसके भीतर पड़ने वाली [सभी] औषधियोंके अंकुरोंको उखाड़ उखाड़ कर वृषभके मुँहमें डालने लगी। उस अज्ञात स्वरूप औषधिके मुँहमें पड़ते ही वह बैल फिर मनुष्य हो गया। अज्ञात स्वरूप हो कर भी, औषधिने जैसे अभीष्ट कार्य किया, वैसे ही कलियुगमें मोहके कारण, वह पात्र-परिज्ञान तिरोहित होने पर भी, भक्तियुक्त हो कर सब दर्शनोंका आराधन करनेसे, अविदित स्वरूप-ही-से मुक्तिदायक हो जाता है, यह निश्चय है। इस प्रकार श्री हे म चं द्रा चा र्य ने जब सर्व दर्शनके सम्मत होनेका उपदेश दिया तो श्री सि द्ध रा ज ने फिर सब धर्मोंका समान आराधन किया।

इस प्रकार यह सर्व दर्शन मान्यता प्रबंध समाप्त हुआ।

*

सिद्धराजका प्रजाजनोंके साथ उदार व्यवहार।

११२) एक दूसरी बार रातमें, राजा क र्ण मे रु प्रासादमें नाटक देख रहा था। वहाँ पर कोई चना बेचने वाला एक गरीब बनिया भी चला आया और वह राजाके कन्धे पर हाथ रख कर देखने लगा। राजा उसके इस अभिनय (व्यवहार) से मनमें प्रसन्न हो रहा, और बार बार उसका दिया हुआ कर्पूर मिश्रित पानका बीड़ा आनंदके साथ लेता रहा। नाटकके विसर्जन होने पर, राजाने अनुचरोंके द्वारा उसका घर आदि अच्छी तरह जान लिया और फिर अपने महलमें आ कर सो गया। सवेरे उठ कर प्रातःकृत्य कर लेने बाद, सर्वावसर (राजसभा) के मिलने पर, राजाने सभामंडपको अलंकृत किया और उस चना बेचने वाले बनियेको बुलाया। राजाने उससे [व्यंगमें] कहा कि–' रातमें तुमने जो मेरे कन्धे पर हाथ रखा था उससे मेरी गर्दनमें दर्द हो रहा है '–तो उस तत्कालोत्पन्न मति वाले (हाज़िर जवाब) बनियेने कहा कि–' महाराज! आसमुद्र विस्तृत ऐसी पृथ्वीके भारको कन्धे पर उठा रखनेसे यदि स्वामीके कन्धेमें कोई पीड़ा नहीं होती तो मुझ समान तृण-मात्रसे निर्जीव बनियेके भारसे स्वामीके कन्धोंमें क्या पीड़ा होगी!' उसके इस उचित उत्तरको सुन कर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और बदलेमें उसको इनाम दे कर विदा किया।

इस तरह यह चना बेचनेवाले बनियेका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

लक्षाधिपतिको क्रोडपति बना देना।

११३) एक दूसरी रातको, राजा क र्ण मे रु प्रासादसे नाटक देख कर लौट रहा था, तब [राजमार्गमें] किसी व्यवहारीके घर पर बहुत-से दीपक जलते हुए देख कर पूछा कि–' यह क्या है?' उसने कहा कि ये लक्षप्रदीप हैं। राजाने उसको धन्य कहा और वह अपने महलमें चला गया। रात्रिको व्यतीत कर [अपने नगरमें ऐसे प्रजाजन है इस विचारसे] अपनेको धन्य मानता हुआ, सवेरे उसे राजसभामें बुला कर आदेश किया कि–' इन प्रदीपोंको सदा जलाते रहनेसे तुमको सदा ही अग्निका भय रहता है, तो कहो कि तुमारे पास कितने लाखका धन है '। उत्तरमें उसने निवेदन किया कि–' वर्तमानमें चौरासी लाख है '। इस पर मनमें अनुकंपित हो कर राजाने कृपापूर्वक अपने खज़ानेसे १६ लाख निकाल कर दे दिया और उसके मकान पर [दीपकोंके बदले] क्रोडपति होनेका सूचक कोटिध्वज फहराया गया।

इस तरह यह षोडशलक्षप्रसाद प्रबंध समाप्त हुआ।

*

सिंहपुरके ब्राह्मणोंका कर माफ करना।

११४) एक दूसरी बार, राजाने वालाक देशकी दुर्गभूमि (पहाडी जमीन) में सिंहपुर नामका प्रदेश ब्राह्मणोंको रहनेके लिये दे दिया और उसके अधीन १०६ ग्राम दान कर दिये। पर वहां पर सिंहका डर देख कर ब्राह्मणोंने सिद्धराजसे प्रार्थना की कि, उन्हें कहीं देशके भीतर निवास दिया जाय। इस परसे राजाने उनको साभ्रमतीके तीर परका आसाविटी ग्राम दे दिया, और सिंहपुरसे धान्य लानेमें जो आते जाते कर लगता था उसे माफ कर दिया गया।

वाराहीके पटेलोंको बूचाका बिरुद देना।

११५) बादमें, राजा सिद्धराजने किसी समय, मालव देशकी यात्राके लिये प्रयाण किया। रास्तेमें वाराही ग्रामके पास जब वह आया तो उस गाँवके पटेलों (मुखियों) को बुला कर, उनकी चतुरताकी परीक्षाके लिये, अपनी एक प्रधान पालकी, उनको अपने पास थातीके रूपमें रखनेके लिये दी। राजाके आगे प्रयाण कर जाने पर उन सभीने मिल कर, उसके एक एक हिस्सेको अलग अलग कर, यथोचित रूपसे सबने अपने अपने घर पर सभाल्के रखा। यात्रासे लौटते समय राजाने अपनी रखी हुई उस थातीको जब उनसे माँगी, तो उन्होंने अलग अलग किये हुए उसके वे सब टुकडे लाके दिये। यह देख कर राजाने आश्चर्यसे पूछा कि–'यह क्या बात है?' तो उन्होंने विज्ञापना की कि–'महाराज! [हममेंसे] कोई एक आदमी तो इसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। कभी चोर और अग्नि आदिका उपद्रव हो जाय तो फिर स्वामीके सामने कौन जवाबदेह हो–यही सोच कर हम लोगोंने यह ऐसा किया है।' तब राजा मनमें खूब आश्चर्यचकित हुआ और उनको 'बूच *' ऐसा बिरुद उसने दिया।

इस प्रकार यह वाराहीय बूच प्रबंध समाप्त हुआ।

*

उञ्झाके ग्रामीणोंसे वार्तालाप।

११६) इसके बाद, एक बार राजा श्री जयसिंह देव, मालव विजय करके लौट रहे थे तब रास्तेमें पडने वाले उञ्झा ग्राममें खीमे डाले गये। वहांके ग्रामीणोंने, जिनको राजा मामा कहा करता था, दूधसे भरे हुए घडों आदिके उचित सत्कारसे राजाको सन्तुष्ट किया। उसी रातको, राजा गुप्त वेष करके उनके दुख-सुख जाननेकी इच्छासे, किसी ग्रामीणके घर पर चला गया। वह (ग्रामीण) गाय दुहने आदिके कामोंमें व्यस्त होता हुआ भी, उसने पूछा कि–'तुम कौन हो?' [इत्यादि। इसके उत्तरमें उसने] कहा कि–मैं श्री सोमेश्वरका कार्पटिक (यात्री) हूं, महाराष्ट्र देशका रहने वाला हूं।' उसने फिर उससे महाराष्ट्र देश और उसके राजाके गुण-दोष आदि पूछे। उसने वहांके राजाके ९६ गुणोंकी प्रशंसा करते हुए, उस ग्रामीणसे गूर्जर देशके राजाके गुण-दोष पूछे। इस पर वह श्री सिद्धराजके प्रजा-पालन-दक्षत्व और सेवकों पर अनुपम प्रेम इत्यादि गुणोंका वर्णन करने लगा। तब बीचमें उसने राजाका कोई कृत्रिम दोष बताना चाहा, तो वह आँसू गिराता हुआ बोला कि–'हम लोगोंके मन्द भाग्यसे राजाको कोई पुत्र नहीं है और यही उसमें एक दोष है'। इस प्रकार निष्कपट भावसे उसने उससे सब कह कर उसे सन्तुष्ट किया। फिर प्रभात कालमें सब लोक मिल कर राजाके

---

* यह 'बूच' कोई देश्य शब्द है। हिंदीमें इसके जैसा बूचा शब्द है जिसका अर्थ 'कानकटा हुआ' ऐसा होता है। इन लोगोंने पालकीके अंग-प्रत्यंग कर डाले थे इस लिए इनको 'बूचा' कहा गया प्रतीत होता है। गुजरातीमें बूचाका अर्थ मोथा–कुण्ठ ऐसा भी होता है। इससे राजाने उनके इस भोलेपनको देख कर उन्हें 'बूचा' ऐसा सम्बोधन किया हो।

दर्शनके लिये उत्कंठित हो कर उसके निवासस्थानमें गये और राजाको प्रणामादि करके उसके अनुपम ऐसे पलंग पर ही बैठ गये। आसन देनेके लिये नियुक्त नोकरोंने उनको अलग आसन पर बैठनेको कहा तो वे लोग अपने हाथोंसे उस पलंगकी कोमल शय्याका स्पर्श करते हुए [भोले भावसे] 'हम लोग यहीं बड़े आरामसे बैठे हैं'—ऐसा कहते हुए वहीं बैठ रहे। [यह देख कर] राजाका मुख मुस्कुराहटसे कमलकी भाँति खिल उठा।

इस प्रकार उञ्झावासी ग्रामीणोंका यह प्रबंध समाप्त हुआ।

*

झाला सामंत माँगूकी शूरताका वर्णन।

११७) किसी समय, झाला जाति का माङ्गु नामक क्षत्रिय श्री सिद्धराजकी सेवाके लिये सभामें आया करता था। वह रोज़ ही दो पराची (लोहेकी भारी कुसी) जमीनमें गाड़ कर बैठता और फिर उन दोनोंको उखाड़ कर ऊठता। उसके भोजनमें घीसे भरा एक कुतुप (कुडवा—घी तेल भरनेका वडेके जैसा चमडेका भाजन) खर्च होता था। घी लगी हुई उसकी दाढ़ीके धोने पर भी उसमें सोलहवाँ हिस्सा घी वच जाता था। किसी समय उसके शरीरमें रोग होने पर, पथ्यके लिये यवागू (जौकी पतली माँड) खानेको वैद्यने कहा तो, वह ५ माणक (करीब ४ शेर कच्चे नाप जितनी) खा गया। इस पर वैद्यने डाँट कर कहा कि आधा भोजन कर लेने पर वीचमें अमृतोदक क्यों नहीं पिया?' क्यों कि कहा है कि—

१६८. जब तक सूर्योदय न हो जाय तब तक एक हजार घड़ा भी पानी पिया जा सकता है, पर जब सूर्योदय हो जाता है तो फिर एक बूँद भी एक घड़ेके बराबर हो जाता है।

रातकी पिछली चार घड़ीमें, सूर्योदय न होने तक, जो जल पिया जाता है—जो जल प्रयोग किया जाता है—उसे वज्रोदक कहते है (वह अमृतोदक भी कहाता है)। सूर्योदय हो जाने पर विना अन्न खाये, जो पानी पिया जाता है, वह विष है। इस लिये एक बूँद भी वह पानी सौ घड़ोंके बराबर हो जाता है। आधा भोजन करने पर, वीचमें जो जल पिया जाता है वह अमृत कहलाता है, और भोजनान्तमें तत्काल पिया जाता हुआ जल छत्र या छत्रोदक कहलाता है। उस माँगूने, यह सुन कर कहा कि—'यदि ऐसा है, तो पहले जो अन्न खाया है उसे आधा आहार कल्पना कर लिया जाय, और इस समय अब पानी पी कर फिर उतना ही आहार और कर लूँ!' ऐसा कह कर वह फिर खानेकी तैयारी करने लगा, लेकिन वैद्यने उसे वैसा करनेसे रोक दिया।

किसी समय राजाने उसके निःशस्त्र रहनेका कारण पूछा।' उसने कहा कि—'मेरा हथियार तो समयोचित होता है'। फिर एक बार उसके स्नान करते समय, किसी महावत द्वारा चलाये हुए हाथीको अपने ऊपर आता देख, नज़दीकमे रहे हुए कुत्तेको पकड कर उसकी सूंड पर फेंक मारा। मर्मस्थान पर चोट लगनेके कारण निपीडित ऐसे उस हाथीको खींचा, तो उसके अतुल बलसे वह हाथी भीतर-ही-भीतर नसोंमेंसे टूट गया और उस महावतके नीचे उतरने पर, वह जमीन पर गिरते ही प्राणोंसे मुक्त हो गया। गूर्जर देश पर आयी हुई म्लेच्छोकी सेनाको देख कर राजाके पलायन कर जाने पर, वह अपनी इच्छासे उस सेनाका उच्छेद करता हुआ, युद्धमे जिस स्थान पर मारा गया, उस जगहकी, पत्तनमे अब भी 'माङ्गुस्थण्डिल'के नामसे प्रसिद्धि चल आ रही है।

इस प्रकार यह माँगू प्रबंध समाप्त हुआ।

*

सिद्धराजकी सभामें म्लेच्छराजके दूतोंका आगमन।

११८) एक दूसरी बार, म्लेच्छराजके प्रधानोंके आने पर, मध्यदेशसे आये हुए वेषकारोंको बुला कर कुछ रहस्य दिखलानेका आदेश दे कर विसर्जित किया। इसके बाद दूसरे दिन, सायंकाल, प्रलय कालके समान प्रचण्ड पवनके आने पर, राजा सुधर्मा सभाके समान राजसभामें सिंहासन पर बैठ कर जो देखता है, तो अन्तरीक्षसे दो राक्षस उतर रहे हैं—जिनके मस्तक पर सोनेकी दो ईंटें रखी हुई हैं और जो सुवर्ण जैसी कान्ति धारण कर रहे हैं। उन्हें देख कर सारी सभा भयसे भ्रान्त हो उठी। इसके बाद, उन्होंने राजाके चरणपीठ पर वह उपहार रख दिया और फिर पृथ्वीतल पर लुठित होते हुए, प्रणाम करके कहा कि—'आज लंका नगरीमें महाराजाधिराज विभीषणने देवपूजा करते समय राज्यस्थापनाचार्य रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्रके उत्तम गुणग्रामोंको स्मरण करते हुए, ज्ञानमय दृष्टिसे जाना कि—आजकल उनके स्वामी (रामचन्द्र) चौलुक्यकुल तिलक श्री सिद्धराजके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। इस लिये उन्होंने यह (सन्देश) कह कर हम दोनोंको भेजा है कि—'मैं प्रभुको प्रणाम करनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित मनवाला हो रहा हूं, सो क्या मैं ही वहाँ प्रणाम करनेको उपस्थित होऊँ या प्रभु ही यहाँ आ कर मुझे अनुगृहीत करेंगे'—इसका निर्णय महाराज स्वयं अपने श्रीमुखसे करें।' उनकी यह बात सुन कर, राजाने मन-ही-मन कुछ सोच कर उनसे इस प्रकार कहा—'प्रफुल्ल आनन्द लहरीसे प्रेरित हो कर मैं ही खुद अपने अनुकूल समय पर, विभीषणसे मिलने आ जाऊँगा।' ऐसा कह कर, अपने कण्ठका शृंगारभूत ऐसा एकावली हार उनको प्रत्युपहारके रूपमें दे दिया। जाते समय 'प्रभुके अन्य दूत पठानेके अवसर पर, हमें भुला न दें' इस प्रकारकी विशेष विज्ञप्ति करके अन्तरीक्ष मार्गसे वे दोनों राक्षस तिरोहित हो गये। उसी समय वे म्लेच्छोंके प्रधान पुरुष बुलाये गये तो, भयभीत हो कर अपना पौरुष छोड़, राजाके सामने आ कर उपस्थित हुए और भक्तियुक्त वचन कह कर राजाको खुश करने लगे। राजाने फिर उनके राजाके लिये उचित भेट दे कर उनको विदा किया।

इस प्रकार यह म्लेच्छागमनिषेध प्रबंध समाप्त हुआ।

*

सिद्धराजका कोल्हापुरके राजाको चमत्कारके भ्रममें डालना।

११९) बादमें, किसी समय, कोल्हापुर नगरके राजाकी सभामें बन्दियोंने श्री सिद्धराजकी कीर्तिका गान किया। उस राजाने कहा कि—'सिद्धराजको हम ऐसा तब मानेंगे जब हमें भी कोई यह प्रत्यक्ष चमत्कार दिखायेगा।' राजाके इस कथनसे पराभूत हो कर, उन्होंने सिद्धराजको यह वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर राजाने जब सभामें नजर फिराई तो उसके मनकी बात समझने वाले किसी सेवकने हाथ जोड़ कर अपना अभिप्राय प्रकट किया। राजाने उसे एकान्तमें बुला कर उसका कारण पूछा। उसने राजाके आशयको कह बतलाया और विशेषमें कहा कि—'तीन लाखके व्ययसे यह काम सिद्ध होने योग्य है।' फिर उसी समय, ज्योतिषीके बताये हुए मुहूर्तमें राजासे तीन लाख ले कर, वह व्यापारी बनिया बन कर सब प्रकारके मालका संग्रह करके, सिद्धके संकेत चिह्न वाली रत्न जड़ी हुई दो सोनेकी खड़ाऊँ, एक अनुत्तीर्ण योगदण्ड, दो मणिके बने हुए कुण्डल, उसी प्रकारके योगका सूचक योगपट, तथा सूर्यकी किरणोंके जैसा चमकदार एक चन्द्रातक उसने साथमें लिया, और रास्ता ते करके कुछ दिनोंमें वहाँ (कोल्हापुर) जा कर डेरा डाला। समीनस्थ दीवाळीकी रातको, उस नगरके राजाकी रानियाँ महालक्ष्मी देवीकी पूजाके लिए आकुल-व्याकुल हो कर देवीके मन्दिरमें जब आईं, तो वह बना हुआ सिद्ध पुरुष, उसी सिद्धवेषसे अलंकृत हो कर और खूब अच्छी तरह कूदना सीने हुए किसी बर्बर जातिके

मनुष्यको साथ ले कर, अकस्मात् उस देवीके मंदिरमें प्रादुर्भूत हुआ। उसने देवीकी रत्न, सुवर्ण और कर्पूरसे पूजा अर्चा की और उस राजाकी रानियोंको उसी प्रकारके उत्तम पानके बीड़े दिये। फिर श्री सिद्धराज का नामांकित वह सिद्धवेष पूजाके बहाने वहीं रख कर, उसी बर्बरके कंधेपर चढ़कर, उडता हुआसा जैसे आया था वैसे ही चला गया। रातके अन्तमें रानियोंने उस विरोधी राजाको वह वृत्तान्त कह सुनाया तो, भयभ्रान्त हो कर उसने, उस उपहारको, अपने प्रधान पुरुषोंके द्वारा सिद्धराजके पास पहुँचा दिया। इधर उस सेवकने अपने मालके क्रय-विक्रयका संकोच करके शीघ्रगामी पुरुषके साथ यह खबर भिजवा दी कि–'जब तक मै न आऊँ तब तक इन प्रधान पुरुषोंको दर्शन न दीजियेगा।' फिर स्वयं जल्दी जल्दी चल कर कुछ ही दिनोंमें वहाँ पहुँच गया। उसके अपने कियेका पूरा वर्णन करने पर, राजाने उन प्रधानोंका यथोचित स्वागतादि किया।

इस प्रकार यह कोल्हापुर प्रबंध समाप्त हुआ।

*

कौतुकी सीलणकी वाक्चातुरी।

१२०) श्री सिद्धराज, मालवमंडलसे यशोवर्मा राजाको जब बाँध लाया, तब उसके निमित्त किये जाने वाले उत्सव पर सीलण नामक कौतुकीने कहा कि–'अहो बेडा (नाव) में समुद्र डूब गया।' तब उसके पीछे स्थित किसी गायन (गान करनेवाले) ने 'तुम अपशब्द कह रहे हो'–ऐसा कह कर उसकी तर्जना की। तब उसने अर्थापत्तिसे इस प्रकार विरोधालङ्कारका परिहार करके बताया कि–'बेडाके समान इस गूर्जर भूमिमें समुद्र जैसा यह मालव-नरेश डूब गया।' [इस पर उसने] राजासे सोनेकी जीभ प्राप्त की।

इस प्रकार यह कौतुकी सीलणका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

काशीपति जयचन्द्रकी सभामें सिद्धराजके दूतकी वाक्पटुता

१२१) किसी समय, सिद्धराजके एक वाचाल सान्धिविग्रहिक (दूत) से काशीके राजा जयचंद्रने अणहिल्लपुरके प्रासाद, प्रपा (बावडी) और निपान (कूए) आदिका स्वरूप पूछते समय [उसकी विशेष शोभा सुन कर, ईर्ष्यावश राजाने] यह दोष बताया कि–'सहस्रलिंग सरोवरका जल शिव-निर्माल्य होनेके कारण अस्पृश्य है। उसका सेवन करने वाले दोनों लोकसे विरुद्ध व्यवहार करते हैं। अतः वहाँके लोग, उदित प्रभाव वाले कैसे हों? सिद्धराजने सहस्रलिंग सरोवर बना कर यह अनुचित कार्य किया है।' राजाकी इस बातसे मन-ही-मन कुपित हो कर उसने राजासे पूछा कि–[आपकी] 'इस वाराणसीमें कहाँका जल पिया जाता है?' राजाके 'गंगाजल' ऐसा कहने पर उसने कहा–'क्या गंगाजल शिव निर्माल्य नहीं है तो और क्या है? शिवका सिर ही तो गंगाकी निवास-भूमि है।'

इस प्रकार जयचंद्र राजाके साथ गूर्जरके प्रधानकी उक्तिप्रत्युक्तिका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

मयणल्लादेवीके पिताकी मृत्युवार्ता।

१२२) किसी समय, कर्णाट देशसे आये हुए सान्धिविग्रहिकसे मयणल्लादेवीने अपने पिता जयकेशीका कुशल समाचार पूछा तो उसने अश्रुपूर्ण आँखोंसे कहा कि–'स्वामिनि, प्रख्यातनामा महाराज श्री जयकेशी भोजनके समय पिंजरेसे तोतेको बुला रहे थे। उसके 'मार्जार' (बिल्ली) बैठी है, ऐसा कहने पर, राजाने चारों ओर देख कर–किंतु अपने भोजनके पात्रके [चौकीके] नीचे छिपे हुए मार्जारको न देख कर–

प्रतिज्ञा पूर्वक बोल उठे कि–'यदि बिल्लीके हाथ तुम्हारी मृत्यु होगी तो मैं भी तुम्हारे ही साथ मरूगा'। वह तोता ज्यों ही पिंजडेसे उड कर उस सोनेके थाल पर आ कर बैठा त्यों ही उस बिल्लीने [लपक कर] भेडिये जैसे दाँतोंसे उसे मार डाला। राजाने उसे मरा देख कर भोजनका ग्रास छोड दिया, और उक्ति-प्रत्युक्ति जानने वाले राजपुरुषोंके [बहुत कुछ] निषेध करने पर भी कहा–

१६९ राज्य चला जाय, श्री चली जाय, और क्षणभरमें प्राण भी भले ही चले जाँय, किन्तु जो बात मैंने स्वय कही है वह शाश्वती वाणी न जाय।

इस प्रकार इष्ट देवताकी भाँति इसी वाणीका जाप करता हुआ, काष्ठकी चिता बनवा कर, उस तोतेको साथ ले, उसमें प्रवेश कर गया। इस वाक्यको सुन कर मयणल्लादेवी शोकसागरमें डूब गई। विद्वज्जनोंने विशेष प्रकारके धर्मोपदेशरूपी हस्तावलबन दे कर उसका उद्धार किया।

*

पिताके पुण्यार्थ मयणल्लादेवीका सोमेश्वरकी यात्रा करना।

१२३) बादमें, पिताके कल्याणार्थ श्री सोमेश्वरपत्तनकी यात्राको वह गई, और वहाँ उस सतीने किसी त्रिवेदी ब्राह्मणको बुला कर उसे जलाजलि देना चाहा। उसने अजलिमें जल ले कर कहा कि–' यदि तीन जन्मका पाप देना मजूर करो तो मैं यह लूँगा, नहीं तो नहीं।' उसकी इस बातसे अत्यन्त सन्तुष्ट हो कर, हाथी, घोडा, सोना आदिके दानके साथ, उसे पापघटका दान किया। उसने यह सब अन्य ब्राह्मणोंको दे दिया। देवीके यह पूँछने पर कि 'ऐसा क्यों किया?', बोला कि–'पूर्व जन्मकी पुण्य-वृद्धिके कारण तो आप इस जन्ममें राजरानी और राजमाता हुई हैं। और फिर इन लोकोत्तर दानोंके पुण्यसे भविष्य जन्म भी श्रेयस्कर ही होगा। यही सोच कर मैंने तीन जन्मका पाप ग्रहण किया है। आपने जो इस पापघटके दानका उपक्रम किया है, इसे तो कोई अधम ब्राह्मण ले कर खुदको और आपको भी भव सागरमें डुबो दे। मैंने तो पहले ही सब धनका त्याग कर दिया है और फिर इस धनको ले कर भी दान कर दिया है, इस लिये जो मैंने त्याग किया उससे आठ गुना अधिक श्रेय सग्रह किया है।

इस प्रकार यह पापघटका प्रबध समाप्त हुआ।

*

सान्तू मत्रीकी बुद्धिमत्ताका एक प्रसंग।

१२४) किसी समय, मालव मण्डलसे विग्रह करके स्वदेशको लौटते समय सिद्धराजको मालूम हुआ कि [गुजरात और मालवेके मध्यमें बसनेवाले] अनुपम बलशाली भिल्लोंने उसका रास्ता घेर लिया है। सान्तूमत्रीको [पत्तनमें] इसके समाचार मिले, तो उसने प्रति ग्राम और प्रति नगरसे घोडे इकट्ठे किये, और प्रत्येक बैलको भी पलानसे सज्ज करके बडा भारी दलबल इकट्ठा किया। फिर उस दलके बलसे भिल्लोंको त्रासित कर सिद्धराजको सुखपूर्वक स्वदेशमें ले आया।

इस प्रकार सान्तू मत्रीकी बुद्धिका यह प्रबध समाप्त हुआ।

*

सिद्धराजके एक सेवकके भाग्यका वृत्तात।

१२५) किसी एक रातको दो बुद्धिमान भृत्य श्री सिद्धराजके पैर दबा रहे थे। उनमेंसे एकने, राजाको नींदके कारण आँखें बद किया हुआ समझ कर, उसकी प्रशसा करते कहा कि–'महाराज सिद्धराज कृपा और कोपमें [एकसे] समर्थ, सेवकोंके लिये कल्पवृक्ष और राजोचित सभी गुणोंके आलय हैं। दूसरेने, राजाके इस

महान् राज्यका कारण भी प्राक्तन कर्म को बता कर [कर्म ही की] प्रशंसा की। राजाने इस वृत्तान्तको सुन कर कर्मकी प्रशंसाको विफल करनेके विचारसे, प्रशंसा करनेवाले चाकरको एक दिन, उसे कुछ भी रहस्य न जता कर, यह प्रसाद-लेख दे कर महामंत्री सान्तूके पास भेजा कि–' इस चाकरको एक सौ घोड़ेका सामंत बना दिया जाय '। वह चाकर इस लेखको ले कर जब चंद्रशालाकी सीढ़ियोंसे नीचे उतर रहा था, तब पैर फिसल जानेसे गिर गया और उसका अंग भंग हो गया। उसीके पीछे चले आने वाले दूसरे चाकरने पूछा कि–' यह क्या बात है? ' तो उसने अपनी बात बताई। वह तो फिर खाटमें बैठ कर अपने घर गया और उस दूसरे [अपने साथी] को वह राजाका लेख दे कर मंत्रीके पास जानेको कहा। मंत्रीने उस लेखमें की गई आज्ञानुसार उस चाकरको सौ घुडसवारों वाला सामंतपद प्रदान किया। यह सब बात सुन कर राजाने भी कर्मको ही बलवान माना।

१७०. न तो आकृति, न कुल, न शील, न विद्या और न मनुष्योंकी की हुई सेवा कुछ फल देती है। पूर्व जन्ममें तपस्यासे संचित किये हुए पुण्य कर्म ही मनुष्यको समय पा कर वृक्षोंकी तरह फल देते हैं।

इस तरह यह वण्ठकर्म प्राधान्य-प्रबंध समाप्त हुआ।

*

सिद्धराजकी स्तुतिके कुछ फुटकर पद्य।

१७१. तीन भुवनके बीचमें यह जे स ल (ज य सिं ह-सि द्ध रा ज) राजा [एक बडा] कूट बरुड * है जिसने अनेक राजवंशोंका छेदन कर [अपना] एक छत्र [राज्य] बनाया है। इसकी जय हो।

१७२. महालय, महा-यात्रा महास्थान और महासरोवर, § जैसे सि द्ध रा ज ने किये वैसे किसीने नहीं किये।

१७३. जिगीषु जन (एक अर्थ – गानेकी इच्छा रखने वाले; दूसरा अर्थ–विजयकी इच्छा रखने वाले) एक मात्राका भी अधिक होना सह नहीं सकते, मानों इसी लिये हे धरानाथ (पृथ्वीनाथ)! तुमने धारानाथ (धा रा न ग री के नाथ) को नष्ट किया है। [क्यों कि ' धरानाथ ' की अपेक्षा ' धारा-नाथ ' में एक मात्रा अधिक है]

१७४. हे सरस्वती, मान छोड़ दो; हे गंगा, तुम भी अपने सोहागकी भंगीको छोड़ो; अरी यमुने, अब तेरी कुटिलता वृथा है; रे रेवा, तूं वेगको छोड़ दे; क्यों कि अब समुद्र, श्री सि द्ध रा ज के कृपाणसे कटे हुए शत्रुस्कंधोंमेंसे उछलने वाली रक्तकी धारासे बनी हुई नदीरूपी नवीन स्त्रीसे रक्त (१ लाल वर्ण, २ अनुरक्त– प्रेमी) हो गया है।

१७५. हे विजयी राजाओंमें सिंह (जयसिंह) महाराज, सचमुच ही तुम्हारे जय-यात्राके समय, हाथियोंके कारण जलाशयोंके सूख जानेकी चिंतासे; वीरोंके घावकी आकांक्षासे; तथा, अपने पतियोंके विनाशकी आशंकासे; क्रमशः मछली रोती है, मक्खी हँसती है, और स्त्रियाँ अशुभका ध्यान करतीं हैं।

---

* बरुड या बरड उस जातिका नाम है जो बाँसको चीर-छोल कर उससे टोकरी, करंडक और छाता आदि बनाये करते हैं। कहीं कहीं ' गंछ ' भी इनको कहा हैं। इस पद्यमें, राजवंश और छत्र ये शब्द श्लेषात्मक हैं।

§ इस पद्यमे सिद्धराजके ४ महाकार्य बतलाये गये हैं – जिनमें महालयसे तो सिद्धपुरके रुद्रमहालयका सूचन होता है। महायात्रासे बहुत करके सोमेश्वर तीर्थकी की हुई बड़ी यात्राका सूचन होता है। किसीके खयालसे सिद्धराजने जो मालवे पर विजय प्राप्त किया था उस विजययात्राका इसमें सूचन किया गया है। महासरोवरसे पाटनके सहस्रलिंग सरोवरका निर्देश किया गया है। ४ थे महास्थानसे किस वस्तुका सूचन होता है यह ठीक ज्ञात नहीं होता। कहते हैं कि सिद्धराजने कई बड़े बड़े किले भी बनाये थे और कई बड़े स्थान भी बसाये थे। संभव है उन्हींमेंसे किसीका कोई सूचन इसमें किया गया हो।

१७६ हे सिद्धराज, नत हो जाने पर तो तुमने आनाक भूपको अनेक लाखोंके साथ सपादलक्ष [जैसा देश] भी दे दिया और दस ऐसे यशोवर्माके पास मालव (मालवा देश, श्लेपार्थ मा=लक्ष्मीका लव= लेशमात्र) का होना भी तुमने सहन नहीं किया।

इत्यादि बहुतसी स्तुतियां और प्रबंध उसके बारेमें हैं जो [ग्रन्थान्तरोंसे] जानने योग्य हैं।

सं० ११५० से ले कर [११९९ तक] ४९ वर्ष तक श्री सिद्धराज जयसिंह देवने राज्य किया।

*

इस प्रकार श्री मेरुतुङ्गाचार्यके बनाये हुए प्रबंध चिन्तामणिमें श्री कर्ण और श्री सिद्धराजका चरित्र वर्णन नामक यह तीसरा प्रकाश समाप्त हुआ।

यहाँ पर P प्रतिमें निम्नलिखित श्लोक अधिक पाये जाते हैं। ये श्लोक सोमेश्वरदेव रचित कीर्ति-कौमुदीके हैं और इनमें संक्षेपमें सिद्धराजके जीवनके महत्त्वके सभी वीर कार्योंका सूचन किया गया है–

[१०६] जिसने, बालक होते हुए भी, इन्द्रकी वीरवृत्तिको भी लांघ जाने वाले अपने कोपके प्रभावसे दुष्ट राजाओंको आज्ञाधीन बनाया।

[१०७] अपार पौरुषके उद्गारवाले सौराष्ट्रीय खंगारको भी, जिस गुरुमत्सरने युद्धमें इस प्रकार पीस डाला, जैसे सिंह हाथीको पीसता है।

[१०८] जिसने रामचंद्रकी तरह असंख्य घोड़ोंकी सेना ले कर और अनेक राजाओंको नष्ट करके (रामके पक्षमें–पर्वतोंको उखाड कर) सिंधुपतिको (सिद्धराजके पक्षमें – सिन्धुराज नामका राजा, रामके पक्षमें सिन्धु=समुद्र) बाँध लिया।

[१०९] मनमें अमर्ष करके विपक्षीय उर्वीभृत् (एक अर्थ – पर्वत, दूसरा – राजा) के उन्नत होने पर, जिसने अगस्त्य मुनिकी भाँति, शीघ्र ही अर्णोराज (एक अर्थ – समुद्र, दूसरा – शाकंभरीका चाहमान राजा) को शुष्क कर डाला।

[११०] विष्णुने तो अर्णोराज (समुद्र) की पुत्री ले ली थी, किंतु इसने तो अर्णोराजको अपनी पुत्री दे दी*। विष्णु और इस सिद्धराजमें एक यही अंतर है।

[१११] शत्रुओंके कटे हुए सिर देख कर शाकंभरीके ईशने भी शंकित हो कर इसके चरणोंमें अपना सिर झुका दिया।

[११२] स्वयं अत्यंत लक्ष्मीवान् और अपरमार (दूसरोंको न मारनेवाला) हो कर भी युद्धमें जिसने मालवस्वामी (एक अर्थ – मालव देशका राजा, दूसरा श्लेपार्थ – लक्ष्मीका किंचित् भोक्ता) परमारको मार डाला।

[११३] जिसने धारा-नरेशको राजशुककी तरह काष्ठ-पञ्जर (काठके पिंजरे) में रख कर अपनी कीर्तिरूपी राजहंसीको काष्ठा-पञ्जर (दिक्चक्रवाल) में छोड़ दिया।

[११४] जिसने नरवर्मा राजाकी तो केवल एक ही नगरी जो धारा थी वह ले ली, पर उसकी वधुओंको [बदलेमें] हजारों अश्रु धारायें दे दीं।

---

* शाकंभरी (अजमेर) के चाहमान राजा अर्णोराजको, जिसका देश नाम आनाक या आना था, सिद्धराजने युद्ध करके पहले तो अपना आज्ञाधीन राजा बनाया और फिर पीछेसे उसको अपनी पुत्री ब्याह दी थी। इसीका सूचन इस पद्यमें है।

[११५] धारा-भंगके प्रसंगको देख कर, जिसके समीप आनेकी ही आशंकासे, प्राघूर्णकके बहाने जिसको महोदय राजने दण्ड दिया।

[११६] जिस शत्रुने, अमृतकी भाँति, इसकी पृथ्वीके लेनेकी इच्छा की, उसीको तरवारसे उल्लसित इसके वाहुने राहु वना दिया (अर्थात् राहुके समान उसे सिरकटा बना दिया)।

[११७] लोगोंने तो इसको कुमार (कार्तिकेय) की ही तरह शक्तिमान् अपना स्वामी माना था, लेकिन यह तो ताम्रचूडध्वज * था और वह केकिध्वज * था (यही इनमें अंतर था)।

[११८] ऐसा कोई राजा नहीं था, जिसको विश्वके इस एकमात्र वीरने जीता न हो; और ऐसी कोई दिशा न थी जो इसके यशसे शोभित न हुई हो।

[११९] गणेशकी तरह जिस अग्रपुष्कर[1] और वृषस्थितिको[2], मोदककी तरह, गौड राजा † आज्यसार[3] और करस्थ[4] हो गया।

[१२०] श्मशानमें वर्वर नामक राक्षसेन्द्रको बाँध करके राजाओंकी श्रेणीमें जो राजचंद्र सिद्धराज हो गया।

[१२१] जिसने, लड़ाईसे ऊठी हुई धूलसे पहले जिस आकाशको मलिन कर दिया था, उसने पीछेसे उसी आकाशको अपनी कीर्तिलहरीसे धो कर उज्ज्वल कर दिया।

[१२२] उस पृथ्वी मंडलके सूर्यके लोकान्तर होने पर चन्द्रसमान श्रीमान् राजा कुमारपालने प्रजाका रञ्जन किया।

---

* सिद्धराजके ध्वजमें ताम्रचूड याने कुकुटका चिह्न था इस लिए वह ताम्रचूडध्वज कहलाता था। कुमार (कार्तिकेय) के ध्वजमें केकी अर्थात् मयूरका चिह्न था। मयूरकी अपेक्षा कुकुट अधिक बलवान् होता है, इस लिये कुमारसे भी अधिक सिद्धराजका शक्तिमान् होना इस पद्यमें ध्वनित किया गया है।

१. गणेशके पक्षमें–आगे है हाथीकी सूंड जिसके; राजाके पक्षमें आगे है वाण जिसके। २ गणेशके पक्षमें–मूषकपर है स्थिति जिसकी; राजाके पक्षमें धर्मपर है स्थिति जिसकी। ३ मोदकके अर्थमें आज्य=घृतसारवाला, राजाके अर्थमे=युद्धसार वाला। ४ मोदकके अर्थमें कर=हाथमें रहा हुआ; राजाके अर्थमें कर=दण्ड देनेवाला।

† गौड=वंग देशका राजा सिद्धराजको कर देने वाला बना यह अर्थ इस पद्यमें ध्वनित किया गया है।

९. कुमारपालादि प्रबन्ध।

कुमारपालके पूर्वजादि।

१२६) अब परम आर्हत श्री कुमारपालका प्रबंध प्रारंभ किया जाता है— अणहिलपुर नगरमें जब कि महाराज बड़े भीमदेव राज्य-शासन कर रहे थे, उस समय श्री भीमेश्वरके नगरमें (अर्थात् पत्तनमें) बकुलादेवी[1] नामकी एक वेश्या रहती थी जो नगर प्रसिद्ध रूप और गुणकी पात्र थी। कुलवधूओंसे भी उसकी अधिक शीलमर्यादा कही जाती थी। राजाने यह सुना तो उसकी परीक्षा लेनेके विचारसे उसे अपने अनुचरोंके द्वारा सवालाख कीमतकी एक कटारी, अपनी रक्षिता बनानेके इरादेसे, इनामके तौर पर भिजवाई। [कार्यान्तरकी] उत्सुकता वश राजाने उसी रातको बाहर जा कर प्रस्थान (यात्राके) लग्नको सिद्ध किया। विग्रह (युद्ध) के निमित्त दो वर्ष तक उसको मालवदेशमें रहना पड़ा। पर वह बकुलादेवी, उसके भेजे हुए उक्त इनामके अनुसार, अन्य सब पुरुषोंको छोड़ कर शील आचारका पालन करती रही। निस्सीम पराक्रमशाली भीमने तृतीय वर्षमें अपने स्थान पर आ कर जनपरंपरासे उसकी इस प्रवृत्तिको सुन कर उसे अपने अन्तःपुरमें दाखिल कर लिया। उसको एक पुत्र हुआ जिसका नाम हरिपालदेव था। उसका पुत्र त्रिभुवनपालदेव हुआ और उसका पुत्र श्री कुमारपालदेव। यह जब धर्मका जानने वाला न था तब भी कृपालु और परस्त्रियोंका भाई बना हुआ था। सिद्धराजसे सामुद्रिक जानने वालोंने कहा था कि—'आपके बाद यही राजा होगा'। इससे वह उसे हीन जातीय मान कर, उसके प्रति असहिष्णु बन, सदा उसके विनाशका अवसर खोजा करता। यह कुमारपाल इस बातको कुछ कुछ समझ कर, राजासे मनमें शंकित बना हुआ, तापसवेष धारण कर, नाना प्रकारसे, देशान्तरोंमें भ्रमण करता रहा। कुछ साल इस तरह बिता कर फिर नगरमें आया और किसी मठमें ठहरा।

*

सिद्धराजके भयसे कुमारपालका मारे मारे फिरना।

१२७) इसके अनन्तर, श्री कर्णदेवके श्राद्धके अवसर पर श्रद्धालु सिद्धराजने सब तपस्वियोंको [भोजनके लिये] निमंत्रित किया। उनमेंसे प्रत्येकके पैर धोते समय, कुमारपाल नामक तपस्वीके भी कोमल चरणतलको हाथसे स्पर्श करता हुआ, उसमेंकी ऊर्ध्व रेखा आदि चिन्होंसे उसने जाना कि—'यही यह राजा होने योग्य है'—और इस लिये निश्चल दृष्टिसे उसे देखता रहा। उसकी इस चेष्टासे [अपने प्रति] उसे विरुद्ध समझ कर, उसी समय वेष बदल करके, कौवेकी भाँति, वह अदृश्य हो गया, और आलिग नामक कुम्हारके घरमें जा छिपा। वहां मिट्टीके बर्तन पकानेके लिये आवाँ बनाया जा रहा था, उसीमें कुम्हारने छिपा कर, पीछा करने वाले राजपुरुषोंसे उसे बचाया। फिर वहाँसे धीरे धीरे आगे चला तो, उसने खोजनेके लिये आये हुए राजपुरुषोंको सामने देखा। उससे भ्रमित हो कर, नजदीकमें कोई दुर्गम ऐसी छिपने लायक भूमिको न पा कर किसीएक खेतमें जा खड़ा हुआ। वहाँ पर, खेतके रखवालोंने, खेतकी रक्षाके लिये काटेदार वृक्षोंकी डालियाँ काट कर जो इकट्ठी कर रखी थीं, उन्हींके बीचमें उसे छिपा दिया और वे अपनी जगह पर आ कर बैठ गये।

---

१ इसके नाममें कुछ पाठभेद मिलता है–किसी प्रतिमें 'चउलदेवी' ऐसा भी पढ़ा जाता है–परन्तु यह 'ब' और 'च' के बीचमें मिलने वालोंके भ्रमके कारण हुआ मालूम देता है। 'बकुलादेवी' का अपभ्रंश उच्चार 'बउलदेवी' होता है और 'ब' की जगह 'च' पढ़नेसे 'चउलदेवी' नाम बन गया मालूम देता है। अधिकतर प्रतियोंमें 'बकुलदेवी' नाम ही मिलता है और यही शुद्ध प्रतीत होता है।

राजाके आदमी पैरोंके चिह्नके अनुसार वहाँ पहुँचे, परन्तु उसका वहाँ पाना असंभव जान कर और भालेकी नोकको उसमें खोंच कर देखने पर भी कुछ न मालूम कर, वे वहाँसे वापस लौट गये। दूसरे दिन खेतवालोंने उस स्थानसे उसे बहार निकाला। वह सवेरे ही वहाँसे आगे चलता हुआ एक वृक्षकी छायामें बैठ कर विश्राम लेने लगा, तो क्या देखता है कि, एक चूहा निभृतभावसे बिलमेंसे चाँदीका सिक्का बाहर ला कर रख रहा है। जब वह इस प्रकार इक्कीस सिक्के निकाल चुका, तो उनमेंसे फिर एक वापस उठा कर वह बिलमें ले गया। उसके बिलमें घुसने पर बाकीके सब सिक्के उठा कर कुमारपालने ले लिये और वह ज्यों ही एकान्तमें जा कर देखता हैं तो वह चूहा बाहर आ कर उन सिक्कोंको न पा कर वहीं छटपटा कर मर गया। कुमारपाल उसके शोकसे मनमें बड़ा व्याकुल हो कर चिरकाल तक परिताप करता रहा। फिर आगे चलते हुए रास्तेमें किसी [धनी पुरुष] की बहूने, जो ससुरालसे पीहर जा रही थी, देखा कि राहखर्चके अभावमें तीन दिनसे भूखे मरते उसका पेट फक पड़ गया है। उसने भाईकी तरह स्नेहसे कर्पूरकीसी सुगंधिवाले चावलके करंबेसे उसको सुतृप्त किया।

१२८) बादमें, विविध देशान्तरोंका भ्रमण करता हुआ, वह स्तंभतीर्थमें महं० श्री उदयनके पास कुछ मार्गखर्च माँगनेके लिये आया। यह सुन कर कि वह पौषधशालामें है, तो वह वहाँ आया। उसे देख कर उदयनने हेमचंद्राचार्यसे [उसके बारेमें] पूछा। उन्होंने कहा कि—इसके अंगके लक्षण लोकोत्तर है। यह भविष्यमें चक्रवर्ती राजा होगा। आजन्म दरिद्रतासे सताये हुए उस क्षत्रियने जब इस बातको असंभव कहा, तो उन्होंने यह लिख कर एक पत्रक मंत्रीको और एक उसको दिया कि—' यदि सं० ११९९ कार्तिक वदि (B. P सुदि) २ रविवार हस्त नक्षत्रमें, आपका पट्टाभिषेक न हों तो, इसके बाद, मैं शकुन देखना ही त्याग दूँगा।' फिर वह क्षत्रिय उनकी इस कला-कौशल वाली चातुरीसे मनमे चकित हो कर बोला कि—'यदि यह बात सच हुई तो, आप ही राजा रहेंगे और मैं आपका चरणरेणु हो कर रहूँगा'— और इसकी प्रतिज्ञा की। श्री हेमाचार्यने कहा कि—' नरकरूप अन्तिम फल देनेवाली राज्यलिप्सासे हमें कोई मतलब नहीं है। आप कृतज्ञ हो कर यह बात न भूलियेगा और जैन शासनका भक्त हो कर सदा रहियेगा!' इस अनुशासनको सिर माथे रख कर और आज्ञा ले कर फिर मंत्रीके साथ उसके घर गया। वहां स्नान, पान, भोजन आदिसे सत्कृत हो कर और राह-खर्च पा कर, विदा ले मालव देशमें आया। वहाँ कुडङ्गेश्वर प्रासादमें पट्टिका पर

१७७. संवत् ११९९ का वर्ष पूर्ण होने पर, हे विक्रमादित्य, तुम्हारे ही समान एक कुमारपाल नामक राजा [जैन धर्मका पालन करने वाला] होगा।

इस प्रकारकी गाथा लिखी हुई देख कर मनमें बडा विस्मित हुआ। [इस समय] गूर्जराधिपति सिद्धराजका स्वर्गवास सुन कर वहाँसे लौटा। उसका सब खर्च समाप्त हो चुका था। उसी नगरमें, किसी बनियेकी दूकान पर [बिना कुछ दिये] भोजन करनेके बाद उसको बंदी किया गया। वह व्याकुल हो कर रोने लगा तो, फिर नगरके लोगोंके इकट्ठा होने पर दोनोंका मरण होगा यह जान कर उस बनियेने कहा कि—'मेरी बनावटी मूर्च्छा है इसे तुम दूर करनेका प्रयत्न करने लगो' उसके इस प्रकारके बुद्धिवैभवसे अपनेको प्रत्युज्जीवित मान-कर, कुमारपालने वैसा किया और उस उपायसे अपना कष्ट छुटा कर वह अणहिलपुरमें रातके समय पहुँचा। पासमें कुछ न होनेके कारण कंदोईकी दूकान पर जा कर, उसका दिया हुआ कुछ खाया। बादमे अपने बहनोई राजकुल श्री कान्हड़देवके घर गया। जब कान्हड़देव राजमंदिरसे आया तो उसे आगे आगे करके घरके भीतर ले गया। फिर अच्छा खाना आदि खा कर स्वस्थ हो कर सो गया।

*

१ यहा पर यह क्या बात कही गई है सो ठीक समझमें नहीं आती। ग्रंथकारका लेख बहुत अस्पष्ट और संक्षिप्त है।

कुमारपालका राजगादीपर बैठना ।

१२९) प्रात काल वह बहनोई अपना सैन्य तैयार करके, उसके साथ, उसको राजाके महलमें ले आया। अभिषेककी परीक्षाके लिये पहले एक कुमारको पट्टे पर बैठाया । उसको चादरके आँचलोंको भी ठीक सम्हालते न देख फिर एक दूसरेको बैठाया। उसको हाथ जोड कर बैठा हुआ देख कर उसे भी अप्रमाणित किया। फिर कान्हडदेव की अनुज्ञासे कुमारपाल, वस्त्र सवरण करके ऊँचेसे श्वास लेता हुआ और हाथमें तलवार कँपाता हुआ, सिंहासन पर जा बैठा। पुरोहितने मगलाचार किया, नगाडे बजे। श्रीमान् कान्हडदेवने पचागोंसे पृथ्वी चूम कर प्रणाम किया। उस समय उसकी अवस्था पचास वर्षकी हुई थी।

*

कुमारपालने राजद्रोहियोंका उच्छेद किया ।

१३०) कुमारपाल स्वय प्रौढ होनेके कारण, तथा देशान्तर भ्रमणसे विशेष निपुणता प्राप्त करनेके कारण, सब राज्यशासन स्वय करने लगा। राज-वृद्धोंको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने मिल कर उसे मारना चाहा और अधकार वाले दरवाजेमें घातकोंको रख दिया। पूर्वजन्मके शुभ कर्मोंसे प्रेरित किसी आप्तने उस वृत्तान्तको बता कर उसे अन्य द्वारसे मकानमें प्रवेश कराया। बादमें उन प्रधानोंको उसने शीघ्र यमपुरीको भेज दिया।

वह भावुक मण्डलेश्वर (कान्हडदेव), राजा अपना साला होनेके कारण, तथा अपने आपको राज-प्रतिष्ठाचार्य समझ कर, राजाकी दुरवस्थाके [उन पिछले] मर्मोको कहा करता । इस पर किसी समय राजाने कहा – 'हे भावुक, तुम्हें इस प्रकार राज-दरबारमें सर्वदा पुरानी दुरवस्थाके मर्मोका मजाक नहीं करना चाहिये। अबसे ऐसी बातें सभामें न कहना, विजनमें चाहे यथेच्छ कहते रहना।' राजाके इस प्रकार उपरोध करने पर भी, उत्कट अवज्ञावश हो कर वह बोला कि – 'रे अनात्मज्ञ! अभी इतनेहीमें अपने पैर उखाड रहा है?' इस प्रकार बकता हुआ, मानों मौतहीकी इच्छासे, औषधकी भाँति उसके पथ्य वचनको भी उसने ग्रहण नहीं किया। [उस क्षण तो] राजाने अपने भावका सवरण करके अपनी मनोवृत्ति छिपा ली। दूसरे दिन राजाके सकेत प्राप्त मल्लोंने उसका अग तोड मरोड कर, दोनों आँखें निकाल लीं और उसे उसके मकान पर भिजवा दिया।

१७८ इस विचारसे कि पहले मैंने ही इसे जलाया है अत तिरस्कार करने पर भी यह मुझे नहीं जलायेगा, इस भ्रमके वश हो कर दीपककी तरह, राजाको कोई अगुलिके पोरसे भी न छुए।

यह विचार कर, सामन्त लोग, उस दिनसे अत्यधिक भयचकित चित्त हो कर, प्रतिपद पर उसकी सेवा करने लगे।

*

१३१) राजाने पूर्वमें उपकार करने वाले उदयनके पुत्र वाग्भटदेव को अपना महामात्य बनाया और आलिगको तथा मह० उदयन देवको बडे (वृद्ध) प्रधान बनाये।

*

कुमारपालका चाहमान राजा आनाकके साथ युद्ध ।

१३२) चाहड नामक एक कुमार सिद्धराजका प्रतिपन्न (माना हुआ) पुत्र था। वह कुमारपालदेव की आज्ञा न मान कर सपादलक्षके राजाके पास सैनिक हो कर चला गया। वह श्री कुमारपालके साथ विग्रह करनेकी इच्छासे, वहाँके सभी सामन्त लोगोंको लाँच (रिश्वत) आदिके द्वारा अपने वशमें करके, प्रचड सेनाके साथ सपादलक्षके राजाको ले कर [गूर्जर] देशकी सीमा पर चढ आया। अब, चौलुक्य चक्रवर्ती (कुमारपाल) ने भी, प्रतिशत्रु बन कर, उस सैन्यके सामने अपना सैन्यसमूह जमा किया। जब लडाईका दिन तै हुआ और सीमायें निष्कटक की गई तथा चतुरङ्ग सेना सज्जित की गई, तो उसी समय पट

हस्तीके च उ लिंग नामक महावतने, किसी अपराधमें राजासे फटकार पा कर, क्रोधसे अंकुश-त्याग कर दिया। इसके बाद, अनेक गुणके पात्र ऐसे सा म ल नामक महावतको खूब वस्त्र और धन आदि दे कर उस पद पर नियुक्त किया। उसने 'क ल ह प ञ्चा न न' (युद्धका सिंह) नामक हाथीको सजा करके उसके ऊपर राजाका आसन रखा। ३६ प्रकारके अस्त्रोंको वहां जमा कर, फिर राजाको बैठाया और सब कला-कलापसे पूर्ण ऐसा वह स्वयं भी कलापक[1] पर पैर रख कर हाथी पर चढ़ा।

उस आसन पर बैठ कर चौलुक्य-चक्रवर्ती (कु मा र पा ल) ने देखा, तो मालूम हुआ कि, संग्रामके नायक पुरुषोंसे उठाये जाने पर भी, चा ह ड कु मा र के किये हुए भेदके कारण (फुट जानेसे), सामन्त लोग उसकी आज्ञाको नहीं मान रहे हैं। इस प्रकार सेनामें कुछ विप्लव देख कर उसने महावतको [आगे बढनेका] आदेश किया। सामनेकी सेनामें हाथी परका छत्र देख कर अनुमान किया कि वह स पा द ल क्ष का राजा [आ रहा] है। और यह निश्चय करके कि, सेनाके विघटित (विमुख) हो जाने पर मुझे अकेलेहीको लडना आवश्यक है, उस महावतको, सामनेके हाथीके पास, अपने हाथीको ले चलनेकी आज्ञा दी। पर उसे भी वैसा न करते देख बोला कि–'क्या तू भी फूट गया है?' इस पर उसने कहा–'महाराज! क ल ह प ञ्चा न न हाथी और सा म ल नामक महावत ये दोनों युगान्तमें भी फूटने वाले नहीं हैं; किन्तु सामनेके हाथी पर जो चा ह ड नामक कुमार चढा हुआ है वह ऐसी गंभीर आवाज़ कर रहा है कि जिसकी हाँकके डरसे हाथी भी भाग छूटते हैं। यह सुन कर राजाने [अपनी बुद्धिमत्तासे सोच कर] हाथीके दोनों कानोंको चादरसे बंद कर दिया और फिर शत्रुके हाथीसे जा भिड़ाया। इधर चा ह ड़ ने, यह जान कर कि वह च उ लिंग नामक महावत ही–जिसे उसने पहलेहीसे अपने वशमें कर लिया है–राजाके हाथी पर बैठा है, कु मा र पा ल को मारनेकी इच्छासे हाथमें कृपाण ले कर अपने हाथी परसे कूद कर 'कलहपंचानन' हाथीके कुंभस्थल पर पैर रखा। इतनेमें महावतने [बडी चालाकीसे] हाथीको पीछे हटा दिया। इससे वह चा ह ड कु मा र पृथ्वी पर गिर पड़ा और नीचे खडे हुए पैदल सैनिकोंने उसे पकड़ लिया। इसके बाद चौ लु क्य रा ज ने श्री आ ना क नामक स पा द ल क्ष देशके राजासे कहा कि–'हथियार संभालो!' ऐसा कह कर उसके मुख-कमल पर उचित समझ शिलीमुख (बाण) फेंकने लगा। (उचित इसलिये कि शिलीमुख भौंरेका भी नाम है और भौरोंका कमलकी ओर जाना उचित ही है।) 'तुम बड़े प्रधान क्षत्रिय हो न'–इस प्रकार उपहासके साथ प्रशंसा करते हुए, उसे भुलावेमें डाल कर, जो बाण मारा तो उससे घायल हो कर वह हाथीके कुंभस्थलसे गिर गया। 'जीत लिया, जीत लिया' कहते हुए जाराने स्वयं सारी सेनामें अपने हाथीको इधरसे उधर घूमाया और जो सब सामंत थे उनके घोड़ों पर आक्रमण करके उनको कैद किया।

इस प्रकार यह चाहड कुमारका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

कुमारपालका उपकारियोंको सत्कृत करना।

१३३) तत्पश्चात्, कृतज्ञ-सम्राट् चौलुक्यराजने आ लिं ग कुम्हारको सातसौं गाँववाली विचित्र चि त्र कू ट पट्टिका (चित्तोड, मेवाडकी भूमि) दी। वे अपने वंशके कारण लज्जित हो कर आज भी अपनेको 'सगर' (?) कहते हैं। जिन्होंने कटे हुए बब्बूलकी डालोंमें छिपा कर राजाकी रक्षा की थी वे अंगरक्षकके पदपर रखे गये।

---

१ हाथीपर चढनेके लिये रस्सीका बना हुआ छींकासा।

गायक सोलाककी कलाप्रवीणता।

१३४) एक बार, सोलाक नामक गायकने अवसर पा कर अपनी गानकलासे राजाको सतुष्ट किया, तो उसने इनाममें मात्र ११६ द्रम्म उसे दिये। इससे [वह असतुष्ट हो कर उन द्रम्मोंसे] सुखभक्षिका (गुड और आटेकी बनी हुई एक मीठाई) ले कर उसे बालकोंको बाँट दिया। राजाने इस पर कुपित हो कर उसे निर्वासित कर दिया। उसने, वहाँसे फिर विदेशमें जा कर [किसी एक] राजाको अपनी अनुपम गीतकलासे प्रसन्न किया और उससे इनाममें दो हाथी पाये। उनको ला कर उसने चौलुक्य राजको भेंट किये। राजाने [फिर] उसका सन्मान किया।

१३५) किसी समय, कोई विदेशी गवैया [राजाकी सभामें आ कर] यह कह कर जोरसे चिल्लाने लगा कि 'मैं लुट गया, लुट गया!' राजाने पूँछा—'किससे लुट गया?' तो उसने बताया कि मेरी अतुल गीतकलासे एक मृग समीप आ कर खडा रहा। मैंने कौतुक वश उसके गलेमें अपनी सोनेकी कण्ठी पहना दी। फिर भयसे वह भाग गया। इस लिये मैं उस हिरनसे लूटा गया हूँ। तब बादमें, राजाका आदेश पा कर उस सोला नामक गन्धर्वराजने वनमें जा कर अपनी मनोहर गीतविद्याके आकर्षण द्वारा सोनेकी कण्ठी-वाले उस मृगको आकर्षित करके ले आ कर राजाको दिखाया।

१३६) उसके इस कलाकौशलसे मनमें चकित हो कर, प्रभु श्री हेमाचार्यने उसकी गीतकलाकी कितनी शक्ति है सो पूछी। उसने सूखे काठको पल्लवित कर देने तक की [अपनी कलाकी] अवधि बताई। उसको इस कौतुकके दिखानेका आदेश दिया गया तो, उसने अर्बुद गिरि परसे निरहक नामक वृक्षको उखडवा कर मगवाया, और उसके शुष्क शाखाखण्डको राजमहलके आँगनमें, कुमारमृत्तिका (कुमारी मिट्टी=किसीने नहीं छूई हुई ऐसी कोरी मिट्टी) से भरे हुए आलवाल (क्यारी) में रख कर अपनी नवप्रशसित गीतकलासे तत्काल उसे पल्लवोंसे सुशोभित करके दिखा दिया और इस प्रकार राजाके साथ भट्टारक श्री हेमचद्रसूरिको उसने सन्तुष्ट किया।

इस प्रकार वइकार[1] सोलाकका प्रबध समाप्त हुआ।

*

कौंकणके राजा मल्लिकार्जुनका मन्त्री आंवड द्वारा उच्छेद।

१३७) इसके बाद, एक वार, जब चौलुक्य चक्रवर्ती (कुमारपाल)ने कौङ्कण देशके मल्लिकार्जुन नामक राजाके बदीके मुँहसे (उसका) "राजपितामह" ऐसा विरुद सुना, तो उससे राजाको इर्ष्या हुई और उसने उस दृष्टिसे सभाकी ओर देखा। राजाके चित्तकी बातको समझ लेने वाले मत्री आम्बडको हाथ जोडते देख कर राजा मनमें चकित हुआ। सभाविसर्जनके अनन्तर हाथ जोडनेका कारण पूछा। इस पर उसने कहा कि आपका यह आशय समझ कर कि—'क्या कोई ऐसा सुभट इस सभामें है, जिसे भेज करके, शतरजके खेलके राजाके समान इस नृपाभास मल्लिकार्जुनको उखाड कर फेंक दिया जाय'। मैं आपके आदेशको पूरा कर सकता हूँ, इस लिये मैंने हाथ जोडे। उसकी इस बातको सुन कर राजाने उसे सेनानायक बना कर और पञ्चाङ्ग पुरस्कार दे कर समस्त सामन्तोंके साथ विदा किया। वह बिना रुके चलता हुआ कौंकण देशमें पहुँचा और अगाध जलसे भरी कलविणी नामक नदीको पार करके सामनेके किनारे पर जा ठहरा। उसे इस प्रकार समामके लिये तैयार होता देख वह राजा मल्लिकार्जुन [अकस्मात् ही] प्रहार करता हुआ उसकी सेना-पर टूट पड़ा। इससे वह सेनापति (आम्बड) पराजित हो गया। तब फिर वह कृष्णवदन हो कर, काले वस्त्र

[1] यथानुक्रमसे जो गवैयाका कार्य करते थे उनको वइकार कहते थे।

धारण कर और कालेही तंबूमें निवास करता हुआ [पत्तन आया] वहाँ पर चौलुक्य भूपाल (कु मा र पा ल) ने उसे इस ढंगमें देखा तो पूछा कि 'यह किसका सैन्य पडा है?' इस पर उसे कहा गया कि 'कौंकणमें लौटे हुए पराजित सेनापति आम्रडके सैन्यका यह पडाव है।' उसकी ऐसी लज्जाशीलतासे चित्तमें चमत्कृत हो कर, प्रसन्नदृष्टिसे उसे आदरके साथ बुलाया और फिर अन्यान्य बलवान् सामन्तोंके साथ म ल्लि का र्जु न को जीतनेके लिये उसीको राजाने फिर भेजा। [वह इस बार कौंकण देशमें पहुँच कर] उस नदीको उतर कर उस पर पुल बँधवाया और फिर उस परसे सारे सैन्यको पार करके बडी सावधानीके साथ युद्धकी व्यवस्था की। घमासान युद्ध शुरू होने पर उस सुभट आ म्र ड ने हाथीके कन्धे पर सवार म ल्लि का र्जु न को ही लक्षित करके, बडी वीरवृत्तिके साथ उसके हाथीके दाँतरूपी मुशलकी सीढीसे, उसके कुंभस्थल पर चढ बैठा। उद्दाम रण-शौर्यसे मतवाला हो कर बोला कि—'पहले प्रहार करो, या इष्ट देवताका स्मरण करो।' यह कह कर [उसके सम्हलते ही] अपनी धाराल तलवारके प्रहारसे म ल्लि का र्जु न को पृथ्वी पर गिरा दिया। उधर सामन्त लोग नगर लूटनेमें संलग्न थे, इधर इसने खेलहीमें, जैसे सिंहशावक हाथीको [मार डालता है] वैसे ही [मल्लिकार्जुनको] मार डाला। फिर उसके मस्तकको सोने [के पतरे]से लपेट कर, उस देशमें चौलुक्य चक्रवर्तीकी आज्ञाकी घोषणा करता हुआ, अ ण हि ल्ल पु र जा कर, बहत्तर सामन्तोंके साथ सभामें बैठे हुए अपने स्वामी कु मा र पा ल नृपतिके चरणोंकी, उसके सिररूपी कमलसे पूजा की; तथा ये ४ चीजें भेंट कीं—१ शृंगारकोडी नामक साड़ी; २ माणिक नामक पिछोडा, ३ पापक्षय नामक हार, और ४ संयोगसिद्धि नामक क्षिप्रा। इनके सिवा ३२ कुंभ सुवर्ण, ६ मूडा मोती, चार दाँतवाला श्वेत हाथी, १२० पात्र (वारांगना) और १४॥ कोटी सुवर्ण दण्डके रूपमें उपस्थित किया। इससे अति प्रसन्न हो कर राजाने श्री आ म्र ड नामक महामण्डलेश्वरको श्रीमुखसे [उस म ल्लि का र्जु न का धारण किया हुआ वह] 'रा ज-पि ता म ह' विरुद समर्पण किया।

इस प्रकार यह मंत्री आम्रडका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

कुमारपालके साथ हेमचन्द्राचार्यके समागमका प्रसंग।

१३८) एक वार, अ ण हि ल्ल पु र में भट्टारक श्री हे म चं द्र सू रि ने अपनी **पाहिणि** नामक माताको, कि जिसने दीक्षा ली हुई थी, परलोक प्राप्तिके समय कोटि नमस्कारके पुण्यका दान किया। मृत्युके बाद [संघजन] जब उसका संस्कार महोत्सव करने जा रहे थे, तब त्रि पु रु ष धर्मस्थानके निकट [उसका शवविमान पहुंचा तो] वहाँके तपस्वियोंने स्वाभाविक मत्सरतावश, उस विमानका भंग करके आचार्यका खूब अपमान किया। उसकी उत्तरक्रिया करवा कर, उस अपमानके आघातसे कुपित हो कर उन्होंने [उस समय] मालवेमें स्थित कु मा र पा ल भूपतिके स्कंधावार (सेनानिवेश) को अलंकृत किया।

१७९. मनुष्यको [अभीष्ट कार्यसिद्धि प्राप्त करनेके लिये] या तो स्वयं राजा बनना चाहिये या किसी राजाको हाथमें करना चाहिये। [इन दो रास्तोंके सिवा] कामके सिद्ध करनेका तीसरा रास्ता नहीं है।

इस वचनके तत्त्वका विचार कर उन्होंने ऐसा किया। उनके इस तरह आनेका समाचार उ द य न मंत्री ने राजाको सुनाया तो कृतज्ञोंके शिरोमणि उस राजाने परम अनुरोधके साथ उन्हें अपने महलमें बुलवाया। राज्य पानेके शकुन ज्ञानको स्मरण करते हुए राजाने अनुरोध करके कहा कि—'आप सर्वदा देवताअर्चनके अवसर पर यहां आया करें।' इस पर सूरिने कहा—

१८० हम लोग भिक्षा माँग कर तो भोजन करते हैं, जूने-पुराने वस्त्र पहनते हैं और अकेली जमीन पर सो रहते हैं, तब फिर हम लोगोंको राजाओंसे क्या करना है।

उनके ऐसा कहने पर राजाने कहा—

१८१ मित्र एक ही [होना चाहिये], राजा या यति, भार्या एक ही [होनी चाहिये] सुन्दरी रमणी या दरी (कदरा), शास्त्र एक ही [होना चाहिये], वेद या अध्यात्म, और देवता भी एक ही [होना चाहिये] केशव या जिन।

महाकविके इस कथनके अनुसार मैं परलोककी साधनाके लिये आपकी मित्रता चाहता हू। 'किसी बातका निषेध न करना उसे स्वीकार कर लेना है'—इस उक्तिके कथनानुसार, सूरिके कुछ न कहने पर उस महर्षिकी चित्तवृत्तिको पहचान लेने वाले उस राजाने, लोगोंके आने जानेमें बाधा देने वाले द्वारपालोंको, श्रीमुखसे आज्ञा दी कि इन महर्षिको किसी भी समय आनेमें बाधा न दी जाय।

*

हेमाचार्यके समागमसे कुमारपालके पुरोहितका विद्वेष।

१३९) बादमें सूरिको वहाँ आते जाते देख और राजाको उनके गुणका गान करते देख, विरोध भावसे पुरोहित आलिग ने कहा—

१८२ विश्वामित्र, पराशर आदि तथा अन्य ऋषिगण, जो केवल जल और पत्ता खा कर रहते थे, वे भी स्त्रीके सुदर मुखकमलको देख कर मोहित हो गये, तो फिर जो मनुष्य घी, दूध और दहीका आहार करते रहते हैं उनका इन्द्रियनिग्रह कैसा हो सकता है! अहो, यह इनका दम्भ तो देखिये।

उसके ऐसा कहने पर हेमचद्र ने कहा—

१८३ हाथी और सूअरका मास खाने वाला ऐसा जो बलवान् सिंह है वह, सुना जाता है कि वर्षमें केवल एक ही वक्त रति करता है, पर कर्कश शिलाकणको खाने वाला कबूतर रोज रोज कामी बना रहता है! इसमें क्या कारण है, सो तो बताओ?'

उसका मुँह बद कर देने वाले इस प्रत्युत्तरके बाद ही किसी [और] मत्सरीने कहा, कि ये श्वेताम्बर तो सूर्यको भी नहीं मानते। उसके ऐसा कहने पर—

१८४ लोकको धारण करने वाले सूर्यको [वास्तवमें] हमीं लोग हृदयमें धारण करते हैं। क्यों कि उसको अस्तगमन रूप सकट उपस्थित होने पर [हम तो] अन्न-जल भी छोड देते हैं।

इस प्रमाणकी निपुणताके आधार पर, हमीं लोग वस्तुत सूर्यभक्त हैं, ये नहीं [यह सिद्ध कर दिया]। इससे उसका मुँह बन्द हो गया। फिर एक बार देवतावसर (देवपूजाकी समाप्ति) हो जाने पर, मोहान्धकारको नष्ट करनेमें चद्रमाके समान श्री हेमचद्र के आने पर यशश्चद्र गणि ने रजोहरणके द्वारा आसन पट्टको साफ कर वहाँ कम्बल बिछाया, तो राजाने [उसका] तत्त्व न समझते हुए पूछा कि 'क्या बात है?' उन्होंने कहा—'कदाचित् यहाँ कोई जन्तु हो, इस लिये उसको हटा देनेके लिये यह प्रयत्न होता है।' राजाने इस पर यह युक्ति-युक्त बात कही कि—'यदि प्रत्यक्ष कोई जन्तु देखा जाय तो ऐसा करना उचित है, न कि यों ही वृथा प्रयास करना ठीक होता है।' इस पर उन सूरिने कहा—'आप क्या [अपनी] हाथी घोडेकी सेनाको शत्रु राजाके चढ आने पर ही तैय्यार करते हैं, या पहले भी?' जैसे वह राजव्यवहार है वैसे ही यह धर्म व्यवहार है। उनके इस प्रकारके गुणोंसे हृदयमें रजित हो कर राजा, अपनी पहलेकी हुई प्रतिज्ञाके

अनुसार, उन्हें अपना राज्य देने लगा, तो उन्होंने सर्व शास्त्रका विरोधहेतु बतलाते हुए उसका अस्वीकार किया। क्यों कि कहा है कि –

१८५. हे युधिष्ठिर, जैसे जले हुए बीजका पुनः उद्गम नहीं होता वैसे राज-प्रतिग्रहसे (राजाके दिये हुए दानसे) दग्ध हुए ब्राह्मणोंका [फिर ब्राह्मण कुलमें] पुनर्जन्म नहीं होता।

यह पुराणमें कहा गया है। उसी प्रकार जैन शास्त्र भी [कहते हैं]–'गृहस्थके वहाँ भिक्षा मिलती हो तो फिर 'राजपिण्ड' (राजाके दान) की इच्छा क्यों करनी चाहिए'।

इस प्रकार [प्रभु हेमचन्द्राचार्यका कहा हुआ सुन कर] उक्त विषयके ज्ञानसे चित्तमें चमत्कृत हुआ और वह पत्तन पहुँचा।

*

कुमारपालका सोमेश्वर तीर्थके जीर्णोद्धारका प्रारंभ करवाना।

१४०) एक बार, राजाने मुनिसे पूछा–'क्या किसी तरह मेरा भी यशका प्रसार कल्पान्त-स्थायी हो सकता है?' उसकी इस बातको सुन कर उन्होंने कहा–'[यह दो तरहसे हो सकता है–] या तो विक्रमादित्यके समान संसारको अनृण करनेसे, या सोमेश्वरका काष्ठमय मंदिर, जो समुद्रके पानीकी छाटोसे शीर्णप्राय हो गया है, उसका उद्धार करनेसे कीर्ति युगान्त तक स्थायी हो सकती है।' इस प्रकार चन्द्रमाकी चाँदनीकी भाँति श्रीहेमचंद्रकी वाणी सुन कर उल्लसित आनंदके समुद्रसे उस राजाने उसी महर्षिको पिता, गुरु और देवता मानते हुए और विजातीय अन्य ब्राह्मणोंकी निंदा करते हुए, प्रासादके उद्धारके लिये, उसी समय ज्योतिषीसे शुभ लग्न ले कर, पञ्चकुलको वहाँ भेजा और प्रासादके उद्धारका आरंभ कराया।

*

कुमारपालका उदयनसे मंत्री हेमचन्द्राचार्यका जीवनवृत्तान्त पूछना।

१४१) एक दूसरी बार, श्रीहेमचंद्रके लोकोत्तर गुणोंसे हृत-हृदय हो कर राजाने मंत्री उदयनसे पूछा कि–'इस प्रकारका यह पुरुष-रत्न, सकल वंशोंके भूषणरूप ऐसे किस वंशमें, समस्त पुण्यके प्रवेशवाले किस देशमे और सब गुणोंके आकर समान किस नगरमें पैदा हुआ है?' राजाके इस आदेश पर उस मंत्रीने जन्मसे आरंभ करके उनका पवित्र चरित्र इस प्रकार कह सुनाया–'अर्धाष्टम नामक देशके धुन्धुका नामक नगरमें मोढ वंशके चाचिग नामक व्यवहारीकी, सतियोंमें श्रेष्ठ और जैनधर्मकी शासन देवता समान साक्षात् लक्ष्मी जैसी पाहिणि नामक सहधर्मचारिणीके ये पुत्र हैं। चामुण्डा नामक गोत्र देवीके आद्याक्षरके नाम पर चांगदेव इनका नाम रखा गया था। इनकी अवस्था जब आठ वर्षकी थी, उस समय [इनके गुरु] श्रीदेवचन्द्राचार्य पत्तनसे तीर्थयात्राके लिये प्रस्थान कर धुन्धुक्कक गांवमें गये। वहाँ मोढवसहिकामें देवको नमस्कार करने जब गये तो यह लड़का समवयस्क बालकोंके साथ खेलता हुआ, अचानक सिंहासनके पास रखी हुई उन आचार्यकी गद्दी पर जा बैठा। इस बालकके अंग-प्रत्यंगमें संसारसे विलक्षण लक्षणोंको देख कर उन्होंने (देवचन्द्राचार्यने) कहा–'यह यदि क्षत्रिय कुलमें पैदा हुआ है तो सार्वभौम चक्रवर्ती होगा, यदि वणिक् या ब्राह्मण कुलमें पैदा हुआ होगा तो महामंत्री होगा और यदि दर्शन (संप्रदाय = धर्ममत) का स्वीकार करेगा तो युग-प्रधानकी नांई कलि-कालमें भी सत्ययुग ले आयेगा'। आचार्यने यह सोच कर, उसको प्राप्त करनेकी इच्छासे उस नगरके रहने वाले व्यवहारियोंको साथ ले, वे चाचिगके घर गये। वह उस समय अन्य ग्राममें गया हुआ था। उसकी विवेकवती पत्नीने स्वागत-सत्कारसे उन्हें सन्तुष्ट किया। उनके यह कहने पर कि–श्रीसंघ (गाँवका मुख्य श्रावक समूह) तुम्हारे पुत्रको माँगने यहाँ आया है।' उसने हर्षके आँसू

कहा कर अपनेको रत्नगर्भा माना। तीर्थंकरोंको भी माननीय ऐसा संघ मेरे पुत्रको माँग रहा है, यह बडे हर्षकी बात है, फिर भी मुझे विषाद होता है। क्यों कि इसका पिता नितांत मिथ्या-दृष्टि (जैन धर्ममें अश्रद्धालु) है और वैसा हो कर भी वह इस समय गाँवमें नहीं है। उन व्यवहारियोंने कहा कि [उसका कुछ विचार न कर इस पुत्रको] तुम दे दो। उनके ऐसा कहने पर, माताने अपना दोष उतार देनेकी इच्छासे, दाक्षिण्यके वश हो कर अमात्र-गुणपात्र ऐसे अपने उस पुत्रको उन गुरुको दे दिया। तदनन्तर उस (माँ) ने जाना कि उन (आचार्य) का नाम देवचंद्र सूरि हैं। गुरुने उस बालकसे पूछा कि—'तुम शिष्य बनोगे?' तो उसने 'हाँ' ऐसा कहा और वह लौटते हुए गुरुके साथ चल पडा। वहाँसे वे कर्णावती शहरमें आये। वहाँ पर उदयन मंत्रीके पुत्रोंके साथ वह बालक पालकों द्वारा पाला जाने लगा। इतनेमें बाहर गाँवसे आये हुए चाचिगने वह सारा वृत्तान्त सुना तो, जब तक पुत्रका मुँह न देखने मिले तब तक, अन्नका त्याग कर उन गुरुका नाम पूछता हुआ कर्णावती पहुँचा। आचार्यके वसतिस्थानमें जा कर उस कुपित पिताने कुछ थोडासा प्रणाम किया। गुरुने पुत्रके अनुहारेसे उसे पहचान लिया, और फिर विचक्षणताके साथ विविध प्रकारके सत्कारोंसे उसे आवर्जित कर, उदयन मंत्रीको वहाँ बुलाया। धर्मबंधु कह कर वह उसे अपने भवनमें ले गया और बडे भाईकी तरह भक्तिपूर्वक उसे भोजन कराया। फिर चांगदेव नामक उस लडकेको उसकी गोदमें रख कर पञ्चाङ्ग पुरस्कारके साथ तीन दुकूल (बहुमूल्य वस्त्र) और तीन लाख रोकड द्रव्य भक्तिके साथ भेंट किया। उस (उदयन) से चाचिगने कहा—'एक क्षत्रियके मूल्यमें १ हजार अस्सी, घोडेके मूल्यमें १७५०, और अत्यन्त मामूली भी बनियेके मूल्यमें ९९ हाथी, अर्थात् ९९ लाख होते हैं। तुम तो तीन लाख दे कर उदारताके बहाने कृपणता बता रहे हो। पर मेरा पुत्र तो अमूल्य है और उस पर तुम्हारी भक्ति अमूल्यतम है। सो इसके मूल्यमें वह भक्ति ही मुझे बस है। द्रव्यसंचय मेरे लिये शिवनिर्माल्यकी भाँति अस्पृश्य है।' चाचिगके इस प्रकार कहने पर अत्यंत आनन्दित चित्तसे उत्कंठित हो कर उस मंत्रीने आलिंगन करके उसे धन्यवाद दिया, और फिर बोला कि—'अपने पुत्रको मुझे समर्पित करनेसे तो, यह बालक मदारीके वानरकी नाई सब लोगोंको नमस्कार करता रहेगा और केवल अपमानका पात्र बनेगा। परंतु, गुरु महाराजको दे देने पर बालचंद्रमाकी भाँति त्रिलोकके नमस्कार योग्य होगा। अतः यथा-उचित विचार करके कहो।' ऐसा आदेश पा कर उसने कहा कि—'आपका जो विचार हो वही मुझे मान्य है।' ऐसा कहने पर उसको वह मंत्री गुरुके पास ले गया और उसने पुत्रको गुरुको समर्पित कर दिया। फिर तो चाचिगने स्वयं उसके प्रव्रजित होनेका उत्सव किया। बादमें [वह बालक] अप्रतिम प्रतिभायुक्त होनेके कारण, अगस्त्यकी नाई समस्त वाङ्मय रूप समुद्रको चुल्लूमें रख कर पी गया। समस्त विद्यास्थानोंका अभ्यास कर गुरुके दिये हुए 'हेमचंद्र' नामसे प्रसिद्ध हुआ। सकल सिद्धान्त और उपनिषद्का पारगामी और छत्तीस ही सूरिगुणोंसे अलंकृत समझ कर गुरुने उसे सूरि पद पर अभिषिक्त किया।' इस प्रकार उदयन मंत्रीकी कही हुई हेमाचार्यके जन्मादिकी यह प्रवृत्ति सुन कर राजा बडा प्रसन्न हुआ।

कुमारपालका सोमेश्वरके उद्धारकी समाप्तिके निमित्त नियम लेना।

१४२) फिर श्रीसोमनाथ देवके प्रासादके आरंभके लिये जब दृढ शिलाका आरोपण हो गया तो राजाने श्री हेमचंद्र गुरुको पंचकुलकी भेजी हुई वर्द्धापना (बधाई) की विज्ञप्ति दिखाते हुए कहा कि—'यह प्रासादारंभ किस प्रकार निर्विघ्नरूपसे समाप्त हो [सो उपाय बताइए]'। राजाके कहने पर श्री गुरुने कुछ विचार कर कहा कि—'इस धर्मकार्यमें कोई विघ्न न उत्पन्न हो उसके लिये दो-मेंसे एक काम करना होगा—

या तो ध्वजारोप हो तब तक शुद्ध भावसे ब्रह्मचर्य पालन करना या मद्य-मांसका नियम लेना (त्याग करना)' ऐसा कहने पर, उनकी बात सुन कर मद्य-मांसके नियमकी अभिलाषा करते हुए, उसने शिवके ऊपर जल छोड़ कर उक्त शपथको ग्रहण किया। दो वर्षके बाद, जब कि, उस मंदिरमें कलश और ध्वजका आरोपण कार्य पूरा हुआ, उसने नियमसे मुक्त होनेकी अनुज्ञा पानेके लिये गुरुसे कहा। उन्होंने कहा कि–' अपने इस समुद्धृत कीर्तन (मन्दिर) के साथ यदि चंद्रचूड (शिव) के दर्शन करनेकी इच्छा हो तो यात्रा करनेके बाद ही नियम छोड़ना उचित होगा।' ऐसा कह कर मुनिवर हेमचंद्र वहांसे चले गये। उनके गुणोंसे नीलीके रंगकी भाँति दृढरूपसे हृदयमें अनुरक्त हो कर वह राजा सभामें केवल उन्हींकी प्रशंसा करने लगा।

*

हेमचन्द्राचार्यका सोमेश्वरकी यात्रा निमित्त कुमारपालके साथ जाना।

तब, निष्कारण वैरी ऐसा कोई परिजन उनके तेजःपुञ्जको न सह कर, इस मसलके अनुसार कि–

१८६. उज्ज्वल गुणवालेको अभ्युदित होता देख कर क्षुद्र मनुष्य किसी तरह उसे नहीं सहन कर सकता। जैसे पतिंगा अपने शरीरको जला कर भी दीप्त दीपशिखाको बुझा देना चाहता है।

पीठका मांस भक्षण करनेके दोषको अंगीकार करके (पीठ पीछे चुगली खा करके) भी उनका अपवाद करने लगा कि–' यह बड़ा चालाक, हां जी हां करने वाला और सेवाधर्म कुशल है, जो केवल महाराजकी मरजीकी ही बात कहता रहता है। यदि ऐसा नहीं है, तो प्रातःकाल आप सोमेश्वरकी यात्रामें साथ चलनेको उससे कहें। आपके ऐसा कहने पर वह परधर्मके तीर्थका परिहार करके किसी कारण वहाँ नहीं आवेगा। और हम लोगोंका मत ही प्रमाणभूत माल्रम देगा।' राजाने उसकी बातका स्वीकार करके प्रातःकाल जब, श्री हेमचंद्राचार्य आये तो, सोमेश्वरकी यात्रामे साथ चलनेके लिये उनसे अभ्यर्थना की। इस पर श्री सूरि बोले कि ' बुभुक्षित (भूखे) के लिये निमंत्रणकी क्या [ज़रूरत है] और उत्कंठितके लिये केकारवके श्रवणके कहनेकी क्या आवश्यकता है–इस कहावतके अनुसार उन तपस्वियोंके लिये, जिनका तीर्थयात्रा करना तो एक अधिकारसा धर्म है, उन्हें राजाके आग्रहका क्या प्रयोजन?' इस तरह जब गुरुने अंगीकार किया, तो राजाने कहा कि– ' आपके लिये पालकी आदि क्या सवारी दी जाय?' गुरुने कहा कि–'हम लोग पांवोंसे चल कर ही पुण्य प्राप्त करते है। किन्तु हम थोडे थोडे चल कर श्री शत्रुंजय, उज्जयंत (गिरनार) आदि तीर्थोंको नमस्कार करते हुए आपसे [सोमनाथ] पत्तनमें प्रवेश करनेके समय आ मिलेंगे।' ऐसा कह कर उन्होने वैसा ही किया। राजा अपनी सारी राज्यऋद्धिके साथ प्रस्थान कर कुछ पडावोंके बाद पत्तनको पहुँचा। वहाँ श्री हेमचन्द्र मुनीन्द्र भी आ मिले जिससे वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। गण्ड० श्री बृहस्पतिने सम्मुख आ कर अगवानी की और महोत्सवके साथ उनको नगरमें प्रवेश कराया। श्री सोमनाथके प्रासादकी सीढ़ियों पर चढ़ कर, जमीन पर लेट कर उसे प्रणाम करनेके बाद, चिरकालसे दर्शनकी उत्कट आकांक्षाके कारण सोमेश्वरके लिंगका गाढ़ आलिंगन किया।

*

हेमाचार्यका शिवकी पूजा-स्तुति करना।

जैनधर्मसे द्वेष रखने वालोंके मुँहसे यह कथन सुन कर कि ' ये जिन देवके अतिरिक्त अन्य देवताओंको नमस्कार नहीं करते ' भ्रान्त चित्त वाले राजाने हेमचन्द्रसे यह बात कही कि–' यदि योग्य माल्रम दे तो इन मनोहर उपहारोंसे आप श्री सोमेश्वर देवकी पूजा करें।' ' अच्छी बात है ' ऐसा कह करके उन्होने शीघ्र ही राजाके कोशसे आये कमनीय अलंकारोंसे अलंकृत हो कर, राजाकी आज्ञासे श्री बृहस्पति द्वारा हाथका सहारा

पा कर [मूल] प्रासादकी चौकट पर चढ़ गये। मनमें कुछ सोच कर प्रकाशमें बोले कि–' इस प्रासादमें साक्षात् कैलासवासी महादेव रहते हैं, इस लिये रोमाचकटकित शरीरको धारण करते हुए, उपहारको दूना कर दिया जाय।' ऐसा आदेश करके शिवपुराणमें कहे हुए दीक्षा-विधिके अनुसार आव्हान-अवगुंठन-मुद्रा-मन्त्रन्यास-विसर्जन आदि स्वरूप, पचोपचार विधिसे शिवकी पूजा की। अन्तमें इस प्रकार स्तुति की–

१८७ जिस किसी धर्ममतमें, जिस किसी नाममें, तुम जो कोई भी हो, लेकिन दोष और कलुषतासे रहित ऐसे तुम एक ही भगवान् हो और इस लिये हे भगवन्! तुम्हें नमस्कार है।

१८८ पुनर्जन्मके अंकुरको पैदा करनेवाले राग आदि जिसके नष्ट हो गये हैं वह ब्रह्मा हो, विष्णु हो या शिव हो–उसे हमारा नमस्कार है।

इत्यादि स्तुतियाँ करते हुए, सब राजपुरुषोंके साथ विस्मययुक्त हो कर राजाके देखते रहने पर, हेमाचार्य दण्डवत् प्रणाम करके स्थित हुए। फिर बृहस्पतिकी बतलाई हुई पूजाविधिके अनुसार साभिलाष भावसे राजाने शिवका पूजन किया। इसके अनन्तर धर्मशिलामें बैठ कर तुलापुरुषदान, गजदान आदि महादान दे करके कर्पूरकी आरती उतारी।

कुमारपालकी तत्त्वजिज्ञासा और हेमाचार्यका शिवको प्रत्यक्ष करना।

फिर सभी राजपुरुषोंको हटा कर, शिवके गर्भगृहके अन्दर प्रवेश करके राजा बोला कि–' न महादेवके समान देव है, न मेरे समान राजा है और न आपके समान महर्षि। भाग्यवश इन तीनोंका सहज सयोग हुआ है। इस लिये, नाना दर्शनोंके भिन्न भिन्न प्रमाणोंके कारण जिस देवतत्त्वके बारेमें चित्त संदिग्ध हो रहा है, उस मुक्तिदायक सच्चे देवका वास्तविक स्वरूप, इस तीर्थभूमिमें आप सत्य सत्य रूपसे मुझे बताइये।' यह सुन कर श्री हेमचन्द्रने बुद्धिसे कुछ सोच कर राजासे कहा–' इन दर्शनोंके पुराने कथनोंको छोड दीजिए। मैं श्री सोमेश्वर देवको ही आपके प्रत्यक्ष कर देता हूँ। उन्हींके मुखसे मुक्तिमार्ग क्या है सो जान लीजिये।' यह वाक्य सुन कर बोला–' क्या यह भी सभव है?' इस तरह राजाके विस्मित होने पर [सूरिने कहा]– ' निश्चय ही यहाँ पर तिरोहित भावसे दैवत वर्तमान है। और हम दोनों गुरुके कथनके अनुसार इनके निश्चल आराधक हैं। तो फिर इस प्रकार, इस द्वन्द्वके सिद्ध होनेके कारण देवताका प्रादुर्भाव होना सरल है। मैं प्रणिधान (ध्यान) करता हूँ और आप कृष्ण अगुरुका उत्क्षेप (धूप) करें। और वह उत्क्षेप तब बन्द करियेगा, जब प्रत्यक्ष शिव आ कर निषेध करें।' इसके बाद दोनोंके इस प्रकार करने पर जब गर्भगृह धुएंसे भर कर अन्धकारमय हो गया और नक्षत्रमालाके समान उज्ज्वल प्रदीप्त दीपक जब बुझ गये, तो फिर अकस्मात्, जैसे मानों बारहों सूर्यका तेज फैल रहा हो ऐसा प्रकाश दिखाई देने लगा। उसे देख कर सभ्रमवश राजा अपनी आँखें मलता हुआ देखने लगा तो, जलाधारके ऊपर श्रेष्ठ जाम्बूनद (सुवर्ण) के समान द्युतिवाले, चक्षुसे दुरालोक्य, अपरूप असभव स्वरूपवाले एक तपस्वी दिखाई दिये। उसको पैरके अँगूठेसे ले कर जटा-जूट तक स्पर्श करके देवताका अवतार निश्चित किया और पचाङ्गसे पृथ्वीतल पर लुठित हो कर प्रणाम करके भक्तिसे राजाने विज्ञप्ति की कि–' जगदीश! आपका दर्शन करके आँखें कृतार्थ हुईं, अब आदेशका प्रसाद कर कर्णयुगलको कृतार्थ करो।' ऐसा कह कर राजाके चुप हो जाने पर, मोहरात्रिके लिये सूर्य स्वरूप उनके मुखसे, यह दिव्य वाणी प्रकट हुई–' राजन्! यह महर्षि सब देवताके अवतार हैं। पूर्ण परब्रह्मके अवलोकनसे, करतलमें रहे हुए मुक्ताफलकी तरह इन्हें त्रिकालका स्वरूप विज्ञात हैं। इस लिये इनका बताया हुआ मुक्तिमार्ग ही असंदिग्ध मुक्तिमार्ग है।' ऐसा कह कर शिव जब अंतर्धान हो गये तो, प्राणायाम पवनका रेचन कर और आसन बधको शिथिल करके ज्यों ही श्री हेमचन्द्रने ' राजन्!' यह शब्द कहा, तो तत्काल इष्ट

देवताके संकेतसे राज्याभिमानको छोड़ कर उसने कहा—'जीव ! पधारिये !' इस प्रकार विनयसे सिर नंवाता हुआ हाथ जोड़ कर बोला कि 'जो आज्ञा हो सो कहिये।' इसके बाद वहीं पर उसे यावज्जीवन मद्य-मांसके त्यागका नियम दिया और वहाँसे लौट कर वे दोनों क्षमापति (मुनि तो क्षमा=क्षान्तिके पति, राजा क्षमा=पृथ्वीके पति) अ ण हि ल्ल पु र आये।

*

कुमारपालका परमार्हत श्रावक बनना।

१४३) श्री जिनमुखसे निःसृत पवित्र वचनोंके श्रवण द्वारा प्रतिबुद्ध हो कर राजाने 'प र मा र्ह त' विरुदको धारण किया। उससे अभ्यर्थित हो कर प्रभु (हे म चं द्र)ने 'त्रि ष ष्टि श ला का पु रु ष च रि त' तथा वीस 'वी त रा ग-स्तु ति याँ' से युक्त पवित्र 'यो ग शा स्त्र' की रचना की। उनका आदेश पा कर अपने आज्ञानुवर्ती अठारह देशोंमे, चौदह वर्ष तक, सर्व प्रकारकी जीव-हत्याका निवारण किया।

[१२३] सतत आकाशमे विचरण करने वाले सप्तर्षिगण एक मृगीको भी व्याधोंके पाशसे मुक्त नहीं कर सके। परन्तु प्रभु श्री हे म सू रि अकेलेने ही चिरकाल तक पृथ्वी पर जीववध होनेका निषेध कर दिया।

[१२४] [आकाश स्थित] कलाकलाप पूर्ण ऐसे चन्द्रमासे [पृथ्वी स्थित] हे म च न्द्र सूरि अधिक उज्ज्वलकीर्ति हैं। क्यों कि, चन्द्रमाने तो केवल एक ही मृगका [अपनी गोदमें ले कर] रक्षण किया है जब हे म च न्द्र ने तो सब ही मृगोंका (सारे पशुगणका) रक्षण किया है।

राजाने उन उन देशोंमे १४४० नये विहार (जैन मन्दिर) बनवाये। सम्यक्त्व मूलक १२ व्रतोंको अंगीकार किया। अदत्तादान-विरमण-स्वरूप तीसरे व्रतकी व्याख्या सुन कर रुदती (रोती हुई विधवा नारियोंके) धनका ग्रहण पापोंका कारण है ऐसा समझ कर, उस कामके अधिकारी पंचकुलों (कर्मचारी गण) को बुला कर उसके आयपट्टको, जिसका [वार्षिक] प्रमाण ७२ लाख था, फाड़ कर, उस करको बन्द कर दिया। उस करके छोड़ देने पर विद्वानोने इस प्रकार स्तुति की—

१८९. जिस रुदतीवित्तको, कृतयुगमे पैदा होने वाले रघु-नहुष-नाभाग-भरत आदि जैसे राजा लोग भी छोड नहीं सके, उसे करुणावश हो कर मुक्त करने वाले कु मा र पा ल ! तुम महापुरुषोंके मुकुट-मणि हो।

प्रभु हे म सू रि ने भी इस तरह राजाका अनुमोदन किया कि—

१९०. अपुत्र पुरुषोंका धन ग्रहण करके [अन्य] राजा तो पुत्र होता है। किन्तु सन्तोषपूर्वक उसका त्याग करने वाले तुम तो सचमुच राज-पितामह हो।

*

मंत्री उदयनका सौराष्ट्रके युद्धमें मारा जाना।

१४५) फिर, सु रा ष्ट्र दे श के स उं स र [ठाकुर] से युद्ध करनेके लिये उ द य न मं त्री को दलका नायक बना कर सारी सेनाके साथ भेजा गया। वह व र्द्ध मा न पु र (आधुनिक वं ढ वा ण) मे पहुँच कर [नजदीकहीमें रहे हुए श त्रुं ज य पहाड पर] श्री युगादिदेवको नमस्कार करनेकी इच्छासे, समस्त मंडलेश्वरोंको आगे चलनेकी अभ्यर्थना कर, खुद वि म ल गि रि (श त्रुं ज य) आया। विशुद्ध श्रद्धाके साथ देव-चरणोंकी पूजा करके ज्यों ही विधिपूर्वक चैत्यवंदना करने लगा, त्यों ही एक मूषक (चूहा) नक्षत्रमालासी प्रदीप्त दीपमालामेंसे एक दीपवर्तिका (दियेकी जलती हुई बाट) को ले कर काठके बने उस प्रासादके किसी बिलमें प्रवेश करने लगा, तो देवके अंगरक्षकोंने उसे छुडाया। इसे देख कर उस मंत्रीका समाधिभंग हो गया

और इस प्रकार उस काष्ठमय देवप्रासादका कभी विध्वंस होना सोच कर उसने उस मंदिरका जीर्णोद्धार करवाना चाहा। इस इच्छासे देवके सामने ही एकभक्त (एकाशन करने) आदिके नियम ग्रहण किये। फिर वहाँसे प्रयाण करके अपने पड़ाव पर आया। उस प्रत्यर्थी (शत्रु) के साथ युद्ध शुरू होने पर शत्रुद्वारा राजाकी सेनाका पराजित होना देख कर उ द य न स्वयं युद्धके लिये उठा। वह प्रहारोंसे जर्जरशरीर हो गया तो फिर निवासमें ले आया गया। [जीवनान्त समीप जान कर वह] सकरुण स्वरसे रोने लगा। स्वजनोंने इसका कारण पूछा, तो उसने कहा कि, मृत्यु निकट आ गया है और श त्रु ञ्ज य और श कु नि का वि हा र के जीर्णोद्धारकी इच्छाका देवऋण पीठ पर लगा रह गया। इस पर उन्होंने कहा—' आपके वा ग्भ ट और आ म्र भ ट नामक दोनों पुत्र अभिग्रह ले कर तीर्थोद्धार करेंगे। हम लोग इसके लिये प्रतिभू (जामीन) बनते हैं।' उनके इस प्रकार अंगीकार करनेसे अपनेको धन्य समझता हुआ वह मंत्री अन्त्याराधनाके लिये किसी चारित्रधारीको खोजने लगा। वहाँ पर कोई चारित्री न मिलनेसे किसी एक नौकरको साधुवेषमें ले आ कर उसको निवेदित करने पर, मंत्री उसके चरणोंको ललाटमें स्पर्श करता हुआ, उसीके सामने दस प्रकारकी आराधना करके वह श्रीमान् उ द य न परलोक प्राप्त हुआ। पीछेसे, चंदन वृक्षके परिमलसे वासित क्षुद्र वृक्षकी नाईं उस वठ (नौकर)ने अनशन व्रत ले कर रै व त क पर्वत पर अपने जीवनका अन्त कर दिया।

मंत्री वाग्भटका शत्रुञ्जयतीर्थोद्धार कराना।

१४५) तत्पश्चात्, अ ण हि ल्ल पु र पहुँच कर उन स्वजनोंने यह बात वा ग्भ ट और आ म्र भ ट को सुनाई। उन्होंने वैसा ही नियम ग्रहण करके जीर्णोद्धारका कार्य आरंभ किया। दो वर्षमें श्री श त्रु ज य का वह प्रासाद बन कर तैयार हुआ और उसकी खबर देनेके लिये आये हुए मनुष्यके बधाई देने बाद ही दूसरा मनुष्य आया जिसने कहा कि ' प्रासाद तो फट गया है।' तपे हुए सीसेके जैसी उसकी वाणीको कानोंमें सुन कर श्री कु मा र पा ल भूपालसे आज्ञा ले कर मंत्री स्वयं वहां जानेको उद्यत हुआ। श्रीकरणकी जो अपनी मुद्रा (मंत्रीके पदकी मुहर) थी वह मह क प र्दी को समर्पित की और स्वयं ४ सहस्र घोड़े ले कर श त्रु ज य की उपत्यकामें पहुँचा। वहाँ अपने नामसे वा ह ड पु र नामका नया नगर बसाया। शिल्पियोंने प्रासादके फट जानेका कारण बताते हुए कहा कि सभ्रम प्रासादमें पवन घुस कर निकलता नहीं, इस लिये मन्दिर फट जाता है, और जो प्रासाद भ्रमहीन बनाया जाय तो बनाने वाला निर्वंश हो जाता है [ऐसा शास्त्रका विधान है]। मंत्रीने यह सुन कर ऐसा विचार किया कि निर्वंश होना अच्छा है। इससे धर्म कार्य ही हमारा वंश होगा और पूर्व कालमें जीर्णोद्धार कराने वाले भ र त आदिकी पंक्तिमें हमारा भी नाम उल्लिखित होगा। इस प्रकार अपनी दीर्घदर्शिनी बुद्धिसे सोच कर उस मंत्रीने भ्रम और दीवालके बीचमें पत्थर भरवा दिये और प्रासादको निर्भ्रम बनवाया। तीन वर्षमें प्रासाद पूरा हुआ। उसके कलश दण्ड आदिकी प्रतिष्ठाके समय प त्त न के संघको निमंत्रित किया और महामहोत्सवके साथ सं० १२११ में मंत्रीने ध्वजारोपण कराया। पाषाणमय बिंब (मूर्ति) का परिकर म म्मा णी की खानमेंके किंमती पत्थरका बनवा कर स्थापित किया। श्री वा ह ड पु र में राजाके पिताके नामसे श्री त्रि भु व न पा ल वि हा र बनवा कर उसमें पार्श्वनाथकी स्थापना कराई। तीर्थपूजाके लिये नगरके चारों ओर २४ बागीचे बनवाये, नगरका पक्का कोट बनवाया और देवके पूजारियोंके ग्रास और वास आदिकी व्यवस्था कर, यह सब कार्य पूरा किया। इस तीर्थोद्धारके व्ययमें [यह बात प्रसिद्ध है कि]—

१९१ जिसके, मंदिर बनानेमें १ करोड ६० लाख व्यय हुआ है, विद्वान् लोग उस श्री वा ग्भ ट दे व की [पूरी] वर्णना कैसे करें।

इस प्रकार शत्रुञ्जयके उद्धारका यह प्रबंध समाप्त हुआ।

*

मंत्री आम्रभटका शकुनिका विहारका उद्धार करवाना।

१४६) इसके बाद, समस्त विश्वके एक अद्वितीय ऐसे सुभट आ म्र भ ट ने पिताके कल्याणार्थ भृ गु पु र (भ रू च) में श कु नि का वि हा र प्रासादके उद्धारका कार्य प्रारंभ किया। उसके लिये गहरी नींव खोदते समय, न र्म दा न दी के निकट होनेके कारण अकस्मात् वह नींव धंस पड़ी और काम करने वाले मजदूर उसमें दब गये। उसने यह देख, कृपा-परवश हो कर, अपनी अत्यन्त निन्दा करते हुए, उसीमें अपने आपको भी गिरा दिया। इस अनुपम साहसके प्रभावसे वह विघ्न शान्त हो गया (सब लोक बच गये)। इसके बाद, शिलान्यासपूर्वक सारा प्रासाद तीन वर्षमें पूरा हुआ। कलश-दण्डकी प्रतिष्ठाका अवसर आने पर समस्त नगरोंके संघोंको निमंत्रण दे कर बुलाया गया और उन सबको यथोचित वस्त्र और आभरण आदि दे कर सत्कृत किया गया और फिर सबको यथास्थान वापस पहुँचाया गया। लग्न समयके निकट आने पर भट्टारक श्री हे म-चं द्र सू रि के नेतृत्वमें राजाके साथ अ ण हि ल्ल पु र के संघको निमंत्रित कर उसे अतुलित वात्सल्यादि तथा भूषण आदि दानों द्वारा सन्तुष्ट करके, ध्वजाधिरोपणके लिये घरसे चला। इस समय अपने सारे घरको मानों याचक-जनोंसे लुटवा दिया। श्री सुव्रतदेवके प्रासादमें महाध्वजके साथ ध्वजारोपण करके, अत्यधिक हर्षके कारण, वह अनालस्य भावसे नाच करता रहा। अन्तमे राजाकी अभ्यर्थना पर, उसने आरती उतारी। अपना घोड़ा द्वारपालको दान कर दिया। राजाने स्वयं उसको तिलक किया। बहत्तर सामन्त चामर और पुष्प वर्षा आदिसे उत्साह बढ़ा रहे थे। उस समय आये हुए बंदीको अपना कंकण दे दिया। अन्तमें राजाने हाथ पकड़ कर जबर्दस्ती उसे बैठाया और आरती और मंगल प्रदीप उतरवाये। श्री सुव्रतदेवके तथा गुरूके चरणमें प्रणाम करके, बन्धुओंको वन्दना आदि करके, राजासे शीघ्र आरती उतरवानेका कारण पूछा। राजाने कहा – 'कि जैसे जुआडि अत्यधिक द्यूत-रसके आवेशमें अपने सिरको भी दाँव पर रख देता है, वैसे ही तुम भी इसके बाद कहीं अर्थियोंके माँगनेसे त्यागके आवेशमें आ कर अपना सिर भी उन्हें न दे डालो'। राजाके इस प्रकार कह चुकने पर, उसके लोकोत्तर चरित्रसे हृत-हृदय हो कर श्री हे मा चा र्य ने भी, जिन्होंने जन्मकालसे ही किसी मनुष्यकी स्तुति नहीं की थी, कहा –

१९२. उस कृतयुगसे [हमे] क्या [मतलब] है जिसमें तुम नहीं थे। और जिसमें तुम [विद्यमान] हो वह कलि कैसा। और यदि कलिहीमें तुमारा जन्म होता है तो वह कलि ही सदा रहो – कृतसे क्या मतलब है।

इस प्रकार आ म्र भ ट की अनुमोदना करके दोनों क्षमापति, जैसे आये थे वैसे ही वापस गये।

*

आम्रभटका शाकिनीग्रस्त होना।

१४७) इसके बाद, जब हे म चं द्र अपने स्थान पर पहुँचे तो उन्हें यह विज्ञप्ति मिली कि आकस्मिक रीतिसे देवी (शाकिनी) के दोषसे ग्रस्त हो कर आ म्र भ ट की अन्तिम दशा उपस्थित हो गई है और आपको शीघ्र बुलाया गया है। उन्होंने तत्काल ही समझ लिया कि 'वह महामना जब प्रासादके शिखर पर नृत्य कर रहा था उसी समय मिथ्यादृष्टि देवियोंका कुछ दोष उसे हुआ है।' यह सोच कर, सायंकाल ही को तपोधन य श श्च न्द्र को साथ ले, आकाशगामिनी शक्तिसे उड़ कर निमेषमात्रमें, भृ गु पु र की प्रान्तभूमिको अलंकृत किया और सै न्ध वा दे वी का अनुनय करनेके लिये कायोत्सर्ग किया। उस देवीने जीभ निकाल कर उनका अपमान किया। तब उखलमें शालि-चावल डाल कर य श श्च न्द्र ग णि ने मूशलसे प्रहार करना शुरू किया। पहली बारके प्रहारमें प्रासाद कॉपने लगा, दूसरी बार प्रहार देने पर वह देवी ही अपने स्थानसे उखड़ कर – 'इस वज्र-

पाणिके वज्रप्रहारसे बचाओ – बचाओ ' कहती हुई प्रभुके चरणों पर आ कर गिर गई। इस तरह अपनी अनिन्द्य विद्याके बल पर उस दोषके मूलभूत मिथ्यादृष्टिवाले व्यन्तरों (भूत पिशाचों) का निग्रह करके श्री सुव्रतदेवके प्रासादमें आये। वहाँ पर–

१९३ ससाररूप समुद्रके लिये सेतु, कल्याण-पथकी यात्राके लिये दीप-शिखा, विश्वके आधारके लिये आलबन यष्टि, परमतके व्यामोहके लिये केतुका उदय, अथवा हमारे मनरूपी हाथियोंके बन्धनके लिये दृढ आलान रूप लीलाको धारण करने वाले ऐसे श्री सुव्रतस्वामीके चरणोंकी नख-रश्मियाँ [सबकी] रक्षा करें।

इस प्रकारकी स्तुतियोंसे श्री मुनिसुव्रतकी उपासना करके, श्री आम्रभटको उछाव स्नानसे सुस्थ करके, जैसे गये थे वैसे ही [अपने स्थान पर] लौट आये। श्री उदयन चैत्य शकुनिका विहारके घटी गृहमें राजाने कौङ्कण नृपतिके [छीने हुए] तीन कलश तीन जगह स्थापित किये।

इस प्रकार यह राज-पितामह श्री आम्रभटका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

कुमारपालका विद्याध्ययन करना।

१४८) इसके बाद, एक दूसरी बार, कपर्दी मन्त्री का अनुमत कोई विद्वान्, राजा कुमारपाल के भोजन कर लेनेके बाद कामन्दकीय नीतिशास्त्र के इस श्लोकको पढ़ रहा था–

१९४ राजा मेघकी नाईं समस्त भूत-मात्रका आधार है। मेघके निष्फल होने पर भी जीवन धारण किया जा सकता है पर राजाके निष्फल होने पर नहीं।

तब, इस वाक्यको सुन कर राजाने कहा कि–' अहो राजाको मेघकी ' ऊपम्या ! ' इस पर सभी सामाजिक लोक राजाका न्युंछन करने लगे। पर उस समय कपर्दी मन्त्रीने अपना सिर नीचा कर लिया। यह देख कर राजाने एकान्तमें उससे [कारण] पूछा। उसने कहा – ' महाराजने जो ' ऊपम्या ' शब्दका उच्चारण किया वह सब व्याकरणोंकी दृष्टिसे अपशब्द (अशुद्ध) है, और इस पर भी इन खुशामती अनुवर्तियोंने न्युंछन किया। उनके ऐसा करने पर मेरा तो दोनों प्रकार सिर नीचा करना ही समुचित है। शत्रु राजाओंमें इस प्रकारकी अपकीर्ति फैलती है कि ' अराजक जगत्का होना अच्छा है किन्तु मूर्ख राजाका होना अच्छा नहीं।' जिस अर्थमें आपने यह शब्द कहा है उस अर्थमें उपमान, उपमेय, औपम्य, उपमा इत्यादि शब्द कहे जाते हैं। उसकी इस बातको [आदरके साथ] हृदयमें ग्रहण करके, अनन्तर, ५० वर्षकी उम्रमें, उस राजाने शब्द व्युत्पत्तिका ज्ञान करनेके लिये किसी उपाध्यायके निकट मात्रिका-पाठसे आरंभ कर (अआसे लेकर) शास्त्र पढ़ना आरंभ किया और एक वर्षके भीतर [व्याकरणकी] तीनों वृत्ति और तीनों काव्य पढ़ डाले। और फिर पण्डितोंसे 'विचार-चतुर्मुख' यह बिरुद प्राप्त किया।

इस प्रकार विचारचतुर्मुख कुमारपालके अध्ययनका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

बनारसके विश्वेश्वर कविका पत्तनमें आना।

१४९) किसी अवसर पर, विश्वेश्वर नामक कवि वाराणसीसे पत्तनमें आ कर प्रभु श्री हेमसूरिकी सभामें पहुँचा। वहाँ कुमारपाल राजाको विद्यमान देख कर उसने–

१९५. कंवल और दंड वाला यह हेम तुम्हारी रक्षा करें।

इस प्रकार कह कर वह ठहर गया। राजाने उसे क्रोधकी दृष्टिसे देखा। तब फिर–

जो षड्दर्शन रूप पशुओंको जैन-गोचर (चरागाह) में चरा रहे हैं।

यह उत्तरार्द्ध पढ़ा जिसे सुन कर सारी सभा प्रसन्न हुई। फिर कविने रामचन्द्रादि [कवियों] को समस्यायें पूर्ण करनेको दीं। '**व्याषिद्धा नयने०**' इस चरणवाली एक समस्याकी पूर्ति महामात्य कपर्दीने इस प्रकार की

१९६. 'इसकी ये सरल (बड़ी बड़ी) आंखें दोनों हथेलियोंसे ढांकी नहीं जा सकतीं, और अपने मुखरूपी चन्द्रमाकी चांदनीके प्रकाशसे यह सब कहीं दिखाई दिया करती है – इस लिये आँख मिचौनीके खेलमें अपनी चारों ओर रही हुई सखियोंके बीचमें बैठी हुई यह बाला [खेलनेसे] रोक दी गई है और इस लिये वह अपने मुख और आँखोंको रो रही है।'

[इस समस्यापूर्तिकी प्रतिभासे प्रसन्न हो कर] उस कविने पचास हजारकी कीमतका अपने गलेका हार निकाल कर कपर्दीके कण्ठमे यह कहते हुए डाल दिया कि 'यह तो श्रीभारतीका पद (स्थान) है।' उसकी सहृदयतासे चमत्कृत हो कर राजा उसे अपने पास रखने लगा, तो वह यह कह कर, राजा द्वारा सत्कृत हो कर, यथास्थान चला गया कि–

१९७. कर्णकी कथा तो अब शेष मात्र रह गई है। काशी नगरी मनुष्योंकी कमीके कारण क्षीणप्राय हो गई है। पूर्व (या उत्तर) दिशामें हम्मीर (म्लेच्छ) के घोडे सहर्ष हिनहिना रहे हैं। इससे यह मेरा हृदय तो अब, सरस्वतीके आलिंगनमे प्रवृत्त क्षारसमुद्रके साथ स्नेहवाले प्रभासक्षेत्रके लिये उत्कण्ठित हो रहा है।

*

हेमचन्द्रसूरिका समस्या पूरण करना।

१५०) किसी समय कुमारविहार देवमन्दिरमें राजा द्वारा आमंत्रित हो कर प्रभु श्रीहेमचंद्र, कपर्दी मंत्री द्वारा हाथका सहारा पा कर, जब सोपान पर चढ़ रहे थे [वहां पर नृत्योद्यत] नर्तकीके कञ्चुककी कसनीको तनती हुई देख कर कपर्दीने यह कहा–

१९८. हे सखि तेरा यह कञ्चुक सौभाग्यशाली है इस लिये इसका यह तनना युक्त ही है।

यह कह कर उसे जब आगे बोलनेमें विलंब करते देखा तो प्रभुने उत्तरार्ध इस प्रकार कह दिया–

जिसके गुणका ग्रहण पीठपीछे तरुणीजन करता है।

*

आचार्य और मंत्रीके बीचमें 'हरडइ'का वाग्विलास।

१५१) एक बार, सवेरे कपर्दी मंत्रीने श्री सूरिको प्रणाम करनेके बाद [उसके हाथमें कोई चीज देख कर] उन्होंने पूछा–'यह क्या चीज है?' उसने प्राकृत (देशी) भाषामें कहा–'हरडइ'–अर्थात् 'हर्रे'। प्रभुने कहा–'क्या अब भी?'। तब वह अपनी अनाहत प्रतिभा (प्रखर बुद्धि) के कारण उनके वचनच्छल (व्यंग्य) को समझ कर बोला–'अब तो नहीं'। क्यों कि अन्तिम होने पर भी वह आदिम हो गया और एक मात्रा अधिक भी हो गया। हर्षाश्रु पूर्ण आँखोंसे प्रभुने रामचंद्र आदिके सामने उसकी चतुराईकी प्रशंसा की। उन्होंने (रामचन्द्रादिने) तत्त्व न समझ कर पूछा कि 'बात क्या है?' प्रभुने कहा कि 'हरडइ' इसमें शब्दच्छलसे यह अर्थ लक्ष्य करके निकाला गया कि 'ह रडइ' अर्थात् हकार रोता (गुजराती रडता)

है। हमने इस पर कहा कि 'क्या अब भी?' यह कहते ही शब्दतत्त्वको जानने वाले इसने कहा कि 'अब तो नहीं।' क्यों कि पहले मातृका-शास्त्र (वर्णमाला) में हकार सबके अंतमें पढ़ा जाता था, अतएव वह रडता=रोता था, किन्तु अब तो मेरे नाम (हेमचंद्र) में वह पहले आ गया है और एक मात्रा अधिक भी हो गया है।

इस प्रकार यह हरडइ प्रबंध समाप्त हुआ।

*

उर्वशी शब्दकी व्युत्पत्ति।

१५२) एक बार, किसी पंडितने पूछा कि 'उर्वशी' शब्दका शकार तालव्य है या दन्त्य। इस पर प्रभु (हेमचंद्र) कुछ सोच कर कहने जा रहे थे कि कपर्दीने पत्र पर यह लिख कर उनके अंकमें फेंक दिया कि 'उरौ शेते उर्वशी' अर्थात् जो उरुमें शयन करे वह उर्वशी। इसीको प्रामाण्य समझ कर प्रभुने उस पंडितके आगे तालव्य शकार होनेका निर्णय कह सुनाया।

इस प्रकार यह उर्वशी-शब्द-प्रबंध समाप्त हुआ।

*

सपादलक्षके राजाके नामका अर्थखण्डन।

१५३) अन्य किसी समय, सपादलक्षके राजाका कोई सान्धिविग्रहिक कुमारपाल राजाकी सभामें आया। राजाने पूछा कि 'आपके स्वामी कुशल तो हैं?' अपनेको महापंडित समझने वाला वह मिथ्याभिमानी बोला—'विश्वको जो ले ले वह 'विश्वल' कहलाता है (—यह सपादलक्षके राजाका नाम था)। इस लिए उसकी विजयमें क्या सन्देह है?' राजाका इशारा पा कर श्रीमान् कपर्दी मंत्रीने कहा कि—'श्वल श्वल्ल धातु तो शीघ्र गत्यर्थक है। इसी श्वल धातुसे यह शब्द बना है, अतः इसका अर्थ तो यह हुआ कि—वि अर्थात् पक्षीकी भाँति जो श्वलन करता है—भाग जाता है वह 'विश्वल' है।' इसके बाद, उस प्रधानके द्वारा इस नाममें दोष समझ कर उस राजाने पंडितोंके पास निर्णय कराके 'विग्रहराज' ऐसा दूसरा नाम धारण किया। दूसरे वर्ष उसी प्रधानने कुमारपाल नृपतिके सामने 'विग्रहराज' यह नाम बताया। मंत्री कपर्दीने [यह अर्थ किया]—विग्र=विगतनासिक—नासिकाहीन, ह-राज अर्थात् रुद्र और नारायण। रुद्र और नारायणको जिसने नासिका हीन किया है वह इस 'विग्रहराज' का अर्थ है। तदनन्तर कपर्दीके नामखण्डनके भयसे उस राजाने 'कवि-बान्धव' ऐसा नाम धारण किया।

*

१५४) एक दूसरी बार, कुमारपाल राजाके आगे योगशास्त्रका व्याख्यान हो रहा था उसमें जब पञ्चदश कर्मादानका पाठ पढा जाने लगा तब "दन्तकेशनखास्थित्वग्रोम्णा ग्रहणमाकरे" प्रभुके रचे हुए इस मूल पाठमें पंडित उदयचन्द्र बार बार 'रोम्णा ग्रहणम् रोम्णा ग्रहणम्' यह पाठ बोलने लगा। तो प्रभुने पूछा कि—'क्या लिपि-भेद (अशुद्ध पाठ) हो गया है?'। उसने कहा—'प्राणितुर्याङ्गाणाम्' इस व्याकरण सूत्रसे तो एकत्व सिद्ध होता है, [सो यहाँ पर वैसा होना चाहिए]' ऐसे लक्षणविशेषको बता कर, प्रभु द्वारा प्रशंसित हुआ और राजाने न्युंछन करके उसकी सभाजना की।

इस प्रकार पं० उदयचंद्रका यह प्रबंध समाप्त हुआ।

*

कुमारपालका अभक्ष्यभक्षणके निमित्त प्रायश्चित्त करना ।

१५५) इसके बाद, वह राजर्षि एक समय घेवरका भक्षण कर रहा था। उस समय कुछ विचार मनमें आ गया जिससे उसने वह सारा आहार छोड़-छाड़ कर, पवित्र हो कर, प्रभुसे जा कर पूछा कि—' हमें घेवरका भक्षण करना चाहिये या नहीं ?' इस पर प्रभुने कहा—' वणिक् और ब्राह्मणको तो इसका भक्षण उचित है किन्तु जिस क्षत्रियने अभक्ष्यभक्षणका नियम किया है उसे नहीं करना चाहिए; क्यों कि उससे मांसाहारका स्मरण हो आता है। ' राजाने कहा ' यह बिल्कुल ठीक है ' और फिर पूर्व भक्षित अभक्ष्यका प्रायश्चित्त पूछा। [आचार्यने कहा—] ३२ दाँतोंके निमित्त ३२ जैन मंदिर एक पीठस्थान पर बनवा देने चाहिए। राजाने वैसा ही किया।

प्रभुके दिये हुए प्रतिष्ठालग्नमें प्रासादके मूल नायककी प्रतिष्ठा करानेके लिये, वटपद्रकसे कान्हू नामक व्यवहारी पत्तनमें आया। उसने उस नगरके मुख्य प्रासादमें अपने बिंबको रख दिया और उपहारादि ले कर बाहरसे जब वापस आया तो राजाके अंगरक्षकोंने द्वार पर उसे रोक दिया। कुछ समय बाद जब द्वारपाल उठ गये और प्रतिष्ठोत्सव भी समाप्त हो गया, तो वह भीतर प्रवेश करके प्रभु (हेमचन्द्र) के चरण-मूलमें लग कर, उपालंभ पूर्वक, खूब रोने लगा। और किसी तरह उसके दुःखका दूर होना न जान कर वे रंगमंडपसे बाहर आये और नक्षत्र-चार देखने लगे, तो देखा कि उनका दिया हुआ लग्न तो आकाशमें अब उदित हुआ है। खोटी घडीके हिसाबसे ज्योतिषीने जो पहले लग्नमुहूर्त दिया है [वह अशुद्ध है] और उस लग्नमें प्रतिष्ठित मूर्तियोंकी आयु तीन ही वर्षकी है। अब जो इस समय लग्न वर्तमान है उसमें बिंबकी प्रतिष्ठा होगी वह चिरायु होगा। उसने उसी समय अपने बिंबकी प्रतिष्ठा कराई। प्रभुने जैसा कहा था वैसा ही बादमें हुआ।

इस प्रकार अभक्ष्य-भक्षणके प्रायश्चित्तका यह प्रबंध समाप्त हुआ।

*

कुमारपालका अन्यान्य विहारोंका बनवाना ।

१५६) [राजाने यह स्मरण करके कि] मेरे अपहृत धनसे एक चूहा [उस समय] मर गया था। इस लिये उसका प्रायश्चित्त पूछा तो प्रभुने उसके कल्याणार्थ उसीके नामका एक विहार बनवानेको कहा सो उसने वह [मूषकविहार] बनवाया।

१५७) इसी प्रकार, किसी व्यवहारीकी उस वधूने, जिसके जाति, नाम, ग्राम, संबंध कुछ भी उसे नहीं मालूम हुए, रास्तेमें तीन दिन तक बुभुक्षित नृपतिको चावलके करंबेसे सन्तुष्ट कर रक्षा की थी, उसकी कृतज्ञताके निमित्त, उसके पुण्यकी अभिवृद्धिके लिये पत्तनमें राजाने ' करम्बकविहार ' बनवाया।

१५८) इसी तरह, यूकाविहार भी इस प्रकार [बना]—सपादलक्ष देशमें कोई अविवेकी धनी था। उसकी प्रियाने केश-संमार्जनके अवसर पर उसकी हथेली पर एक यूका (जूं) पकड कर रखी। उसने उस पीड़ाकारिणीको तर्जन करके, मसल कर मार डाला। निकटवर्ती अमारिकारी पंचकुल (जीवहिंसा प्रतिबन्धकी देखभाल करनेवाले अधिकारी) ने उसे पकड़ कर अणहिलपुरमें राजाके सामने ले आ कर निवेदित किया। इसके बाद प्रभुके आदेशसे उसके दण्डस्वरूप उसका सर्वस्व ले कर वहीं पर (उसी गांवमें ?) यूका विहार बनवाया।

इस प्रकार यूका विहारका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

१५९) इसके बाद, स्तम तीर्थके सामान्य सालिगवसहिका नामक प्रासादका, जिसमें प्रभुकी दीक्षा हुई थी, रत्नमय बिंबसे अलंकृत कर, अनुपम जीर्णोद्धार कराया।

इस प्रकार सालिगवसहिकाके उद्धारका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

मठपति बृहस्पतिका अविनय।

१६०) बादमें, सोमेश्वर पत्तनके कुमार-विहार-प्रासादमें बृहस्पति नामक गण्ड (मठाधिपति), कोई अप्रिय कार्य करनेके कारण, प्रभु (हेमसूरि) की अप्रसन्नताका पात्र हुआ और वह पदभ्रष्ट किया गया। बादमें, अणहिलपुरमें आ कर, षड्विध आवश्यक क्रिया करता हुआ सन्मानका पात्र हो कर प्रभुकी सेवा करने लगा। एक बार चातुर्मासिक पारणके समय प्रभुके चरणोंमें द्वादशावर्त वंदना करके बोला—

१९९ हे नाथ, चार मास तक आपके इस चरणयुगके पास बैठ कर कषाय (राग द्वेष रूप क्लेश) का नाश करनेके लिए विकृतिपरिहार (रसवाले अन्नका त्याग) रूप व्रत मैंने किया है। अब, हे मुनितिलक! आपके चरण कमलने निर्लोठित कर दिया है उद्रेदक कलि जिसका, ऐसे मुझको, पानीसे भीगे हुए अन्न ही की वृत्ति मिला करे।

वह ऐसी विज्ञप्ति कर रहा था कि उसी समय राजा वहाँ आ गया और उसने प्रभुको प्रसन्न देख कर, उसे पुनः अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

इस प्रकार यह बृहस्पति प्रबंध समाप्त हुआ।

*

मंत्री आलिगकी स्पष्टवादिता।

१६१) एक बार, सर्वावसर (राजसभा) में बैठे हुए राजाने आलिग नामक [वृद्ध] प्रधान पुरुषसे पूछा कि—'मैं [गुणादिमें] सिद्धराजसे हीन हूँ, अधिक हूँ या समान हूँ।' उसने, किसी प्रकारके छल भावका विचार न करनेकी प्रार्थना करके कहा कि—'श्री सिद्धराजमें ९८ तो गुण थे और दो दोष थे, और महाराजमें दो गुण हैं और ९८ दोष हैं।' उसके ऐसा निवेदन करने पर राजा अपने आपको दोषपूर्ण जान कर, अपने जीवन पर विरक्त हो उठा और आँखोंमें छुरी भोंकना (जीवनका अन्त कर देना) चाहा तो उसके आशयको समझ कर उस वृद्धने कहा कि—'श्री सिद्धराजके जो ९८ गुण थे, वे संग्राममें कायरता और स्त्रीलम्पटताके इन दो दोषोंमें छिप जाते थे। आपके जो कृपणता आदि दोष हैं, वे युद्धमें दिखाई देनेवाली शूरता और परस्त्रीके विषयमें रही हुई सहोदरताके इन दो [महान्] गुणोंमें ढक जाते हैं'—उसके इस वचनसे राजा फिर स्वस्थ हुआ।

इस प्रकार यह आलिगप्रबंध समाप्त हुआ।

*

प० वामराशिको क्षमा प्रदान करना।

१६२) पहले, सिद्धराजके राज्य समयमें, पांडित्यकी स्पर्द्धामें सामना करने वाला वामराशि नामक ब्राह्मण, प्रभु (हेमचंद्र) की इस विशिष्ट प्रतिष्ठाको सहन न कर [निंदा करते हुए] बोला कि—

२०० जिसके (शरीर पर) लटकते हुए कम्बलमें करोड़ों यूकाओंकी पंक्ति किलबिला रही है, दाँतोंकी मलमंडलीकी दुर्गंधसे जिसका मुँह भरा हुआ है, जिसके नासा-वंशके निरोधसे पाठकी प्रतिष्ठा गिनगिनाट कर रही है और जिसके सिरकी टाल पिलपिला रही है वह 'हेमड' नामक

सेवड (श्वेताम्बर साधु) आ रहा है ।

इस प्रकारका अत्यधिक निंदास्पद कथन सुन कर, अन्तःकुटिल पर बाहरसे सरल दिखाई देनेवाले तिरस्कार पूर्ण वचनसे प्रभुने कहा कि – ' अरे पंडित ! तुमने क्या यह भी नहीं पढा कि विशेषणका प्रयोग पहले किया जाना चाहिए। अत्र से 'सेवड-हेमड' ऐसा कहना (हेमड-सेवड) नहीं । सेवकोंने [यह सुन कर] उसे भालेकी नोकसे घोदा कर छोड़ दिया । राजा कुमारपालके राज्यमें शस्त्रवध नहीं किया जाता था, इस लिये उसकी वृत्तिका छेद कर दिया गया । इसके बाद, कण-कणकी भीख माँग कर अपना प्राण धारण करता हुआ वह प्रभुकी पौषधशालाके सामने आ कर बैठा । उस समय वहाँ पर अनादि भूपति नामक मठके तपस्वियों द्वारा अधीयमान योगशास्त्रका श्रवण करके, उसने फिर सच्चे हृदयसे यह काव्य कहा कि –

२०१. जिन अकारण दारुण मनुष्योंके मुँहसे आतंकका कारण ऐसा गाली-रूपी गरल (विष) निकला है उन जटा धारण करने वाले फटाधरों (सर्पों) के मंडलका, यह योगशास्त्रका वचनामृत अब उद्धार कर रहा है ।

ऐसे अमृतके समान मीठे उसके वचनसे, प्रभुका वह उपताप शान्त हुआ और उसकी वृत्ति फिर दुगुनी कर उसे प्रसादित किया ।

इस प्रकार यह वामराशि-प्रबंध समाप्त हुआ ।

*

सोरठके दो चारणोंकी कविताविषयक स्पर्द्धा ।

१६३) फिर कभी, एक बार, सुराष्ट्र मंडलके रहने वाले दो चारण, परस्पर दूहा-विद्यामें (दोहा छन्दकी रचना करनेमें) स्पर्द्धा करते हुए यह प्रतिज्ञा करके अणहिल्लपुरमें पहुँचे कि – ' हेमचंद्राचार्य जिसके दोहाकी सराहना करेंगे, उसे दूसरा हर्जाना देगा। ' फिर उनमेंसे एकने, प्रभुकी सभामें आ कर यह दोहा कहा –

२०२. हे हेमसूरि ! मैं तुम्हारे मुँह पर वारी जाऊं । लक्ष्मी और वाणी (सरस्वती) का जो सापत्न्य (वैर) भाव था वह, इसने नष्ट कर दिया । क्यो कि हेमचंद्रसूरिकी सभामें तो जो पण्डित है वे ही लक्ष्मीवान् है ।

ऐसा कह कर, उसके चुप हो जाने पर, फिर श्रीकुमारविहारमें आरतीके अवसर पर राजा जब प्रणाम कर रहा था और प्रभुने उसकी पीठ पर हाथ रखा हुआ था, उसी समय वहाँ प्रवेश करके दूसरे चारणने यह कहा –

२०३. हे हेमसूरि ! मै तुम्हारे इस हाथ पर वारी जाऊं – जिसमें अद्भुत ऋद्धि रही हुई है । नीचे नमे हुए जिस मुख ऊपर यह पडता है उसके ऊपर सिद्धि आ वैठती है ।

इस प्रकारके अनुच्छिष्ट (मौलिक) भाववाले उसके वचनसे मनमे चमत्कृत हो कर राजा इसी दोहेको बार बार बुलाने लगा । तीन बार बोलने बाद उसने कहा कि – क्या एक एक बार बोलने पर एक एक लाख दोगे ? ' – इस पर राजाने उसे ३ लाख दिलाया ।

इस प्रकार यह दो चारणोंका प्रबंध समाप्त हुआ ।

*

कुमारपालका तीर्थयात्रा करना।

१६४) एक बार, राजा श्री कुमारपालने संघाधिपति हो कर तीर्थयात्राके लिये महोत्सवपूर्वक संघ निकालना निश्चित किया और उसके देवालयका प्रस्थान-मुहूर्त साधित किया। इतनेमें देशान्तरसे आये हुए चर युगलने कहा कि—'डाहल देशका राजा कर्ण आप पर चढ़ाई करके आ रहा है।' [इसको सुन कर] राजाके ललाट देश पर [पसीनेके] स्वेद बिंदु झलकने लगे। संघाधिपत्यके पदको प्राप्तिका मनोरथ नष्ट हो जानेके भयसे वाग्भट मंत्रीके साथ आ कर प्रभुके चरणों पर गिर पड़ा और अपनी निंदा करने लगा। राजाके आगे इस प्रकार महाभयका उपस्थित होना जान कर, प्रभुने कुछ सोच कर कहा कि—'बारह पहरमें ही इस भयकी निवृत्ति हो जायगी [इस लिये कुछ चिन्ता न करो]। राजा विदा हो कर, किं-कर्तव्यविमूढसा बना हुआ ज्यों ही बैठा था त्यों ही निर्णीत समय पर आये हुए दूसरे चरयुगलने समाचार दिया कि—'श्री कर्ण राजका [अकस्मात्] स्वर्गवास हो गया।' राजाने मुँहसे पानका त्याग करते हुए पूछा—'सो कैसे?' उन्होंने कहा—'हाथीके होदे पर बैठ कर राजा कर्ण रातको प्रवास कर रहा था तब उसकी नींदसे आँखें बन्द हो गई। गलेमें लटकता हुआ सोनेका हार एक बरगदके दरख्तकी डालीमें उलझ गया और उससे खींचा जा कर राजा मर गया। हम दोनों उसके अग्निसंस्कारके अनन्तर वहाँसे चले हैं। उनके ऐसा कहने पर, राजा तत्काल पौषधशालामें आया और सूरिकी अत्यन्त ही प्रशंसा करने लगा जिसको किसी तरह उन्होंने रोका। फिर, ७२ सामंत और संपूर्ण संघके साथ, प्रभुके बताये हुए [धर्म और प्रवासके] दोनों प्रकारके मार्गसे धुन्धुकनगरमें आया। वहाँ पर प्रभुके जन्मस्थानमें स्वयं बनाये हुए १७ हाथ ऊँचे झोलिकाविहारमें उत्सवादिका विधान करने पर जातिपिशुन ब्राह्मणोंने विघ्न किया तो, उन्हें देश निकाला दिया गया और फिर शत्रुंजयकी उपासना की। वहाँ 'दुक्खखओ कम्मक्खओ' (दुःखक्षय, कर्मक्षय) इस प्रकारके प्रणिधान दण्डक (सूत्रपाठ) का उच्चारण करता हुआ देवके पास विविध प्रार्थना करनेके अवसर पर किसी चारणके मुँहसे यह कथन सुना—

२०४ अहो यह जिनदेवका कितना भोलापन है! जो एक फूलके बदलेमें मुक्तिका सुख दे देता है। इसके साथ किस बातका सोदा किया जाय।

उसके नौ बार इस दोहेके पढ़ने पर, राजाने उसे नौ हजारका दान किया। इसके बाद जब वह उज्जयन्त (गिरनार) के पास आया तो अकस्मात् पर्वतमें कंप हुआ देखा। तब श्री हेमाचार्यने राजासे कहा—'वृद्धोंकी यह परंपरागत बात है कि, एक ही साथ दो पुण्यवन्त पुरुष इस पर चढते हैं तो यह छत्रशिला गिर पडती है। यदि यह बात कहीं सत्य हो तो लोकापवाद होगा, क्यों कि हम दोनों ही [एकसे] पुण्यवान् हैं। इस लिये आप ही [पर्वत पर] नमस्कार करने जाँय, हम नहीं।' पर राजाने आग्रह करके प्रभुको ही संघके सहित ऊपर भेजा। स्वयं नहीं गया। श्री वाग्भटदेवको छत्रशिलाके उस रास्तेको छोड़ कर जीर्णप्राकार (जूनागढ)के रास्तेसे नई पद्या (पत्थरकी सीढी) बनवानेके लिये आदेश दिया। पद्याके बनानेमें ६३ लाख दाम लगे।

इस प्रकार तीर्थयात्राप्रबंध समाप्त हुआ।

*

कुमारपालका स्वर्णसिद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करना।

१६५) एक बार, पृथ्वीको अनृण करनेकी इच्छासे, राजाने स्वर्णसिद्धिकी प्राप्तिके लिये श्री हेमचन्द्राचार्यके उपदेशसे उनके गुरु श्री देवचन्द्राचार्यको, श्री संघ और राजाकी विज्ञप्ति भिजवा कर यहाँ बुलवाये। वे

उस समय तीव्र व्रतमें लगे हुए थे तो भी यह समझ कर कि संघका कोई बड़ा कार्य होगा, विधिपूर्वक विहार करते हुए और रास्तेमें किसीसे ज्ञात न हो कर अपनी ही [पुरानी] पौषधशालामें आ कर ठहर गये। राजा तो उनकी अगवानी करनेके लिये सजावट करा रहा था इतनेमें सूरिने उसे सूचित किया तो वह वहाँ पर आया। तब राजा प्रभृति समस्त श्रावकोंके साथ प्रभुने द्वादशावर्त पूर्वक उन गुरुको प्रणाम किया। उन्होंने जो उपदेश-वचन कहे वे उन दोनोंने (राजा और सूरिने) सुने। फिर गुरुने संघका कार्य पूछा। इस पर सभा विसर्जन करके पर्देकी ओटमें श्री हे मा चा र्य और राजाने उनके चरणों पर गिर कर सुवर्ण-सिद्धिके बतानेकी याचना की। श्री हे मा चा र्य ने कहा कि — जब मैं बालक था तब आपने किसी काठ ढोने वालेके पाससे एक वल्ली (लता) ली थी और आपके आदेशसे, अग्निमें जलाए हुए तांबेके टुकड़ेको उसके रसमें भिगोने पर, वह सोना हो गया था। उस लताका नाम और संकेत आदि बतानेकी कृपा कीजिये।' उनके ऐसा कहने पर गुरुने श्री हे म चं द्र को क्रोधसे दूर ठेल दिया और बोले कि 'तू इस योग्य नहीं। पहले मूँगके जूस (मूंगकी दालके पानीके) समान जो [हलकी] विद्या तुझे दी थी उसीसे तुझे [इतना] अजीर्ण हो गया है, तो फिर तुझसे मंदाग्नि रोगीको यह मोदक जैसी [भारी] विद्या कैसे दूं?' इस प्रकार उन्हें निषेध करके, राजासे कहा — 'तुम्हारा ऐसा भाग्य नहीं है कि संसारको अनृण करने वाली विद्या सिद्ध हो जाय। और फिर, जीव-हिंसाका निवारना और पृथ्वीको जिनमन्दिरोंसे मंडित करना आदि पुण्यकार्योंसे तुम्हारे दोनों लोक सफल बन गये हैं, अब इससे अधिक और क्या चाहते हो?' यह कह करके, उसी समय वे वहाँसे विहार कर गये।

इस प्रकार सुवर्णसिद्धिके निषेधका यह प्रबंध समाप्त हुआ।

*

एक बार राजाके पूछनेपर प्रभुने उसके पूर्व जन्मका सारा वृत्तान्त कहा*।

*

मंत्री चाहडका दानीपना।

१६६) इसके बाद, किसी समय, राजाने स पा द ल क्ष के राजा पर चढाई ले जानेके लिए सेना सज्जित की। श्री वा ग्भ ट मंत्रीके छोटे भाई चा ह ड मं त्री को, अत्यधिक दान करते रहनेके कारण दोष-युक्त होने पर भी उसे खूब सिखामन दे कर, सेनापति बनाया। वह प्रयाण करके दो-तीन पडाव दूर गया ही था कि बहुतसे याचक इकट्ठे हो कर उसके पास आये तो उसने कोषाध्यक्ष (खजांची) से १ लाख मुद्राये माँगीं। पर राजाकी आज्ञा न होनेसे जब वह नहीं देने लगा, तो सेनापतिने उसे चाबुकके प्रहारोंसे मार कर सेनासे निर्वासित कर दिया और फिर स्वयं यथेच्छ दान दे करके याचकोंको प्रसन्न किया। चौदह सौ सांढनियों पर चढे हुए २८०० सुभटोंको साथ ले कर रास्तेमें कुछ ही पडाव करके ब म्बे रा न ग र के किलेको जा घेरा। वहाँ पर नागरिकोंसे यह सुन कर, कि उसी रातको सात सौ कन्याओंके विवाह होने वाले हैं, उस रातको वैसा ही पड़ा रहा। दूसरे दिन किले पर दखल कर लिया। वहाँ पर सात करोडका सोना तथा ग्यारह हज़ार घोड़ियोंकी प्राप्ति हुई जिसकी सूचना शीघ्रगामी आदमियों द्वारा राजाके पास भिजवा दी। स्वयं उस देशमें कु मा र पा ल राजाकी आज्ञा फिरा कर और अपने अधिकारी नियुक्त करके लौट आया। प त्त न में प्रवेश करके राजमहलमें आ कर राजाको प्रणाम किया। राजाने समुचित आलापके साथ, उसके गुणसे रञ्जित हो कर भी, इस तरह कहा कि —

* पूर्व जन्मके वृत्तान्तवाला यह प्रबन्ध इस ग्रन्थमें नहीं दिया गया। यह पंक्ति एक ही पुरानी प्रतिमें लिखी हुई मिली है जिसका सूचन शास्त्री दीनानाथने अपनी उस पुरानी आवृत्तिमें किया है। पुरातन प्रबन्धसंग्रह, प्रबन्धकोष, कुमारपालचरित्र संग्रह आदि ग्रन्थोंमें यह प्रबन्ध मिलता है।

'तुममें जो यह स्थूल-लक्ष्यता वाला बडा भारी दोष है वही एक प्रकारसे तुम्हारा रक्षामत्र है। नहीं तो लोगोंकी नजर लग कर तुम खडे ही खडे फट पडो। तुम जो व्यय करते हो वह तो मैं भी कर सकनेमें समर्थ नहीं हूँ।' राजाकी यह बात सुन कर उसने कहा कि—'महाराजने जो कहा वह यथार्थ ही है। ऐसा व्यय महाराज सचमुच नहीं कर सकते। क्यों कि महाराज पितृपरपरासे तो राजाके पुत्र हैं नहीं। और मैं तो खुद महाराजका पुत्र हूँ। अत मैं इतना अधिक अर्थव्यय कर सकता हूँ।' उसकी इस बातसे चाहे राजा खुश हुआ हो या नाराज,—वह तो कसौटी पर कसे हुए सुवर्णकी कान्तिको धारण करता हुआ, अनमोल हो कर, राजासे विदा ले कर अपने स्थान पर पहुँच गया।

इस प्रकार यह राजघरट्ट चाहडका प्रबध समाप्त हुआ।

*

१६७) उसी प्रकार उसका छोटा भाई, जिसका नाम सो ला क था, उसने '**मण्डलीक सत्रागार**' ऐसा विरुद धारण किया था।

कुमारपाल द्वारा राणा लवणप्रसादका भविष्य कथन।

१६८) इसके बाद, एक बार, आ ना क नामक अपने मौसेरे भाईके सेवागुणसे सन्तुष्ट हो कर राजाने उसे सामान्त-पद प्रदान किया। तो भी वह तो उसी तरह सेवा करता रहा। एक बार, दो पहरके समय, राजा जब चन्द्रशालामें पलँग पर बैठा हुआ था तब वह भी उसके सामने बैठा था। उस समय सहसा किसी नौकरको वहाँ आते देख राजाने पूछा कि—'यह कौन है?'। आ ना क ने देखा तो वह उसीका नौकर मालूम दिया। उस नौकरका इशारा पा कर वह वहाँसे बाहर निकल कर कुशल समाचार पूछने लगा, तो नौकरने उससे पुत्रजन्मकी बधाई माँगी। इस समाचारसे उसका चेहरा सूर्य जैसा चमक उठा और फिर उसे बिदा करके अपने स्थान पर आ बैठा। राजाके यह पूछने पर कि क्या बात है? तो उसने कहा कि—'महाराजके [सेवकके] घर पुत्र हुआ है'। यह सुन, राजा अपने मनमें कुछ सोच कर, प्रकाश भावसे बोला—'पुत्रजन्म निवेदन करनेके लिये यह चाकर जो वेत्रधारियोंकी बिना बाधाके ही यहाँ तक आ पहुँचा सो इससे जाना जाता है कि अपने पुण्यके प्रभावसे यह गू र्ज र दे श का राजा होगा, पर इस नगरमें और इस धवलगृहमें (राजमहलमें) नहीं। क्यों कि तुम्हें इस स्थानसे उठा कर इसने पुत्रोत्पत्तिकी बधाई दी है इस लिये इस नगरका राजा नहीं होगा।'

इस प्रकार विचार चतुर्मुख श्री कुमारपाल देवद्वारा निर्णीत
लवणप्रसाद राणाका प्रबध समाप्त हुआ।

*

२०५ अपने आज्ञावर्ती ऐसे अठारह बडे देशोंमें, सपूर्ण चौदह वर्ष तक जीवहत्याका निवारण करके, और अपनी कीर्तिके स्तभके समान १४ सौ जैन विहारोंका निर्माण करके जैन राजा कु मा र पा ल ने अपने सब पापोंको क्षय कर दिया।

[१२५-७] कर्नाटक, गूर्जर, लाट, सौराष्ट्र, कच्छ, सिधु, उच्च, भभेरी, मरुदेश, मालव, कोंकण, कीर, जागलक, सपादलक्ष, मेवाड, ढीली (दिल्ली) और जालधर इतने देशोंमें कु मा र पा ल राजाने प्राणियोंको अभयदान दिया और सातों व्यसनोंका निषेध किया। रुदतीधन (अपुत्र कुटुम्बके धन) का ग्रहण मना किया और न्यायघण्टा बजा कर प्रजाको सतुष्ट किया।

*

हेमचन्द्र सूरिको लूना रोग लगना।

१६९) अब एक बार, कच्छप राज लक्षराज की महासती माताने जो मूलराज को शाप दिया था कि उसके वंशजोंको लूता रोग हो जाया करेगा; तदनुसार, कुमार पालने जब गृहस्थ धर्म (श्रावकपन) के व्रत ग्रहण किये तब उसने अपना राज्य गुरु श्री हेमचन्द्र को समर्पण कर दिया था, इसलिये उसी छिद्रसे (इस राज्यसम्बन्धके छलसे) सूरिको भी वह लूता रोग संक्रामित हुआ। इसे देख सभी राजलोकके साथ राजा दुःखित हुआ, तब प्रभुने प्रणिधानसे अपनी आयु प्रबल समझ कर अष्टाङ्ग योगाभ्यासके द्वारा, लीला (क्रीडा) के साथ उस रोगको नष्ट कर दिया।

१७०) किसी समय, कदली पत्र पर आरूढ किसी योगीको देख कर विस्मित बने हुए राजाको प्रभुने भूमिसे चार अंगुल ऊपर अधर रह कर ब्रह्मरन्ध्रसे निकलता हुआ तेजःपुञ्ज दिखाया।

*

हेमचन्द्रसूरि और कुमारपालका स्वर्गवास।

१७१) चौरासी वर्षकी अवस्थाके अंतमें प्रभुने अपना अंतिम दिन समीप आया समझ कर, अनशन पूर्वक अन्त्याराधन क्रिया प्रारंभ की। उसे देख कर दुःखित हुए राजाको प्रभुने कहा कि –'तुम्हारी आयु भी अब ६ महीना ही बाकी है। सन्तानाभावके कारण अपने वर्तमान रहते ही अपनी सब उत्तर क्रिया कर-करा लेना।' यह आदेश दे कर दशम द्वारसे उन्होंने अपना प्राणत्याग कर दिया। फिर इसके बाद प्रभुके संस्कार स्थान पर, यह समझ कर कि, उनके देहकी भस्म भी पवित्र है, राजाने तिलक करके नमस्कार किया। इसके बाद सभी सामंत और नागरिक लोगोंने वहाँ की मिट्टी ले ले कर तिलक करना शुरू किया जिससे वहां पर गड्ढा हो गया। वह गड्ढा आज भी 'हेम खड्ड' नामसे प्रसिद्ध है।

१७२) अब फिर, राजा प्रभुके शोकमे विकल हो कर आँखोंमें आँसू भर भर रोने लगा जिस पर मंत्रियोंने उसे वैसा न करनेकी विज्ञप्ति की, तो वह बोला –'मैं उन प्रभुके लिये शोक नहीं कर रहा हूँ जिन्होंने अपने पुण्यसे उत्तमसे उत्तम लोक अर्जित किया है; मै तो अपने इस सर्वथा त्याज्य ऐसे सप्ताङ्ग राज्यके लिये शोक कर रहा हूँ, कि राज्यपिण्ड दोषसे दूषित होनेके कारण मेरा पानी भी इन जगद्गुरुके अंगमें नहीं लगा–' इस प्रकार प्रभुके गुणोंको स्मरण करता हुआ चिरकाल तक विलाप करते रहा और अन्तमें प्रभुके कहे हुए दिन पर उन्हींकी उपदिष्ट विधिसे समाधि पूर्वक मर कर उस राजाने स्वर्गलोक अलंकृत किया।

*

यहाँ पर P प्रतिमें निम्नोद्धृत श्लोक अधिक प्राप्त होते हैं–जो सोमेश्वरकी कीर्तिकौमुदीके हैं–

[१२८] पृथु आदि पूर्व राजाओंने स्वर्ग जाते समय जिस राजाके पास अपने गुणरूपी रत्नोंको मानों न्यासके रूपमें रख दिया था।

[१२९] इस राजाने न केवल युद्धक्षेत्रमें अपने बाणोंसे मात्र शत्रुओंको ही जीत लिया था, किंतु अपने लोकप्रीतिकर गुणोसे इसने पूर्वजोंको भी जीत लिया।

[१३०] राग और रतिसे रहित, ऐसे (अथवा वीतरागमें प्रीतिवाले) इस नृदेवकी, मृतोंके धनको छोड़ देनेके कारण, देवताकी नाईं अमृतार्थता सिद्ध हुई। (क्यों कि देवता अमृतके अर्थी होते है, और यह मृतका अर्थ नहीं लेता था।)

[१३१] इस राजाने तलवारकी धारमें नहाई हुई वीरोंकी श्री (लक्ष्मी) ही ग्रहण की, किंतु आँसूकी धारासे धुली हुई कायरोकी (और निरपत्य जनोंकी) श्री नहीं ली।

[१३२] इसने लड़ाईमें तो वीरोंके भी सामने अपने पैर उठाये, पर उनकी स्त्रियोंके सामने तो वह अपना मुख ही नीचा कर लेता था।

[१३३] हृदय (छाती) में लगे हुए जिसके बाणसे क्रान्त हो कर, जाँगलके राजाने तो अपना सिर घूमाया ही पर उसकी प्रशंसा करने वालों दूसरोंने भी अपना सिर घूमाया।

[१३४] कौङ्कण देशका नरेश, जो मारे गर्वके रत्नमय मुकुटकी प्रभासे चकचकित ऐसे अपने सिरको न नवाना चाहा तो इस राजाने अपने बाणोंसे उसके सिरको टुकडे टुकडे कर दिया।

[१३५] रागवश हो कर जिस राजाने युद्धमें बल्लाल और मल्लिकार्जुन राजाओंके सिरोंको, जयश्रीके दोनों कुचोंकी तरह ग्रहण किया।

[१३६] जिस राजाने दक्षिण देशके राजाको जीत कर उससे दो द्विप (हाथी) ग्रहण किये। मानों वे इस लिये कि उसके यशसे हम इस विश्वको नष्ट-निषद् बनायेंगे।

[१३७] शत्रुओंकी पत्नियोंके कुचमण्डलको निहार (विगत हार) बनाते हुए जिस राजाने मही-मण्डलको उद्दण्डविहार (जैनमन्दिर) वाला बनाया।

[१३८] जिसने पादलग्न महीपालों और तृणको मुहमें दबाने वाले पशुओंके द्वारा मानों प्रार्थित हो कर ही उत्तम अहिंसा व्रतको ग्रहण किया।

१७३) सं० ११९९ से [१२३० तक] ३१ वर्ष तक श्री कुमारपालने राज्य किया।

*

अजयपालका राज्याभिषेक।

१७४) सं० १२३० वर्षमें अजयदेवका राज्याभिषेक हुआ। (इस राजाके वर्णनके कुछ विशिष्ट श्लोक भी P आदर्शमें इस प्रकार पाये जाते हैं—)

[१३९] इस [कुमारपाल] के बाद कल्पद्रुमके समान अजयपाल नामक राजा हुआ जिसने वसुन्धराको सोनेसे भर दिया।

[१४०] जिसने जाँगल देश (के राजा) के गले पर पैर रख कर उससे दण्डमें सोनेकी मण्डपिका (माँडवी=पालकी जैसी) और कई मत्त हाथी ग्रहण किया।

[१४१] उद्दाम तेजसे सूर्यकी भी भर्त्सना करने वाले जिस राजाने, परशुरामकी तरह, क्षत्रियोंके रक्तसे धोई हुई पृथ्वीको श्रोत्रियोंकी रक्षाका पात्र बनाया।

[१४२] जिस राजाके तीनों गण (=धर्म, अर्थ, काम) नित्यदान देनेसे, नित्य राजाओंको दण्ड देनेसे और नित्य स्त्रियोंसे विवाह करनेसे, समान हो कर रहे।

[१४३] राजाओंके नेपथ्यको धारण करने वाले [उस राज्य नाटकमें] शतक्रतु (इन्द्र) [का अभिनय करने वाले इस राजा] के चले जाने (मर जाने) पर इसके पुत्र मूलराजने जयन्तका अभिनय किया।

*

अजयपालका जैन मन्दिरोंका नाश करना।

१७५) यह अजयदेव जब पूर्वजोंके बनाये मंदिरोंको तुड़वाने लगा तो सीलण नामक कौतुकी, राजाके सामने नाटकका प्रसंग उपस्थित कर, उसमें, अपनेको कृत्रिम रोगी कल्पित कर, तृणके बने हुए पाँच

[१४५] जिसके काटे हुए म्लेच्छ कंकालके स्थलकी ऊंचाईको देखता हुआ अ र्बु द गि रि अपने पिता प्रालेयगिरि (हिमालय) की याद भूल जाता है ।

[१४६] विधाताके, उस कल्पद्रुमके अंकुरको शीघ्र ही नष्ट करनेके बाद, उसका छोटा भाई श्री भी म नामक [नया] पौधा उगा ।

*

१८०) सं० १२३३ से ले कर [१२९६ तक] ६३ वर्ष श्री भी म दे व ने राज्य किया ।

[१४७] यह भी म राजा, जो राजहंसोंका दमन करने वाला है कदापि उस भी म से न के समान नहीं कहा जाता जो बकापकारी (बकासुरका नाश करने वाला) था ।

यह राजा जब राज्य कर रहा था तो सो ह ड नामक मा ल व दे श का राजा गू र्ज र दे श को विध्वंस करनेके लिये सीमान्त पर आया । तब इसके प्रधानने सामने जा कर इस प्रकार कहा—

२१२. हे राज-सूर्य (तुम्हारा) प्रताप पूर्व [दिशा] में ही शोभित होता है । पश्चिम दिशामें आने पर तुम्हारा वह प्रताप अस्त हो जाता है * ।

इस विरुद्ध वाणीको सुन कर वह वापस लौट गया । इसके बाद उसने अपने लड़केसे, जिसका नाम श्रीमान् अ र्जु न देव था, गू र्ज र दे श का भंग कराया ।

*

वीरधवलका प्रादुर्भाव ।

१८१) श्री भी म दे व के राज्यकी चिन्ता करने वाला (राज्य व्यवस्था संभालने वाला) व्या घ्र प ल्ली य नामसे प्रसिद्ध श्रीमान् आ ना क का पुत्र ल व ण प्र सा द चिरकाल तक राज्य करता रहा । साम्राज्यके भारको धारण करने वाला उसका पुत्र हुआ श्री वी र ध व ल । उसकी माता म द न राज्ञीने, अपनी बहनकी मृत्युके बाद यह सुनकर कि—अपने दे व रा ज नामक पट्टकिल (पटेल) बहनोई जिसकी बडी भारी आमदनी है लेकिन अब जिसका निभाव नहीं हो रहा है, राजा ल व ण प्र सा द से पूंछ कर अपने शिशुपुत्र वी र ध व ल को साथ ले कर वहाँ गई । उस बहनोईने उसके गुण और आकृतिको स्पृहणीय देख कर, उसे अपनी ही गृहिणी बना लिया । ल व ण प्र सा द ने जो यह वृत्तान्त सुना, तो उसे मार डालनेके लिये रातको उसके घरमें घुसा और एकान्तमें छिप कर जब वह अवसर खोज रहा था, तब वह पटेल भोजन करनेके लिये बैठा और [पासमें वीरधवलको न देख कर अपनी गृहिणीसे] यह कहने लगा कि वी र ध व ल के बिना मैं नहीं खाऊंगा । इस तरह खूब आग्रहके बाद उसे ले आ कर एक ही थालीमें उसके साथ खाने लगा । तब अकस्मात्, साक्षात् कृतान्तकी तरह सामने उपस्थित उस आदमीको देख भयसे उसका मुंह काला हो गया । पर उस (लवणप्रसाद) ने कहा कि —'मत डरो, मैं तुम्हीं को मारने आया था पर इस मेरे वी र ध व ल लड़के पर, तुम्हारी ऐसी वत्सलता अपनी साक्षात् आँखोसे देख कर, उस आग्रहको मैने त्याग दिया है ।' ऐसा कह कर उसके द्वारा सत्कृत हो कर जैसे आया था वैसे ही चला गया ।

१८२) वी र ध व ल के उस अपर पितासे उत्पन्न, साँ ग ण, चा मु ण्ड रा ज आदि राष्ट्रकूटवंशीय भाई हुए जो अपने वीर व्रतसे भुवनतलमें विख्यात हुए ।

---

* मालवासे गुजरात पश्चिम दिशामें है इस लिये इस श्लोकमें यह सूचित किया गया है कि मालवाका राजा यदि गुजरातमें आयगा तो उसका तेज नष्ट हो जायगा ।

१८३) इसके बाद, वह वीरधवल क्षत्रिय, जब कुछ कुछ समझने लायक हुआ तो अपनी माताका यह वृत्तान्त जान कर लज्जित हुआ और अपने ही पिताकी सेवामें आ कर रहा। वह जन्मसे ही उदारता, गभीरता, स्थिरता, नीति, विनय, औचित्य, दया, दान और चतुरता आदि गुणोंसे युक्त था। उसने अपनी शालीनतासे किसी कटक ग्रस्त भूमिको अपने अधिकारमें किया और फिर पिताने भी कृपा करके कुछ देश दे दिया। चाहड नामक ब्राह्मणको मत्री बना कर वह राजकारभार चलाने लगा। वहाँ पर, उस समय, आये हुए प्राग्वाटवशी पत्तन निवासी मत्री तेजपालके साथ उसकी मित्रता हुई।

*

मन्त्रीश्वर वस्तुपाल तेजपालका प्रबन्ध।

१८४) अब इस प्रकरणमें मत्री तेजपालके जन्म वृत्तान्तका प्रबध प्रस्तुत किया जाता है। एक बार, पत्तनमें भट्टारक श्री हरिभद्रसूरिका व्याख्यान हो रहा था। वहीं पर मत्री आशराज बैठा हुआ था। उस समय एक कुमारदेवी नामकी अतीव रूपवती बालविधवा स्त्री वहा पर आई जिसको वे आचार्य बारबार देखने लगे। इससे आशराजका चित्त उस पर आकर्षित हुआ। व्याख्यानके विसर्जन होनेके अनन्तर मत्रीकी प्रार्थना पर गुरुने इष्ट देवताके आदेशसे कहा कि—‘ इसके गर्भमें सूर्य और चद्रमाके भावी अवतारको देखता हू, इस लिये इसके सामुद्रिकको बारबार देख रहा था। ’ गुरुसे इस तत्त्वको जान कर मत्रीने उसका अपहरण करके उसे अपनी प्रेयसी (पत्नी) बनाया। क्रमश उसके पेटसे ज्योतिपेन्द्र (सूर्य और चद्र) जैसे वस्तुपाल और तेजपाल नामक वे दोनों मत्री अवतीर्ण हुए।

वीरधवलका तेजपालको अपना मत्री बनाना।

१८५) किसी समय श्री वीरधवलने अपने राजकीय व्यापारके भारको ग्रहण करनेके लिये उस तेजपालकी अभ्यर्थना की, तो उसने पहले राजाको उसकी पत्नीके साथ अपने मकान पर भोजनके लिये निमत्रित किया, और उस समय अनुपमाने राजपत्नी जयतलदेवीको कर्पूरके बने हुए अपने दोनों ताडङ्क (कर्णफूल) तथा सोनेके बने हुए और बीच बीचमें मोती और मणियोंसे जडे हुए कर्पूरमय, एकावली हारको उपहार रूपमें दिया। मत्री जब उपहार देने लगा तो उसका निषेध करके, वीरधवल अपना राज्यकार्यभार उसके हाथोंमें समर्पण करता हुआ बोला कि—‘इस समय तुम्हारे पास जो धन है उसे, कुपित होने पर भी, मैं विश्वास पूर्वक कहता हू कि कभी ग्रहण न करूगा। ’ इस प्रकार पत्र पर प्रतिज्ञालेख लिख कर तेजपालको राज्यव्यापार सबधी पञ्चाङ्ग-प्रसाद प्रदान किया।

२१३ जो विना करके खजाना बढ़ावे, विना मनुष्य-वध किये देश-रक्षा करे और विना युद्ध किये देशवृद्धि करे वही मत्री बुद्धिमान् कहलाता है।

मंत्री तेजपालका धर्मभावसम्मुख होना।

१८६) सपूर्ण नीतिशास्त्र और उपनिषत्में बुद्धिको निविष्ट रखने-वाला वह मन्त्री अपने स्वामीकी यशोवृद्धि करता हुआ, सूर्योदय कालमें विधिपूर्वक श्री जिनकी पूजा करता, और फिर चदन और कर्पूरसे गुरुकी पूजा करता। अनन्तर द्वादश आवर्तन करके यथाऽवसर प्रत्याख्यान ले कर रोज गुरुसे एक एक अपूर्व श्लोक पढ़ा करता। राजकार्य करनेके बाद ताजी बनी हुई रसोईका आहार करता। एक बार, मुञ्जाल नामक महोपासक, जो उसका निजी लेखक (गुमास्ता) था, एकान्तमें पूछने लगा कि—‘ स्वामी सवेरे क्या ठडी रसोई खाते हैं या ताजी ? ’ उसके ऐसा पूछने पर वह मत्री समझा कि यह गँवार है। दो तीन बार उसके ऐसा पूछने पर

एक वार वड़े क्रोधसे ' पशुपाल ' कह कर उसे अपमानित किया। वह धैर्य धारण करके बोला – ' दोनोंमेंसे कोई एक तो होगा ही। (अर्थात् या तो मैं गँवार हूं या मेरी वातको नहीं समझने वाले आप गँवार होंगे) उसकी वचनचातुरीसे चित्तमें चमत्कृत हो कर मंत्रीने कहा – ' विज्ञ ! तुम्हारे उपदेशकी ध्वनिको मैं समझ नहीं सका। अब यथार्थ वात बताओ। ' ऐसा आदेश पा कर वह वाग्मी बोला कि – ' जिस रसमयी ताजी रसोईको आप खाते हैं वह पूर्वजन्मके पुण्यका फल है अतएव मैं उसे अत्यन्त शीतल समझता हूं। जो हो, ये तो मैंने गुरुके संदेश वाक्य ही कहे हैं। तत्त्व तो वे ही जानते हैं, अतः वहीं पधारिये। ' उसकी यह वात सुन कर तेजपाल मंत्री अपने कुलगुरु भट्टारक श्री विजयसेन सूरिके पास गया। गुरुसे गृहस्थ धर्मका विधि-विधान पूछा। उन्होंने उपासकदशा नामक सप्तमाङ्गसे जिनकथित देवपूजा, आवश्यक क्रिया, यतिदान आदि गृहस्थ धर्मका उपदेश दिया। तब उसने विशेषतापूर्वक देवपूजा, जैन मुनियोंको दान आदि देनेवाला धर्मकृत्य आरंभ किया। पूजाके समय चढाये हुए तीन वर्षतकके द्रव्यको निकाला तो ३६ हजार हुआ उससे श्री नेमीनाथका प्रासाद बनवाया।

(यहाँ P प्रतिमें, निम्न लिखित, विशेष श्लोक लिखे हुए पाये जाते हैं–)

[१४८] मनुष्योंका अपहरण करने वाले समुद्रप्रवासी जनोंका निषेध करके जिसने पृथ्वी पर अपने धर्मका उदाहरण उपस्थित किया।

[१४९] छुआ-छूतके निवारणके लिये अलग अलग हदवाली वेदी बना कर जिस (मंत्री) ने इस (स्तंभतीर्थ) नगरमें छांछके बेंचनेका विप्लव दूर किया।

[१५०] जिसने, जहाँ पर जो कुछ भी न्यून और जो कुछ भी नष्ट था उसे वहाँ पर पूरा किया। क्यों कि उत्तम पुरुषोंका जन्म रिक्त स्थानोंको पूरा करनेके लिये ही तो होता है।

[१५१] देवताओंके लिये जिसने ऐसे अनेक उपवन दान कर दिये थे जहाँ पर कामदेवको शिवके नेत्रोंकी अग्निका ताप स्मरण नहीं होता था।

[१५२] रंभा (१ केला, २ अप्सरा विशेष) से संभावित, वृषसे निषेवित तथा मनोज्ञ (१ सुंदर, २ मनको जाननेवाले) सुमनों (१ फूलों, २ देवताओं) के वर्गसे सुशोभित जिसके वनोंने स्वर्गके सौन्दर्यको ग्रहण किया था।

[१५३] हारीत (१ पक्षी विशेष, २ स्मृतिकार ऋषि विशेष) शुक (१ तोता, २ भागवतका ऋषि) चित्र-शिखण्डी (१ मोर, २ महाभारतका एक वीर) द्वारा संगृहीत जिसके उद्यान धर्मशास्त्रके सधर्मा हो कर सुशोभित हुए।

[१५४] इसने सुमनोभाव (१ सुंदर मनोभाव, २ फूलका भाव) तथा अतुलनीय श्रीमत्ताको दिखाते हुए, स्ववंधुके वनोंको (वन्धुकजातिके पुष्पोंके वनोंको) अपने बन्धुओंकी नाईं कर दिया।

[१५५] जिसके बनाये हुए तालावोंमेंसे पानी ग्रहण करते हुए कासारगण (भैंसे बैल आदि पशु) समुद्रमेंसे पानी लेते हुए बादलकी नाईं शोभा देते थे।

[१५६] जिस क्रियानिष्ठ पुण्यात्माने ऐसी कितनी ही बावडियाँ बनवाईं जिनके मीठे जलोंने अमृतको भी तिरस्कृत कर दिया।

[१५७] उसने पानी पीनेके लिये ऐसे प्याऊ बनवाये कि जिनका जल पी कर पथिकोंके मुख तो तृप्त हो जाते थे किंतु उनकी शोभा देख कर आँखें कभी तृप्त नहीं होतीं थीं।

[१५८] जिसने यहाँ पर (स्थमतीर्थमें) भवसागरको पार करनेके लिये नौकारूप ब्रह्मपुरी बनवाई जिसमें पुरुष तो सामगान करते थे और नारियाँ उसका यशोगान करतीं थीं।

[१५९] अपने शुभ्र ऐसे कीर्तिकूट रूप पटसे, दसों दिशाओंका वेष्टन करते हुए स्पष्ट रूपसे, इसने मानों दसों दिशाओंको श्वेतांबर व्रती बनाया।

[१६०] जिस तारितात्माने ऐसी पौषधशालायें बनाईं जो भीतरसे तो श्वेतांबरोंसे (श्वेताम्बर यतियोंके निवाससे) और बाहर सुधा (चूनापोती) से विशुद्ध थीं।

[१६१] जिसकी पौषधशालाओंमें स्त्रीनिरहित ऐसे यति वास करते हैं जिनको आत्मभू (पुत्रजन्म तथा पुनर्जन्म) की कोई सम्भावना ही नहीं है।

[१६२] वाग्देवीने प्रसन्नतापूर्वक जिस मंत्रीको ज्ञानकी ऐसी आंख दी थी कि जिससे यह धर्मकी सूक्ष्म गतिको भी नित्य ही देखा करता था।

वस्तुपालकी तीर्थयात्राका वर्णन।

१८७) इसके बाद, स० १२७७ सालमें सरस्वतीकण्ठाभरण, लघुभोजराज, महाकवि, महाऽमात्य श्री वस्तुपालने महायात्रा प्रारंभ की। गुरुके बताये हुए लग्नमें, उन्हींके द्वारा संघाधिपति रूपसे अभिषिक्त हो कर वह जब देवालयके प्रस्थानका उपक्रम कर रहा था, तब दाहिनी ओरसे दुर्गादेवीका स्वर सुनाई दिया, जिसे स्वयं कुछ समझ कर, शकुन शास्त्रके जानकारसे उसका विचार पूछा। मरुदेशके एक वृद्ध (शाकुनिक) ने कहा कि 'शकुन तो बड़ा भारी हुआ है'। 'शकुनसे भी शब्द बलवान् होता है' यह विचार करके नगरके बाहर आवास (तंबू) में देवालयको स्थापित किया। फिर उससे शकुनका विचार पूछने पर उस वृद्धने बताया कि, मार्गकी विषमतामें विपरीत शकुन श्रेष्ठ कहा जाता है। [वर्तमानमें] राजकीय अन्धाधुन्दीके कारण तीर्थ यात्राका मार्ग विषम हो रहा है। तथा जहां पर यह दुर्गा देख पड़ी थी, वहाँ किसी चतुर पुरुषको भेज कर उस प्रदेशको दिखवाइये। वैसा ही करने पर उस पुरुषने बताया कि—'यह जो वडी (वाडेकी भींत) नई बनाई जा रही है उसके १३॥ हवें थर पर यह दुर्गा बैठी थी।' यह सुन कर उस मरुवृद्धने कहा कि—'देवी आपको साढ़ी तेरह यात्रा करनेकी सूचना करती है।' अन्तिम आधी यात्राका कारण पूछने पर उसने कहा कि—'इस अतुलनीय मंगलके अवसर पर वह कहना ठीक नहीं है। यथा समय सब निवेदन करूँगा।' इस वाक्यके अनन्तर संघके साथ मन्त्रीने आगे प्रयाण किया। उस संघकी सब संख्या यों थी—४॥ हजार वाहन, २१ सौ श्वेतांबर, तीन सौ दिगम्बर, संघकी रक्षाके लिये १ हजार घोड़े, सात सौ लाल साढनिया और संघरक्षाके अधिकारी चार महासामन्त थे। इस प्रकार सारी सामग्रीके साथ मार्ग तै करके, श्रीपादलिप्तपुरके अपने ही बनाये हुए श्रीमन् महावीर देवके चैत्यसे अलंकृत ललितासरोवरके मैदानमें डेरा दिया। उस तीर्थ पर यथाविधि तीर्थाराधना करके मूल प्रासादमें सोनेका कलश, दो प्रौढ़ जिन मूर्तियाँ, श्री मोढेरपुरावतार श्रीमन्महावीर चैत्य तथा उसके आराधक (यक्ष) की मूर्ति और देवकुलिका, मूल मण्डपके दोनों ओर दो दो चौकीकी कतार, शकुनिका विहार तथा सत्यपुरावतार चैत्यके सामने चाँदीके तोरण, श्रीसंघके योग्य कई मठ, सात बहनोंकी ७ देव कुलिकायें, नन्दीश्वरावतार-प्रासाद, इन्द्र मण्डप और उसमें हाथी पर चढ़े हुए लवणप्रसाद और वीरधवलकी मूर्तियाँ, वहीं पर घोड़े पर चढ़ी सात पूर्वजोंकी मूर्तियाँ, सात गुरुमूर्तियाँ, उसीके निकटकी चौकीमें अपने दो बड़े भाई मह० मालदेव और लूणिगकी आराधक मूर्तियाँ, प्रतोली, अनुपमा सरोवर, कपर्दि यक्ष-मण्डप और तोरण आदि बहुतसे धर्मस्थान बनवाये। इसी तरह नन्दीश्वरके कमठाने (कारखाने) के लिये कटेलिया

पाषाणके बने हुए सोलह खंबे पा व क प र्व त परसे जलमार्ग द्वारा मँगाये। जब ये खंबे समुद्रके किनारे उतारे जाने लगे तो उनमेंसे एक स्तंभ इस प्रकार कीचडमें डूब गया कि खोजने पर भी न मिला। उसके बदले अन्य पाषाणका स्तंभ लगा कर वह प्रासाद पूरा किया गया। दूसरे साल समुद्रके पानीकी भरतीके सबबसे वही खंबा कीचडसे बाहर निकल आया। मंत्रीकी आज्ञासे वह खंबा उसकी जगह पर लगाया जाने लगा तो किसी पुरुषने आ कर कहा कि–'प्रासाद फट गया है'। यह निवेदन करनेको आये हुए पुरुषको भी उस मंत्रीने सोनेकी जीभ इनाममें दी। चतुर आदमियोंने पूछा कि 'यह क्या बात है?' इस पर मंत्रीने कहा कि 'इसके बाद अब धर्मस्थान ऐसे दृढ बनवाऊँगा कि युगान्तमें भी उनका पतन नहीं होगा। इसी लिये इसे पारितोषिक दिया गया है।' फिर तीसरी बार मूल समेत उखाड कर यह प्रासाद बनाया गया जो [अब भी] वर्तमान है। श्री पा ली ता णा में भी उसने एक विशाल पौषधशाला बनवाई। फिर श्रीसंघके साथ वह मंत्री उ ज्ज य न्त (गि र ना र) पहुँचा। वहां उसकी उपत्यकामें ते ज ल पु र में स्वयं एक नया वप्र (परकोटा) बनवाया और उसीमे श्रीमद् आ श रा ज वि हा र नामका मन्दिर तथा कु मा र दे वी नामका सरोवर भी बनवाया। उस निरुपम सरोवरको देखने बाद, जब नियुक्त पुरुषोंने कहा कि 'धवलगृह (महल) में पधारिये' तो मंत्रीने कहा कि श्री गुरुमहाराजके योग्य पौषधशाला भी है या नहीं?' यह सुन कर कि वह बनाई जा रही है, तो वह विनयके अतिक्रमणमें भीरु गुरुके साथ, बाहर ही दिये गये आवास (डेरे) में ठहरा। प्रातःकाल उ ज्ज य न्त पर आरोहण करके श्री शैवेय (नेमिनाथ) के चरणयुगलकी भली भाँति पूजा कर, स्वयं बनाये हुए श्री श त्रुं-ज या व ता र तीर्थमें खूब प्रभावनायें कर, तथा क ल्या ण त्र य चैत्यमें श्रेष्ठ पूजोपचारसे अर्चना करके वह मंत्री जब नीचे उतरा तो इन दो दिनोंमें वह पौषधशाला तैयार हो चुकी थी। मंत्री गुरुको अपने साथ वहाँ ले आया। उन्होंने उन बनाने वालोंकी प्रशंसा की और पारितोषिक दान दे कर उनको अनुगृहीत किया। श्री प त्त न में प्र भा स क्षे त्र में चन्द्रप्रभ देवको प्रणाम करके प्रभावनाके साथ यथोचित पूजा की। फिर अपने बनाये हुए अष्टापद प्रासाद पर सोनेके कलशका समारोपण करके, देवके पूजारियोंको दान दिया। वहाँके ११५ वर्षकी अवस्था वाले वृद्ध पूजारीके मुँहसे यह सुन कर कि–'यहाँ पर प्रभुश्री हे मा चा र्य ने कु मा र पा ल नृपतिके सामने श्री सोमेश्वर देवको जगद्विदित रूपसे प्रत्यक्ष किया था' उन (प्रभु) के चरित्रसे मनमें चकित हो कर वहाँसे लौटा। रास्तेमें लिंगधारियोंके असदाचारको देख कर उन्हें अन्न देनेका निषेध किया। यह सुन कर वा य टी य ग च्छ के श्री जि न द त्त सू रि ने इस बातसे उसका अपयश समझ कर, अपने उपासकके पाससे उन्हें अन्नदान दिलाया। यह सुन कर वह मंत्री उनके दर्शन और अनुनयके लिये आया तो उन्होंने उसे उपदेश दिया कि–

२१४. क्षार जलके समान इन लिंगधारियोंकी परिपूर्णतासे ही तो यह शासन (धर्म) रूप समुद्र गंभीरताको धारण कर रहा है।

२१५. संविग्न साधु भी इन लिंगधारियोंकी अनुवन्दना करते ह तो फिर धार्मिक और भवभीरु पुरुषको उनकी पूजाकी चर्चा क्यों करनी चाहिए।

२१६. प्रतिमाधारी (श्रावक) भी इनके सामने विषयका त्याग करते हैं इस लिये विषयवाले इन लिंगधारियोंकी पूजाका मना करना तो विरोधवाली बात है।

२१७. जो लोग, लिंगोपजीवियोंकी अवधीरणा (तिरस्कार) करते हैं वे दुराशय दर्शन (संप्रदाय) के उच्छेदके पापसे लिप्त होते हैं।

आवश्यक–वंदना निर्युक्तिमें कहा है कि–

२१८ तीर्थंकरोंके गुण उनकी प्रतिमा (मूर्ति) में नहीं हैं, यह निःशसय जानता हुआ भी यह तीर्थंकर है ऐसा मान कर उसको नमस्कार करने वाला विपुल कर्मनिर्जरा (कर्मका नाश) प्राप्त करता है।

२१९ इसी प्रकार, जिन देवके प्रज्ञापन किये हुए लिंग (वेष) को नमस्कार करना भी विपुल निर्जराका हेतु है। यद्यपि यह गुणहीन होता है तथापि अध्यात्म शुद्धिके लिये उसे वन्दन करना उचित है।

इस प्रकार उनके उपदेशसे अपने सम्यक्त्व रूप दर्पणको माज कर विशेष रूपसे दर्शन (सप्रदाय) की पूजामें परायण हो, स्वस्थान पर आ कर ठहरा।

मंत्री तेजपालका आबू पर मन्दिर बनवाना।

१८८) ज्येष्ठ भ्राता म० लूणिगने परलोक प्रयाणके अवसर पर यह धर्मव्यय माँगा था कि–'अर्बुद गिरि पर विमलवसहिकामें मेरे योग्य एक देवकुलिका बनवाना।' उसके मरने पर, वहाँके गोठियों (पुजारियों) से उस मंदिरमें भूमि न पा कर, विमलवसहिकाके समीप ही चन्द्रावतीके स्वामीसे नई भूमि ले कर वहीं पर तीनों भुवनके चैत्योंमें (मन्दिरोंमें) शलाका (अग्रगण्य) जैसा लूणिगवसहिका प्रासाद बनवाया। उसमें श्री नेमिनाथके बिंबकी स्थापना करके उसकी प्रतिष्ठा कराई। उस मन्दिरके गुण-दोषकी विचारणा करनेके लिये जावालिपुरसे श्री यशोवीर मत्रीको बुला कर मत्री तेजपालने प्रासादके विषयमें अभिप्राय पूछा। उसने प्रासादके बनानेवाले स्थपति (कारीगर) शोभनदेवसे कहा–'रगमण्डपमें शालभजिका (पुतली) की जोड़ीकी विलास-घटना, तीर्थंकरके प्रासादमें सर्वथा अनुचित और वास्तुशास्त्रसे निषिद्ध है। इसी तरह भीतरी गृहके प्रवेश द्वारमें सिंहोंका यह तोरण देवताकी विशेष पूजाका विनाश करने वाला है। तथा पूर्वज पुरुषोंकी मूर्तियोंसे युक्त हाथियोंके सम्मुख प्रासादका होना, बनाने वालेके भविष्यके विनाशका सूचक होता है। इस विज्ञ कारीगरके हाथसे भी जो इस प्रकारके अप्रतीकार्य ये तीन दोष हो गये, यह भावी कर्मका दोष है।' ऐसा निर्णय करके वह जैसे आया था वैसे ही चला गया। उसकी स्तुतिके ये श्लोक हैं–

२२० हे यशोवीर, यह जो चद्रमा है वह तुम्हारे यशरूपी मोतियोंका मानों शिखर है, और इसमें जो लाछन है वह इस यशकी रक्षाके लिये (किसीकी नजर न लग जाय इस लिये) किया गया रक्षा (राख) का 'श्री' कार है।

२२१. हे यशोवीर, शून्य जिनके मध्यमें हैं ऐसे ये बिन्दु यों तो निरर्थक ही हैं, पर तुम रूप एक (अक) के साथ हो जानेसे ये संख्यावान बन जाते हैं।

२२२. हे यशोवीर, जब विधाताने चद्रमामें तुम्हारा नाम लिखना आरम किया तो उसके पहलेके दो अक्षर (यश) ही भुवनमें नहीं समा सके।

[१६३] यशोवीरके निकट न कोई [कवि] माघकी प्रशसा करता है न कोई अभिनदका अभिनदन करता है, और कालिदास भी उसके पास कलाहीन (निस्तेज) मालूम देता है।

[१६४] यशोवीर मत्रीने सज्जनोंके साक्षात् (सम्मुख), मुखमें रही दांतोंकी ज्योतिके बहाने ब्राह्मी (सरस्वती) को और हाथमें रही हुई सोनेकी मुद्राके बहाने श्री (लक्ष्मी) को प्रकाशित किया।

[१६५] इस चौहान नरेन्द्रके मत्रीने वैसे गुण अर्जन किये जिनसे ब्रह्मा और समुद्रकी पुत्रियों (लक्ष्मी और सरस्वती) को भी नियन्त्रित कर दिया।

[१६६] जहाँ लक्ष्मी है वहाँ सरस्वती नहीं है, जहाँ ये दोनों हैं वहाँ विनय नहीं है। पर हे यशोवीर, यह बड़ा आश्चर्य है कि तुममें ये तीनों विद्यमान हैं।

[१६७] वस्तुपाल और यशोवीर ये दोनों सचमुच ही शारदा (सरस्वती) के पुत्र हैं, नहीं तो फिर इन दोनोंका दान करनेमें एक ही ऐसा स्वभाव कैसे होता।

इस प्रकार श्री शत्रुंजयादि तीर्थोंकी यात्राका प्रबंध समाप्त हुआ।

•

वस्तुपालका शंखराजके साथ युद्ध करना।

१८९) स्तंभतीर्थमें, सइद (सय्यद) नामक नौवित्तिक (जहाजी व्यापारी) से श्रीवस्तुपालकी लड़ाई होने पर उसने भृगुपुरसे शंख नामक महासाधनिकको वस्तुपालके विरुद्ध आक्रमण करनेको बुलाया। वह समुद्रके किनारे डेरा डाल कर रहा। उसने देखा कि नगरका प्रवेशमार्ग शंकुसे (जनसमूहसे) संकीर्ण है और व्यापारियोंके जहाज धनसे भरे हुए हैं। उसने वंदी (दूत) को भेज कर वस्तुपालके साथ लड़ाईके दिनका निश्चय किया। जब उसने चतुरंग सेना सजाई तो वस्तुपालने लुणसाक आदिके भूणपाल नामक सुभटको आगे किया। भूणपालने प्रतिज्ञा की कि—'शंखके सिवा यदि दूसरे पर प्रहार करूं तो मैं उसे कपिला गौपर ही प्रहार करना मानूंगा'। फिर बोला कि 'अरे शंख कौन है?' इस वचनके उत्तरमें प्रतिभट (शत्रुके सैनिक) ने कहा कि 'मैं शंख हूं' तो उसे तलवारकी धारसे मार गिराया; फिर इसी रीतिसे दूसरे और तीसरेको भी गिरा देनेके बाद बोला कि—'समुद्रके नजदीक होनेसे क्या शंखोंकी संख्या बढ़ गई है?' तो महासाधनिक शंखने ही उसकी सुभटताकी प्रशंसा करते हुए बुलाया। उसने फिर भालेके आघातसे उन पर प्रहार करते हुए एक ही प्रहारमें घोड़ेके साथ उसे मार डाला। इसके बाद, समरभूमिके प्रेमी श्रीवस्तुपालने, सिंहकिशोर जैसे गजयूथको त्रासित करता है वैसे, शंखके सैन्यको त्रस्त बना कर दसों दिशाओंमें भगा दिया। [पीछे सइद नौवित्तिक भी मार डाला गया।] फिर भूणपालकी मृत्युके स्थान पर मंत्रीने भूणपालेश्वर प्रासाद बनवाया।

(यहाँ P प्रतिमें निम्नलिखित श्लोक अधिक पाये जाते हैं—)

[१६८] धनुषकी प्रत्यञ्चासे काण्डों (बाणों) की तो सन्धि (सुदृढ़ और योग) हुई पर इन वीरप्रकाण्डोंमें परस्पर विग्रह हुआ।

[१६९] बाणोंने स्पष्ट ही दुर्जनोंकी सी चेष्टा की। क्यों कि वे कानमें तो दूसरेके लगते थे और जीवननाश दूसरेका करते थे।

[१७०] तरकसको छोड़ कर बाण वेगसे धनुष पर आ जाते थे। यही तो सपक्षोंका (१ अपने पक्षवालोंका, २ पक्षसहितों—बाणोंका) चिह्न है कि विपत्कालमें आगे रहते हैं।

[१७१] विपक्षीय वैरियोंके वक्षःस्थलमें लग कर बाण पार निकल गये। [सो ठीक ही है] क्यों कि धीरोंके हृदयमें निर्गुणोंको चिर अवस्थान नहीं प्राप्त होता।

[१७२] मंत्रीशके हाथके संसर्गसे तलवार भी मानों दानके लिये उद्यत हो कर, बद्धमुष्टि होते हुए भी, क्षण भरमें कोश (१ म्यान, २ खजाना) का उत्सर्ग (१ त्याग, २ दान) किया।

[१७३] वीरोंके चरण और हाथ रूपी कमलसे पूजित हो कर रणभूमि भी मानों दूर्वारूपी केशोंके साथ सिररूपी फलोंका दान करने लगी।

*

१९०) इसके बाद, एक दूसरे अवसर पर, श्री सो मे श्व र कवि ने यह काव्य कहा --

२२३. हे सचिव ! आपका [बनाया हुआ] तड़ाग जिसमें चक्रवाक पक्षी चल रहे हैं और आति (एक प्रकारके पक्षी जिसको देशभाषामें आड कहते हैं) क्रीडा कर रहे हैं, वह, अत्यन्त प्रशासित ऐसे हसोंसे, कमल को छू कर हिलोलें लेती हुई तरगोंसे, अ तर्गभीर जलोंसे, और चचल बकोंके ग्रास होने के भयसे छिपे हुए मत्स्योंसे, तथा किनारे पर उगे हुए वृक्षोंके नीचे सुखपूर्वक शयन किये हुई स्त्रियोंके गाये हुए गीतोंसे शोभित हो रहा है।

इसमें प्रयुक्त ' आति ' शब्दके पारितोषिकमें[1] मत्रीने कविको सोलह हजार द्रम्मका दान दिया।

कभी फिर (किसी समय) मत्री चिन्तातुर हो कर नीचे जमीनकी ओर देख रहे थे तब सो मे श्व र ने यह यह समयोचित पद्य पढ़ा --

२२४ वाग्देवीके मुखकमलके तिलकसमान हे व स्तु पा ल ! ' तुम्ही एक मात्र भुवनके उपकारक हो '--ऐसी सज्जनोंकी बात सुन कर जो लज्जासे सिर झुका कर तुम पृथ्वीतलकी ओर देख रहे हो, सो मैं मानता हू कि, अब स्वय पातालसे बलिका उद्धार करनेके लिये कोई मार्ग ढूढ़ रहे हो।

मत्रीने इस काव्यके पारितोषिकमें आठ हजार दिया। इसी तरह पडितोंके बार बार इस श्लोकके ये तीन चरण पढ़ने पर कि--

२२५ ' कर्णने दानमें चर्म दिया, शिबिने मास दिया, जीमूतवाहनने जीव और दधीचि ने अस्थि दिये '-- इस पर पण्डित ज य दे व ने समस्या पदकी नाईं [चौथा पद] कहा--'और वस्तु पालने वसु (धन) दिया।' ऐसा कहने पर उसने ४ सहस्र पाया।

इसी प्रकार सूरि (अपने धर्मगुरु) के शिष्योंकी प्रतिलाभनाके अवसर पर, किसी दरिद्र ब्राह्मणने याचना की, तो उसके नियुक्त आदमियोंसे उसे एक वस्त्र मिला, जिसे पा कर उसने मत्रीके आगे यह समयोचित पद्य पढ़ा--

२२६ हे देव ! कहीं रूई, कहीं सूत, और कहीं कपासके बीज लगी हुई यह हमारी पटी (पिछोडी) तुम्हारे शत्रुओंकी स्त्रियोंकी कुटीकी तरह दिखाई दे रही है।

इसके पारितोषिकमें मत्रीने १५ सौ दिया। इसी तरह बा ल च द्र नामक पडितने मत्रीके प्रति यों कहा--

२२७ हे मत्रीश्वर ! गौरी तुम्हारे ऊपर अनुरागवती है, वृष तुम्हारा आदर करता है, भूतिसे तुम युक्त हो और गुणवान् शुभगण तुम्हारे पास हैं। सो निश्चय ही ईश्वर (शिव) की सभी कलाओंसे युक्त ऐसे तुम्हें अब बालचद्रको ऊचा स्थान देना उचित है। तुमसे बढ़ कर समर्थ और कौन है। [गौरी, वृष, भूति, गण, और बालचद्र--इन शब्दोंके प्रसिद्ध अर्थके अतिरिक्त, गौरी स्त्री, धर्म, वैभव, सेना और बोलने वाला कवि ये क्रमश श्लेषके अर्थ हैं।]

कविके ऐसा कहने पर मत्रीने उसके आचार्य पदकी स्थापनाके लिये चार हजार द्रम्म खर्च किया।

मत्रीका मुसलमान सुलतानके साथ मैत्री संबन्ध बांधना।

१९१) किसी समय म्लेच्छराज (मुसलमान) सुलतानके गुरु मालिम (मौलवी) को मख (मक्का) तीर्थकी यात्राके लिये वहाँ आया हुआ जान कर उसे पकड़नेके इच्छुक श्री ल व ण प्र सा द और वी र ध व ल ने मत्री ते ज पा ल से सलाह पूछी। उसने इस प्रकार बताया--

---

१ यह आति शब्द प्राय सस्कृत साहित्यमें कहीं नहीं प्रयुक्त हुआ है इसलिये इसका अभिनव प्रयोग किया गया देख कर मंत्रीने यह दान दिया मालूम देता है।

२२८. धर्मछलका प्रयोग करके जो राजालोक ऋद्धि प्राप्त करते हैं, वह मांके शरीरको बेंच कर पैसा कमानेके समान होती है ।

इस नीतिशास्त्रके उपदेशद्वारा, उन वृक (भेडियों) जैसोंके मुंहसे उस छाग (बकरे) को छुड़ा कर और पाथेयादिसे सत्कृत कर, तीर्थयात्रा करनेके लिये रवाना किया । कुछ सालके बाद, वह जब वापस लौट कर आया तो मंत्रीने फिर उचित सत्कारसे उसका आदर किया। इससे वह अपने स्थान पर पहुंच कर [अपने सुल्तानके सामने] तीर्थ यात्राका बखान करनेके बदले श्री व स्तु पा ल के गुणोंका ही बखान करने लगा । इसके बाद वह सुल्तान प्रति-वर्ष मंत्रीके पास यमलकपत्र (सन्धिपत्र) भेज कर अनुरोध करता रहा कि– 'हमारे देशके आप ही अध्यक्ष हैं, और हम तो आपके सेलभृत् (सामंत) हैं। सो हमें किसी करणीय कार्यका आदेश दे करके सदा अनुगृहीत किया करें' । मंत्रीने श त्रुं ज य तीर्थके भूमिगृहमें रखनेके लिये सुलतानकी अनुज्ञासे, उसके देशमेंकी म म्मा णी नामक खानमेंसे, सैकड़ों प्रयत्न करके युगादि जिनकी एक मूर्ति बनवा कर मंगवाई। सुल्तानने अपनेको धन्य मानते हुए वह कार्य करने दिया ! वह मूर्ति जब पर्वत पर चढ़ाई जा रही थी तो मूलनायकके अमर्षसे पर्वत पर बिजली गिरी । इसके बाद मंत्रीश्वरको फिर जीवनान्त तक शत्रुंजय देवके दर्शन नहीं हुए ।

अनुपमाकी दानशीलता ।

१९२) किसी पर्वके अवसर पर, अ नु प मा देवी मुनियोंको यथेच्छ निरुपम दान दे रही थी । तब किसी राजकार्यकी उत्सुकताके कारण स्वयं वी र ध व ल दे व उस समय वहां आ पहुंचा तो उसने देखा कि श्वेतांबर साधु-यतियोकी भीड़से मकानका दरवाजा मानों दटा हुआ है । तब विस्मयसे मनमें चकित हो कर वह मंत्रीसे बोला – 'हे मंत्री, अभिमत देवताकी भाँति, सदा ही इन साधुओंका इस तरह सत्कार क्यों नहीं किया करते ? अगर तुमसे न हो सकता हो तो आधा हिस्सा मेरा रहे । मेरा ही सदा दिया जाय – ऐसा तो इस कारणसे नहीं कहता कि वैसा करने पर तो फिर तुमको यह वृथा ही परिश्रम करने जैसा लगे ।' उसके मुखचंद्रसे इस प्रकार वाणीरूप किरणके निकलने पर मंत्रीके मनका संताप दूर हुआ और वह बोला– 'स्वामीका आधा हिस्सा क्या ? सब कुछ तो आप ही का है । ' यह कह कर उसने वस्त्र निछावर किया ।

१९३) एक दूसरी बार, यतिदानके अवसर पर, अनेक मुनियोंकी भीडके कारण नमन करती हुई श्रीमती अ नु प मा की पीठ पर घीसे भरा हुआ एक पात्र गिर पड़ा । यह देख कर मंत्री ते ज पा ल बड़ा कुपित हुआ । उसे कुपित देख कर अ नु प मा ने यह कह कर सान्त्वना की कि– 'आप जैसे स्वामीके प्रभावसे ही तो मुनिजन द्वारा गिराये गये पात्रके घीसे मेरा यह अभ्यङ्ग (घृतस्नान) हुआ । ' इस प्रकार उसकी पूर्णदानकी विधिसे चमत्कृत हो कर, मंत्रीने पञ्चाङ्ग प्रसाद पूर्वक उसकी इस उचित उक्तिसे प्रशंसा की –

२२९. प्रिय वाणीपूर्वक दान, गर्वरहित ज्ञान, क्षमायुक्त शूरता और त्यागसहित धन, ये चार भद्र (भले) कार्य दुर्लभ हैं ।

इस प्रकारकी अनेक दानवार्ताओंसे प्रसिद्धी पाने वाली उस देवीकी जैनाचार्योंने इस तरह स्तुति की –

२३०. लक्ष्मी चञ्चला है, शिवा चण्डी (कोपना) है, शची सौतदोषसे दूषित है, गंगा निम्नगामिनी है और सरस्वती वाचाल है । इस लिये अ नु प मा तो सब तरहसे अनुपमा ही है ।

*

वीरधवलकी रणशूरता ।

१९४) एक दूसरी बार, **लवणप्रसाद** और **वीरधवल** पंचग्रामके [स्वामीके] साथ संग्राम करने पर तुले । तब श्री वी र ध व ल की पत्नी ज य त ल दे वी सन्धिविधानकी इच्छासे अपने पिता प्र ती हा र वंशीय श्री

शोभनदेवके पास गई तो उसने कहा कि क्या—'वैधव्यसे डर कर सन्धि कराने आई हो?' तब अपने वीरचूडामणि पति वीरधवलको उन्नत बनाती हुई वह बोली—'केवल पितृकुलके विनाशकी आशकासे मैं बारबार ऐसा कह रही हू। जब वह वीर घोड़े पर चढ़ेगा तो ऐसा कौन सुभट है जो उसके सामने खड़ा रहेगा?' यह कह कर वह सक्रोध चली गई। लड़ाई छिड़ने पर वीरधवलको [एक सख्त] प्रहार लग गया और उसकी व्यथासे व्याकुल हो कर वह जमीन पर गिर पड़ा। तब सुभटोंका दिल कुछ हिम्मत हारता हुआ देख, लवणप्रसादने अपनी सेनाको यह कह कर उत्साहित किया कि—'अरे! यह तो केवल एक ही सैनिक गिरा है' ऐसा कह कर समस्त शत्रुसेनाका खेलमें ही समूल ध्वस कर दिया। सत्त्वगुणसे दीप्त वह वीरधवल [इस प्रकार] रणरसिकताके वश हो कर इक्कीस बार अपने पिताके आगे गिरा था।

वीरधवलकी मृत्यु।

२३१ वह भीम जैसा पराक्रमशाली (वीरधवल) पञ्चग्रामकी समरभूमिमें घावोंके लगने पर घोड़ेकी पीठ परसे गिरा, पर गर्वसे नहीं।

१९५) वीरधवलकी आयुके अन्तमें, प्रतितीर्थ (परलोक) को प्रस्थान करने वालेको दान करनेसे एकका हजार गुणा मिलता है, इस रूढ़िके अनुसार तेजपालने अपने सारे जन्मका पुण्य दान कर दिया। फिर जब वह स्वामी चल बसा तो उसके सौभाग्यके अतिशयसे १२० सेवकोंने सहगमन किया। तब तेजपालने प्रेतवनमें पहरेदारोंको बिठा कर लोगोंको उस आग्रहसे निषिद्ध किया।

२३२ अन्यान्य ऋतु तो आती-जाती रहती हैं पर ये दो ऋतु आ कर फिर नहीं गईं। वीरधवल वीरके विना प्रजाओंकी आखोंमें वर्षा और हृदयमें ग्रीष्म [सदाके लिये रह गई।]

१९६) इसके बाद, मन्त्रीने वीरधवलके पुत्र वीसलदेवको राजपद पर अभिषिक्त किया।

*

अनुपमाकी मृत्यु।

श्रीअनुपमादेवीकी मृत्युके बाद श्रीतेजपालके हृदयमें जो शोककी गाठ बध गई वह किसी तरह छूटती नहीं जान कर, वहा पर आये हुए श्रीविजयसेनसूरिसम समर्थ पुरुषके द्वारा वह विपत्ति शान्त कराई गई। कुछ चेतना होने पर लज्जित तेजपालसे सूरिने कहा—'हम इस अवसर पर तुम्हारी लीला देखने आये थे। तो वस्तुपालने पूछा कि—'वह क्या?' इस पर गुरुने कहा—'हमने शिशु तेजपालको ब्याहने के लिये जब धरणिगके पाससे उसकी कन्या इस अनुपमाकी मगनी की थी, तब स्थिरपत्र-दानके पश्चात् एकान्तमें उस कन्याकी विरूपताकी बात सुन कर, इसने उसका सबध भग होनेके लिये चन्द्रप्रभके मन्दिरके आहातेमें प्रतिष्ठित क्षेत्राधिपतिको आठ द्रम्म का भोग चढाना माना था। और इस समय उसके वियोगमें पागल हो गये हैं। इन दोनों वृत्तान्तोंमेंसे कौनसी बात सच्ची है?' इस प्रकार उस पुराने सकेतसे तेजपालने अपने हृदयको दृढ किया।

वस्तुपालकी मृत्यु।

१९७) फिर दूसरी बार, जब मंत्री वस्तुपाल पूर्णायु हुए तो शत्रुजयकी यात्राकी इच्छा की। यह जान कर पुरोहित सोमेश्वरदेव वहाँ आया। अमूल्य आसन देने पर भी जब वह नहीं बैठना चाहा तो कारण पूछने पर बोला—

२३३. श्री वस्तुपालके अन्न-दान, जल-पान, और धर्मस्थानोंसे तो पृथ्वीतल, और यशसे सारा आकाश-मंडल ढंक गया है। इसलिये स्थानाभावके कारण नहीं बैठ रहा हूं।

उसकी इस वाणीके निमित्त उचित पारितोपिक दे कर, उससे विदा मांग कर, मंत्रीने रास्तेमें प्रस्थान किया। आंकेवालीया ग्रामकी एक गंवारु झोंपडीमें दाभकी चटाई पर बैठा हुआ, गुरुद्वारा आराधना करता हुआ आहारका त्याग करके, अन्तिम आराधनासे कलिमलका ध्वंस किया और अन्तमें युगादिदेवका ही जाप करता हुआ–

२३४. सज्जनोंके स्मरण करने लायक ऐसा कुछ भी सुकृत नहीं किया। केवल मनोरथ ही करते हुए हमारी यह आयु चली गई।

इस वाक्यके अन्तमें ' नमोऽर्हद्भ्यः नमोऽर्हद्भ्यः ' (अर्हतोंको नमस्कार) इन अक्षरोंके उच्चारणके साथ ही सप्तधातुबद्ध इस शरीरका त्याग करके, स्वकृत उत्तम पुण्यफलको भोगनेके लिये, उसने स्वर्ग लोकको अलंकृत किया। उसके संस्कार स्थान पर छोटे भाई तेजपाल और पुत्र जैत्रसिंहने श्री युगादि देवकी दीक्षावस्थाकी मूर्तिसे अलंकृत स्वर्गारोहण प्रासाद बनवाया।

२३५. आज, मेरे पिताकी आज्ञा फलवती हुई, माताके आशीर्वादका अंकुर उगा, जो मैं इस प्रकार अखिन्नभावसे युगादि देवकी यात्रा करनेवाले लोगोंको [अपनी शक्ति-भक्तिसे] संतुष्ट कर रहा हूं।

२३६. जिन लोगोंने राजाकी सेवाके पापसे कुछ भी पुण्यार्जन नहीं किया उन्हें हम धूलिधावक (धूलके ढोहनेवाले) लोगोंसे भी अधमतर समझते हैं।

ये तथा अन्य काव्य स्वयं वस्तुपाल महाकविके रचित हैं।

२३७. स्वामिके गुणोंसे पूर्ण वह वीरधवल एक निस्सीम प्रभु हुआ, विद्वानों द्वारा भोजराजका विरुद प्राप्त करने वाला वस्तुपाल एक अद्वितीय कवि हुआ, प्रधानवर्गमें वह तेजपाल अद्वितीय मंत्रीश्वर हुआ और गुणोंसे अनुपम ऐसी अनुपमा उसकी स्त्री एक साक्षात् लक्ष्मी हुई।

*

इस प्रकार श्री मेरुतुंगाचार्यविरचित प्रबंधचिन्तामणिमें श्री कुमारपाल भूपाल प्रमुख–मंत्रीश्वर वस्तुपाल और तेजःपालतकके महापुरुषोंके यशका वर्णन करनेवाला यह चौथा प्रकाश समाप्त हुआ।

---

११. प्रकीर्णक प्रबन्ध।

अब, यहाँपर पूर्वोक्त महापुरुषोंके चरित्रके वर्णनमें जो रह गये हैं उन तथा [वैसे ही] अन्य चरित्रोंका वर्णन इस प्रकीर्णक-प्रकाशमें प्रारंभ किया जाता है। वे इस प्रकार हैं –

विक्रमादित्यकी पात्रपरीक्षा।

१९८) उस अवन्तीपुरीमें, जिसके निकट ही सिप्रा नदी बह रही है, प्राचीन कालमें श्री विक्रमादित्य राजा राज्य करता था। उसने सुना कि उसके सत्रागारमें विदेशी लोग भोजनके अनन्तर जो सो जाते हैं वे फिर नहीं उठ पाते (अर्थात् मर जाते हैं), इससे विस्मयसे मनमें चकित हो कर राजाने कारण जानना चाहा। उन सभी पथिकोंको दूसरे दिन वस्त्रसे ढँकवा दिया और उस चिरनिद्राकी बातको गुप्त रखनेकी आज्ञा दी। फिर दूसरे दिन आये हुए अन्य पथिकोंको उसी तरह भोजन कराया और सायंकाल उनको उष्ण जल तथा चरणोंमें लगानेके लिये तेल दिया गया। जब वे सब सो गये तो, महानिशामें राजा अपने हाथमें कृपाण ले कर स्वयं एकान्त जगहमें छिप कर खडा रहा। वहाँ कोनेमें पहले धुआँ निकला, फिर आगकी लपट और फिर प्रकाशित फणाकी रत्नप्रभासे अलंकृत सहस्रफण ऐसे नागको निकलते देखा। आश्चर्यसे चमत्कृत हो कर राजा जब सविस्मय उसे देखता है, तो वह फणींद्र उस दिनके सोये हुए प्रत्येक पथिकसे पूछने लगा कि – वह किस चीजका पात्र है ? उनमेंसे प्रत्येकने, किसीने अपनेको धर्म-पात्र, गुण-पात्र, तप पात्र, रूप-पात्र, काम-पात्र या कीर्ति-पात्र इत्यादि इत्यादि बताया। अज्ञान और यदृच्छावश उसके शापसे उन्हें मरते देख श्री विक्रमने आगे बढ कर हाथ जोड कर कहा –

> २३८ हे भोगीन्द्र (नागराज), पृथ्वीपर बहुधा गुणके योगसे पात्र हुआ करते हैं। किन्तु शुद्ध श्रद्धासे जो पवित्र बना हुआ मन है वही परम पात्र है।

इस प्रकार नागराजने अपने ही आशयको कहनेवाले विक्रमादित्यके प्रति कहा कि 'वर माँगो'। श्री विक्रमादित्यने कहा कि 'इन पथिकोंको जीवित बनाओ'। इस प्रकारका वरदान माँगने पर उसने फिर विशेष भावसे उसे संतुष्ट किया।

इस प्रकार श्री विक्रमकी पात्रपरीक्षाका यह प्रबंध समाप्त हुआ।

*

मरे हुए नदका पुनर्जीवन।

१९९) एक बार, पाटलीपुत्र नगरमें, अत्यन्त आनन्दपरायण ऐसे नद राजाकी मृत्यु होनेपर, उसी समय एक कोई ब्राह्मण वहाँ आया और दूसरेके शरीरमें प्रवेश करनेवाली विद्याके द्वारा राजाके शरीरमें प्रवेश कर गया। उसीके संकेतसे एक दूसरा ब्राह्मण राजाके द्वारपर आ कर वेदोच्चार करने लगा, जिससे राजा जी उठा और फिर उसने अपने कोषाध्यक्षोंसे उसको एक लाख स्वर्ण दिलाया। इस वृत्तान्तको जान कर महामन्त्रीने सोचा कि यह नद पहले तो बडा कृपण था और इस समय बडा उदार हो रहा है सो यह बात चिंतनीय है। ऐसा जान कर उस ब्राह्मणको पकड़वा लिया और पर-काय-प्रवेशकारी विदेशीको सर्वत्र ढुँढवाया तो यह मालूम पडा कि, कहीं पर एक मुर्देकी, कोई एक आदमी रखवाली कर रहा है। तो उसे चितापर चढ़वा कर भस्म करवा दिया। अपने अतुलनीय मतिवैभवसे उस पूर्व नदको ही अपने महान् साम्राज्यमें फिर निभा लिया।

इस तरह यह नद प्रबंध समाप्त हुआ।

*

राजा शिलादित्य और मल्लवादी सूरिका प्रबन्ध।

२००) खेड़ा नामक महास्थानमें, देवादित्य नामक ब्राह्मणकी अति रूपवती बालविधवा सुभगा नामक पुत्री, प्रातःकाल सूर्यको अर्घ्यकी अञ्जलि दान किया करती थी। तब, अज्ञातरूपसे सूर्यसे उसका संयोग हो गया और वह भोगरूप हो कर उससे उसको गर्भ रह गया। माँ बापने किसी तरह इस असमंजस कार्यको जब जाना तो उसे कुछ कह-सुन कर अपने स्वजनोंद्वारा वलभी नगरीके पास छुड़वा दिया। वहाँ उसको पुत्र पैदा हुआ, जो क्रमशः बड़ा हो कर, समवयस्क शिशुओंके साथ खेलते समय, इस प्रकार अपमानित किया जाने लगा कि, वह बिना बापका है। तब, माँके पास आ कर उसने अपने पिताके बारेमें पूछा तो उसने कहा कि 'मैं कुछ नहीं जानती'। इससे अपने जीवनसे विरक्त हो कर उसने मर जाना चाहा, तो फिर सूर्यने प्रत्यक्ष हो कर हाथमें कंकड़ दे कर उसकी सान्त्वना की। उन्होंने कहा कि –'तुम्हारी मातासे सम्पर्क करनेवाला मैं सूर्य तुम्हारा पिता हूँ। यह कंकड़ अगर अपने किसी पराभव-कारीपर फेंकोगे तो शिलारूप हो कर उसको लगेगा; पर किसी निरपराधको मारोगे तो फिर तुम्हारा ही अनर्थ करेगा। यह कह कर सूर्य तिरोधान हो गये। फिर अपने कितने एक पराभवकारियोंको मारता हुआ वह 'शिलादित्य' इस सार्थक नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस नगरके राजाने उसकी परीक्षा करनी चाही। तो उसी शिलासे उसे मार कर वह स्वयं राजा बन गया। सूर्य नारायणके प्रसादसे प्राप्त ऐसे अश्वपर चढ़ कर वह सदैव आकाश-चारीकी नाईं स्वेच्छया विहार करता हुआ अपने पराक्रमसे दिगन्तको आक्रान्त कर रहा। फिर चिर कालतक राज्य करके, जैन मुनियोंके संसर्गसे उसने सम्यक्त्व रत्नको प्राप्त किया और श्री शत्रुंजय तीर्थकी अपरिमित महिमाको जान कर उसका जीर्णोद्धार किया।

बौद्धों और जैनोंमें वाद-विवाद।

२०१) एक बार, उस शिलादित्यके सभापतित्वमें, बौद्धों और [जैन] श्वेतांबरोंने परस्पर इस शर्तपर शास्त्रार्थ किया कि – जो [पक्ष] पराजित होगा उसको देश-त्याग करना पडेगा। श्वेतांबरोंके पराजित होनेपर शिलादित्यने उन सबको अपने देशसे निकाल दिया; पर अपरिमित गुणवान् ऐसे उसके भानजे मल्ल नामक क्षुल्लकको उपेक्षा दृष्टिसे देखते हुए बौद्धोंने उसे वहीं रहने दिया। और इस प्रकार अपनेको विजयी मानते हुए वे शत्रुंजय तीर्थपरके श्रीयुगादि देवको बौद्ध रूपसे पूजने लगे। क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न होनेके कारण उस मल्लके दिलमें वह वैरभाव बस रहा, और वह उसका प्रतीकार सोचता रहा। जैन दर्शन (आचार्यों) के अभावमें उन्हींके पास वह अध्ययन करने लगा और दिन रात उसीमें चित्त लवलीन रखने लगा। एक बार, बड़ी गर्मीकी अर्द्ध रात्रिको, जब समस्त नागरिक लोग नींदसे आँखें बंद किये हुए थे, वह दिनमें अभ्यस्त शास्त्रको जोर-जोरसे याद करने लगा। उसी समय आकाशमार्गसे जाती हुई श्री भारती देवीने पूछा कि–'मीठे क्या हैं?' उसने चारों ओर देख कर, बोलनेवालेको न पा कर उत्तर दिया 'वल्ल'। फिर ६ महीनेके बाद उसी समय लौटती हुई वाग्देवीने फिर पूछा 'किसके साथ?'; तब पुरानी बातको स्मरण करके उसने प्रत्युत्तर दिया कि 'घी और गुड़के साथ'। उसकी स्मरण रखनेकी इस अद्भुत शक्तिसे चमत्कृत हो कर [भारतीने] आदेश दिया कि 'वर माँगो'। उसने इस आशयकी याचना की कि 'सौगतों (बौद्धों) को पराजित करनेके लिये किसी प्रमाण शास्त्रके देनेकी कृपा करो।' इसपर भारतीने **'नय-चक्र'** ग्रन्थ अर्पण करके उसे अनुगृहीत किया। इसके बाद भारतीके प्रसादसे तत्त्व समझ कर शिलादित्यकी अनुज्ञासे, बौद्धोंके मठमें 'तृणोदक' फेंक कर, राजसभामें पूर्वोक्त शर्तके साथ उनसे शास्त्रर्थ किया। जिसके कण्ठपीठमें वाग्देवता अवतीर्ण हुई थी ऐसे उस श्री मल्लने शीघ्र ही उन्हें निरुत्तर कर दिया। बादमें राजाज्ञासे उन सब बौद्धोंको देशमेंसे निकाला गया और जैनाचार्योंको बुलाया गया। इस प्रकार बौद्धोंको जीतनेके बाद वह मल्ल 'वादी' कहलाने लगा और फिर राजाकी प्रार्थनापर

गुरुने उसे सूरिपद दिया । तबसे उनका नाम हुआ श्री मल्लवादी सूरि । गणभृतके समान वे प्रभावक हुए। अतएव श्री संघने, नवाङ्गवृत्तिकार श्री अभयदेव सूरिने जिसको प्रकट किया उस स्तम्भनक तीर्थकी विशेष उन्नतिके लिये, उनको चिन्तायक (व्यवस्थापक) रूपमें नियुक्त किया।

इस प्रकार यह मल्लवादि प्रबध समाप्त हुआ ।

*

वलभी नगरीके विनाशकी कथा ।

२०२) मरुमण्डलके पल्लीग्राममें काकू और पातक नामक दो भाई रहते थे । उनमें जो छोटा था वह धनवान् था और जेठा उसीके घर नौकर था । किसी समय, वर्षा ऋतुके निशीथ कालमें, दिनभरमें किये हुए कामसे थक कर काकू सोया हुआ था । छोटेने कहा – 'भैया, अपनी [खेतकी] क्यारियोंमें पानी भर गया है, उनकी मेंड टूट गई है और तुम निश्चित बैठे हो ' यह कह कर उसे फटकारा । वह उसी समय, बिछौना छोड़ कर और कँधेपर कुदाल रख कर, अपने नसीबकी निंदा करता हुआ जब वहाँ पहुँचा, तो देखा कि कई मजदूर टूटी हुई मेंडोंकी मरम्मत कर रहे हैं। उन्हें ऐसा करते देख उसने पूछा कि ' तुम लोग कौन हो ?' उन्होंने कहा कि ' आपके भाईके चाकर हैं । ' इसपर उसने पूछा कि ' भला मेरे भी कोई चाकर कहींहै ? ' तो उन्होंने कहा कि ' वलभी नगरीमें हैं '। वह फिर अवसर पा कर अपने सर्वस्वको गठ्ठरमें बाँध कर, उसे सिरपर उठा कर, वलभीमें आया। वहाँ सदर दरवाजेके समीपवर्ती आभीरोंके पास निवास करने लगा । उन्होंने अत्यन्त गरीब समझ कर उसे 'रंक' कहना शुरू किया । रंक घासकी झोंपड़ी बना कर, और घासहीसे उसे छा कर रहने लगा । उसी समय कोई कार्पटिक (जोगी) कल्प-पुस्तकके आधारसे, रैवत शैलसे एक तुंबेमें सिद्धरस ले कर, मार्ग अतिक्रम करता हुआ [चला आ रहा था । अचानक] उस तुंबेमेंसे ' काकूय तुम्बडी ' (काकूकी तुम्बड़ी) इस प्रकारकी अशरीरिणी वाणी हुई, जिसे सुन कर वह बड़ा विस्मित हुआ, और फिर डरता हुआ उस छिपे हुए बनियेके घरमें, यह सुन कर कि वह एक रंक है, निश्शङ्क-भावसे उस रसवाले तुंबेको थातीके रूपमें रख दिया । वहाँसे वह सोमेश्वरकी यात्राके लिये चला गया । एक दिन [रंकने] किसी पर्वके अवसरपर देखा कि, पाक करनेके लिये चूल्हेपर चढ़ाई हुई कड़ाहीमें, तुंबेसे निकले हुए रसके गिरनेसे वह सोनेकी हो गई है । इससे उस बनियेने मनमें निर्णय किया कि यह सिद्धरस है । तब उसने उस तुंबेके साथ अपने घरका सब कुछ सामान अन्यत्र पहुँचा कर घरको आग लगा कर भस्म कर दिया । नगरके दूसरे दरवाजेपर बड़ा मकान बनवा कर वहीं रहने लगा । एक बार, किसी घी बेंचनेवालीसे घी खरीद रहा था । खुद ही तौल करते हुए उसने देखा कि उसमेंसे घी खूटता ही नहीं है । नीचे देखा तो घीके पात्रके नीचे कृष्णचित्रक [लता] की कुण्डलिका नजर आई । फिर किसी प्रकार छल करके उसे उठा लिया और इस प्रकार उसे चित्रकसिद्धि प्राप्त हो गई । इसी तरह अगणित पुण्यके प्रभावसे उसे सुवर्णपुरुषकी सिद्धि भी प्राप्त हुई । इस प्रकार तीनों प्रकारकी सिद्धिसे कोटि-कोटि संख्या धन एकत्र करके भी, उसने अत्यन्त कृपणतावश, किसी सत्पात्र या तीर्थमें उदारता पूर्वक उसका खर्च करना तो दूर रहा, बल्कि सब लोगोंके सर्वस्वके हरण करनेकी इच्छासे, उस लक्ष्मीको सकल विश्वके लिये कालरात्रिके समान प्रकट किया ।

२०३) ऐसेमें, राजाने अपनी लड़कीके लिये, उसकी लड़कीकी रत्नखचित सुवर्णकी कंघीको जबर्दस्ती उससे छिनवा ली । इससे विरोधी हो कर वह स्वयं म्लेच्छ मण्डलमें गया और वलभीके राज्यका नाश करानेके लिये, करोड़ोंका सोना दे कर, वहाँके बलवान राजाको देशपर चढ़ा लाया । उस (रंक) के द्वारा अनुपहृत, उस राजाके एक छत्रधरने, रात्रिके शेष भागमें, जब कि राजा सुप्त-जाग्रत अवस्थामें था, पहलेसे ही ठीक किये हुए,

किसी पुरुषके साथ इस प्रकार बात-चीत करने लगा कि–'हमारे स्वामीको अच्छी सलाह देनेमें कोई चूहा भी नहीं दिखाई देता; जिससे यह अश्वपति महीमहेन्द्र (राजा) एक मामूली बनियेके कहनेसे–जिसका न तो कोई कुल-शील ही माल्म है और न यही माल्म हैं कि वह कोई अच्छा आदमी है या बुरा; और फिर जो नामसे भी और कर्मसे भी रंक बना हुआ है–सूर्यपुत्र शिलादित्यके प्रति चल पड़े हैं ! ' उसकी इस यथार्थ पथ्य बातको सुन कर, चित्तमें कुछ विचार करके, राजाने उस दिन आगे प्रयाण करनेमें विलंब किया। तब, उस सशंक रंकने, इस बातको निपुणभावसे जान कर, उस छत्रधरको काञ्चन-दान दे कर सन्तुष्ट किया। तब फिर दूसरे दिन [वहीं छत्रधर बोला] चाहे विचार करके या विना विचारे ही यह राजा प्रयाण करके चल पड़ा हो; पर अब 'सिंहके उठाये हुए पैरकी नाईं' इस कहावतके अनुसार आगे चलनेपर ही इसकी शोभा है। क्यों कि–

२३९. खेल ही मे जिसने हाथियोंका दलन किया है उस सिंहको, लोग चाहे मृगेन्द्र कहें चाहे मृगारि, ये दोनों बातें सिंहके लिये तो लज्जाजनक ही हैं।

और फिर इस पराक्रमशालीके सामने ठहर भी कौन सकेगा ? ' उसकी ऐसी बातोंसे उत्साहित हो कर, भेरीके निनादसे पृथ्वी और आकाशके अंतरालको बधिर करते हुए उस म्लेच्छराजने आगे प्रयाण किया। इधर उस अवसरपर वलभीस्थित चन्द्रप्रभका बिंब, अम्बा और क्षेत्रपालके साथ, अधिष्ठायक देवताके बलसे आकाश मार्ग द्वारा शिवपत्तन (सोमनाथ)की भूमिको प्राप्त हुआ। रथपर अधिरूढ श्री वर्धमानकी अनुपम प्रतिमाने, अदृश्य भावसे, अधिष्ठातृ देवताके बलसे रास्तेमे चलते हुए आश्विनी (आश्विन मासकी) पूर्णिमाके दिन श्रीमालपुरको अलंकृत किया। अन्य अतिशयवाली देवमूर्तियोंने भी यथोचित भूभागको अलंकृत किया। उस नगरकी अधिष्ठातृ देवताने श्रीवर्धमान सूरिके साथ, उत्पातज्ञापनके समय [इस तरहकी बातें कीं]–

२४०. 'हे देवीके सदृश सुंदरि, तुम किस कारणसे रो रही हो सो बताओ'; 'हे भगवन्, मैं वलभीपुरका भंग देख रही हूँ। इसका प्रमाण यह है कि आपके साधु लोग भिक्षामें जो दूध पायेंगे वह तब रक्त हो जायगा। [फिर यहाँसे जा कर] मुनियोंको उसी स्थानपर रहना चाहिये जहाँ पानी भी दूध हो जाय'।

इसके बाद, जब वह उत्पात हुआ और नगरीके पास म्लेच्छ सेना आ गई, तो देशभंगके पापपंकमें फसे हुए रंकने धन दे कर, पंच शब्दवाले वाद्योंके बजानेवालोंको अच्छी तरह फोड लिया। जब शिलादित्य घोड़ेपर चढ़ने लगा तो उन्होने ऐसा प्रतिशब्द किया, जिससे वह घोड़ा, गरुड़की भाँति आकाशमें उड़ गया। यह देख कर राजा शिलादित्य किंकर्तव्यमूढ हो रहा और उन म्लेच्छोंने उसे मार डाला। फिर तो म्लेच्छोंने खेल ही में वलभी शहरको तहस-नहस कर दिया।

२४१. विक्रमादित्यके समयसे ३७५ वर्ष बाद, वलभी नगरीका यह भंग हुआ।

इस प्रकार शिलादित्य राजाकी उत्पत्ति, रंककी उत्पत्ति और उसके द्वारा किये गये वलभी-भंगका यह प्रबन्ध समाप्त हुआ।

*

श्रीपुंजराजकी उत्पत्ति।

२०४) श्रीरत्नमाल नगरमें रत्नशेखर नामक राजा हुआ। वह किसी समय, दिग्विजयसंबंधी यात्रासे वापस लौट कर अपने नगरमें आया। प्रवेशके महोत्सवके समयमें, बाजारकी शोभाकी सजावट देखता हुआ जब जा रहा था, तब एक हाटमें काठके पात्र (कठौत) सहित कुदालको रखे हुए देखा। महलमें प्रवेश करनेके बाद जब महाजन लोग उपहार ले कर आये तो उनसे पूछा कि 'आप सब लोग सुखी तो हैं ?' तो उन्होंने कहा–

' नहीं महाराज, हम लोग सुखी नहीं हैं।' उनके ऐसा कहनेपर विभ्रमसे भ्रान्तचित्त हो कर उनको विदा किया, और फिर कभी किसी बातकी विचारणाके समय नगरके प्रधान जनोंको बुला कर पूछा कि 'आप लोग क्यों सुखी नहीं हैं ?' और साथ ही काठके पात्रके साथ उस कुदालको ऊंचा करके वैसे रखनेका कारण भी पूछा। उन्होंने कहा कि–' जहाँपर स्वामीने काष्ठपात्र आदि देखा है वह धनी, अपने धनकी गिनती न जान कर, कठौतसे ही उसकी नापको जतानेका संकेत करता है। और हम लोग सुखी नहीं हैं सो तो आपके सन्तानाभावसे। यह नगर कोटिध्वजोंसे भरा है। आपने चिर कालतक इसका लालन किया है, पर अब कौन इसे उन्नत बनावेगा ?' यह सुन कर राजाने अपने अंत पुरकी पुरानी रानियोंको वध्या समझ कर नई रानीके करनेकी इच्छा की। तब उसकी अनुमति पा कर वे लोग, पुष्य नक्षत्रवाले रविवारके दिन, पुष्यार्क योगमें, किसी बडे शकुन शास्त्रज्ञके साथ शकुनागारमें गये। वहाँ पर, एक मात्र लकडीका बोझ उठा कर अपना पेट भरनेवाली ऐसी कंगालिन स्त्रीको देखी जिसके सिरपर दुर्गा बैठी थी और जो आसन्नप्रसववाली स्थितिमें थी। शकुनज्ञने उसकी अक्षतादिसे पूजा की। उन लोगोंने कारण पूछा तो उसने कहा कि–' अगर बृहस्पतिका मतव्य सच है, तो इसके गर्भमें जो कोई लडका है वही यहाँका भावी राजा होगा'। इस बातको असंभव समझ कर उन्होंने लौट कर मानोन्नत उस राजाको, ज्यों की त्यों, वह सब बात कह सुनाई। राजाने इससे मनमें खिन्न हो कर, अपने निजी मनुष्योंको भेज कर, उस स्त्रीको जमीनमें गाड देनेकी आज्ञा की। उन्होंने जा कर उससे कहा कि 'इष्ट देवताका स्मरण कर लो'। उनके ऐसा कहनेपर वह मरणभयसे व्याकुल हो उठी। इतनेमें सध्याके हो जानेसे उनकी अनुज्ञा ले कर वह शौच जानेके लिये गई, तो वहीं उसको पुत्रका प्रसव हो गया। वह उसे वहीं छोड कर लौट आई। फिर उसको जमीनमें गाड कर उन मनुष्योंने राजाको उसकी सूचना दी। इधर एक हिरनी उस बालकको, नित्य दोनों शाम दूध पिला कर, बडा करने लगी। उस समय, महालक्ष्मी देवीके सामनेकी टकशालामें जो नया सिक्का पडने लगा उसमें हिरनीके चार पैरके नीचे एक बालककी प्रतिकृति पडती हुई देखी गई, जिसके कारण लोगोंमें यह बात फैलने लगी कि कोई नया राजा उत्पन्न हुआ है। इससे उस रत्नशेखरने पता लगवा कर उस बच्चेको मरवा डालनेके लिये चारों ओर अपने सैनिक भेजे। उन्होंने प्रयत्न करके उस बालकको प्राप्त किया। लेकिन बाल-हत्याके भयसे स्वयं उसे न मार कर, नगरके सदर दरवाजेके रास्तेमें इस तरह रख दिया, कि जिससे सायंकालके समयमें, उस मार्गसे निकलनेवाली गायोंकी खुरोंकी चोटोंसे आप ही आप वह मर जाय और लोकमें कोई अपवाद न हो। उसे वहाँ छोड कर, कुछ दूर खडे हुए, वे जब देखने लगे तो उतनेमें वहाँ गायोंका एक झुंड आता उन्हें दिखाई दिया। पर, मानों मूर्तिमत पुण्यके पुँजकी नाई उस बालकको देख कर वे सब गायें, पैरोंसे स्तंभितकी नाईं, खडी रह गईं। इसके बाद, पीछेसे आगे आ कर एक साँडने, वृषभ जैसे ही तेजस्वी उस बालकको, अपने पैरोंके बीचमें रख कर, सब गायोंको आगे चलनेके लिये प्रेरित किया। बादमें, इस वृत्तान्तको सुन कर, राजा उन सामन्त और नगर लोकोंके द्वारा, उस बालकको मँगा कर, अपने पुत्रकी नाईं उसका पालन करने लगा। 'श्रीपुञ्ज' ऐसा उसका नाम रखा गया।



श्रीमाताकी उत्पत्तिका वर्णन।

२०५) इसके बाद, जब वह रत्नशेखर राजा स्वर्गगामी हुआ तो श्रीपुञ्जका अभिषेक हुआ। कुछ दिन राज्य करनेपर उसके एक पुत्री पैदा हुई। यद्यपि वह सर्वांग सुन्दर थी पर मुँह उसका बानरका-सा था। इससे वह विषयविमुख हो कर वैराग्यके साथ रहने लगी और श्रीमाताके नामसे प्रसिद्ध हुई। एक बार उसे अपने पूर्व जन्मका स्मरण हो आया। पिताके सामने उसने उसे निवेदन किया कि–' मैं पूर्व जन्ममें अर्बुद

गिरि पर वानरकी स्त्री थी। वहां पर किसी एक वृक्षकी, एक शाखासे दूसरी शाखापर कूदते हुए, कोई अगम्य शल्यसे तालुमें विद्ध हो कर मैं मर गई। उसीके नीचे कामिक नामक तीर्थका कुण्ड था जिसमें मेरा धड़ गिर पड़ा। उस तीर्थके पुण्य-प्रभावसे मेरा यह शरीर तो मनुष्यका हो गया; किन्तु वह मेरा मस्तक अभी तक वैसे ही पड़ा है इसलिये मैं वानरके मुखवाली हुई हूं। श्री पुंज ने यह सुन कर अपने विश्वसनीय आदमियोंको [वहाँ भेज कर] उसके शिरको कुण्डमें डाल देनेके लिये आदेश दिया। उन्होंने जा कर चिर कालसे उसी प्रकार पड़े हुए मुखको वैसा ही देखा और फिर उसे कुण्डमें डाला। तब वह श्री माता मनुष्यके मुखवाली हो गई। फिर माता-पिताकी अनुज्ञा ले कर अर्बुदजितनी संख्यावाले गुणोंकी धारक वह, उस अर्बुद पर्वत पर जा कर तपस्या करने लगी। एक बार, एक आकाशचारी योगीने उसे देखा तो वह उसके सौन्दर्यसे हृत-हृदय हो कर आकाशसे नीचे उतरा और प्रेमालाप-पूर्वक उससे कहने लगा कि 'तुम मुझसे व्याह क्यों नहीं कर लेती?'। उसके ऐसा पूछनेपर वह बोली कि–' इस समय रात्रिका पहला पहर व्यतीत हुआ है; चौथे पहरमें–जब तक मुर्गा न बोल उठे तब तकमें–अगर किसी विद्याके बलसे तुम बड़ी सुंदर ऐसी बारह पद्या (पत्थरकी सीढियाँ) बनवा दो तो मैं तुमको वर लूँगी'। उसके ऐसा कहनेपर, तुरन्त ही उस कार्यके लिये उसने अपने चेटकोंके झुंडको नियुक्त किया और दो ही पहरमें वे सब पद्यायें बनवा दीं। पर इधर श्री माता ने उतनेहीमें मुर्गेकी बनावटी आवाज कर दी। उसने आ कर कहा कि [पद्या तैयार है इससे अब] 'विवाहके लिये तैयार हो जाओ' तो इसपर श्री माता ने कहा कि 'जब वे बन रही थीं तभी मुर्गेकी आवाज़ हो गई थी'। तो उसने कहा 'वह तो तुम्हारी मायाजालके बनाये हुए बनावटी मुर्गेकी ध्वनि थी; सो इसको कौन नहीं जानता'। ऐसा उत्तर देते हुए, नदीके किनारे अपनी बहनके द्वारा विवाहका उपहार उपस्थित कराया। श्री माता ने ' सब विद्याओंका मूल जो यह त्रिशूल है इसे यहीं छोड़ कर विवाहके लिये तैयार रहो ' ऐसा कह कर उसे वहां बुलाया। प्रेमके वशमें हतचित्त हो कर वह वैसा ही करके उसके समीप आया। श्री माता ने बनावटी कुत्ते बना कर उसके पैरों पर छोड़ दिये और हृदयमें त्रिशूलका आघात करके उसे मार डाला। इस प्रकार निःसीम शीलके साथ उसने अपनी सारी जिन्दगी बिताई। उस अखण्ड शीलाकी मृत्युके बाद, श्री पुञ्ज राजाने वहाँपर शिखरके बिनाका एक प्रासाद बनवाया। क्यों कि ६–६ महीनेके बाद, उस पर्वतके अधोभागमें रहनेवाला अर्बुद नाग जब हिलता है तो वह पहाड़ काँपने लगता है। इसलिये वहाँके सभी प्रासाद शिखर रहित [बनाये जाते] हैं।

इस प्रकार श्री पुञ्जराज और उसकी पुत्री श्रीमाताका यह प्रबन्ध समाप्त हुआ।

*

चौडदेशके गोवर्धन राजाकी न्यायप्रियताका उदाहरण।

२०६) चौड देशमे एक गोवर्धन नामक राजा हुआ। उसके वहाँ, सभामंडपके सामनेके खंभेमें न्याय घंटा बंधी हुई थी जो न्याय करानेके प्रार्थीजनोंके द्वारा बाजाई जा कर निनाद किया करती। एकबार उसके इकलौते कुमारके रथारूढ हो कर कहीं जाते समय, रास्तेमें अज्ञातभावसे एक गौका बछड़ा मर गया। उसकी माता गायने, आँखोंसे अजस्र आँसू बर्षाते हुए, अपने पराभवके प्रतीकारार्थ सींगोंसे वह न्याय-घंटा बजाई। अर्जुनके समान कीर्तिवाले उस राजाने, घंटाका झंकार सुन कर, गायका समूल वृत्तान्त जाना और अपने न्यायकी प्रतिष्ठाके लिये, प्रातःकाल रथारूढ हो कर, उस अपने एकमात्र प्रिय पुत्रको, उसी रास्तेमें रख कर, उस धेनुके समक्ष उसपर अपना रथ घुमाया। उस राजाके ऐसे सत्त्व और परम भाग्यसे रथका चक्र (पहिया) ऊपर हो उठा और वह कुमार नहीं मरा।

इस प्रकार यह गोवर्धननृपप्रबंध समाप्त हुआ।

*

पुण्यसार राजाका वृत्तांत।

२०७) कान्तीपुरीमें, प्राचीन कालमें, कोई पुराण नृपति, निरभिमान भावसे राज्य कर रहा था। एक बार वह राजपाटिकामें जानेके लिये निकला, तो उसके पीछे पीछे उसका परम-मित्र मतिसागर नामक महामात्य भी चला। रास्तेमें घोड़ा बिगड़ उठा और वह राजाको दूर ले भगा। साथकी चतुरंग सेना क्रमश दूर दूर रह जाने लगी। पर अत्यंत वेगवाले घोड़ेपर चढ़ कर वह मंत्री उसके पीछे पीछे बहुत दूर तक चला गया। कितनी ही दूर चले जानेपर, राजा मार्ग लाँघनेके श्रमसे बिल्कुल थक गया और सुकुमारताके कारण रुधिरके दबावसे वहीं मर गया। मंत्रीने उसका अन्तकृत्य करके, उसके घोड़ेको और उसके वेशको साथ ले आ कर सायकाल नगरमें प्रवेश किया। सीमान्तमें रहे हुए शत्रु राजाओंके भयसे राज्यको निर्विघ्न रखनेकी इच्छासे, उस राजा-ही-की उम्रके और रूपके जैसे एक कुम्हारको राजाका वह पोशाक पहना कर और उसी घोड़ेपर चढ़ा कर महलमें प्रवेश कराया। फिर रानीको सारा हाल बता कर, सचिवने पुण्यसार नाम दे कर उसीको राजा बनाया। इस प्रकार कितनाक काल बीत जानेपर, वह मंत्री सेनाका बड़ा समूह ले कर किसी शत्रु राजाके ऊपर चढ़ाई ले गया और अपने एक खूब विश्वस्त सहायकको राजाकी सेवामें रख गया। बादमें वह राजा निरंकुश हो कर, वेश्यापतिकी तरह, स्वैर विहार करता हुआ समस्त कुम्हारोंको अपने पास बुला और मिट्टीके हाथी, घोड़े, बैल आदि बना कर उनके साथ चिर काल तक खेला करने लगा। ऐसा करनेपर समस्त राजलोक उसकी अवहेलना करने लगे जिसको सुन कर स्कंधावारसे (लड़ाईके मैदानसे) कुछ नौकरोंको साथ ले कर मंत्री वहाँ आया और राजासे इस प्रकार बोला कि—'यदि अपने स्वभावकी चल-विचलताके कारण, तुम उस कुम्हारपनकी बातको न भूल कर किसी मर्यादाको नहीं मानोगे तो मैं तुम्हें देशसे निकाल कर किसी अन्य कुम्हारके बालकको राजा बना दूँगा'। उसकी इस उक्तिसे क्रुद्ध हो कर राजा बोला—'अरे, कौन है यहाँ?' उसके ऐसा कहते ही वे मिट्टीके पुतले सजीव हो उठे और मंत्रीको चिपट पड़े। इस असंभव जैसे महान् आश्चर्यको देख कर और राजाके प्रकट प्रभावसे विस्मित हो कर मंत्री उसके चरणोंपर गिर पड़ा और अपनेको छुड़ानेकी अभ्यर्थना करने लगा। फिर राजाके वैसा ही करने (छुड़ा देने) पर भक्तिपूर्वक मंत्रीने कहा—'आपको साम्राज्य देनेमें मैं निमित्त मात्र हूँ। आपके पुण्यप्रभावसे पुतले सचेतन हो कर इस प्रकार आज्ञाकारी हो रहे हैं, सो इसमें पूर्वजन्मके कर्म ही कारण हैं, और इसलिये आपका यह जो पुण्यसार नाम है वह सार्थक है।

इस प्रकार यह पुण्यसारका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

कर्मसार राजाका प्रबन्ध।

२०८) प्राचीन कालमें, कुसुमपुर नगरका नंदिवर्धन नामक राजकुमार, देशान्तर भ्रमणके कौतुकसे माता-पितासे बिना पूछे ही अपने छत्रधरके साथ चल पड़ा। यदृच्छासे घूमता हुआ, एक प्रात कालमें, किसी गाँवमें आ पहुँचा। वहाँ, पुत्रहीन राजा मर गया था, इससे सचिवोंने अभिषिक्त करके पट्टहस्तीको किसी नये राजाकी तलाशमें सारे नगरमें घुमाया। संयोगवश वह वहांपर आया और उस निकटस्थ नृप कुमारको, दुःस्वप्नकी नाईं भूल कर, ससंभ्रम उस हाथीने छत्रधरका अभिषेक किया। प्रधानोंने बड़े महोत्सवके साथ उसको नगरमें प्रवेश कराया। उसने राजकुमारको भी वैसे ही ठाठके साथ अपने साथ ले कर महलमें प्रवेश किया। बादमें—'मैं राजलोकका स्वामी हू, लेकिन तुम मेरे स्वामी हो' इस प्रकारके अन्तरंग वचनोंसे वह उस राजकुमारकी आराधना करता रहा। पर वह राजा राजगुणोंके अयोग्य था और बेहद बेवकूफ था। वर्णाश्रम धर्मके पालनके परिश्रममें अनभिज्ञ और प्रजाका पीड़क हो कर ज्यों ज्यों वह राज्य करता था त्यों त्यों, शकरके

शिरमें रहे हुए चंद्रमाकी तरह, वह प्रतिदिन क्षीण होता जाता था। उस कुमारको वैसा देख कर, किसी समय राजाने दुर्बलताका कारण पूछा तो उसने कहा कि–' दुर्बुद्धिके कारण तुम जो प्रजाको पीड़ा दे रहे हो यह अत्यन्त अनुचित कर्म है और इस कारण मैं कृश होता जा रहा हूं '।

२४२. जिसे मूर्खोंके वीच वास करना पड़े तथा जिसके स्वामिके कानोंके पास दुर्जनोंकी जीभ लगती हो, उसका यदि जीवन वना रहे तो उसे ही लाभदायक समझना चाहिए; क्षीण होनेमें तो विस्मय ही काहेका।

सो मैने इस गाथाके अर्थको सत्य कर वताया है। उसके इस कथनके अनन्तर राजाने कहा कि–' इस पापनिरत प्रजाके अपुण्योदयने ही तो, निश्चय करके भविष्यमें इसको पीडित करनेके लिये, मुझे राजा वनाया है। यदि विधाता इस प्रजाके भाग्यमे परिपालना लिखता तो उस समय पट्ट हस्ती तुम्हारा ही अभिषेक करता।' उसकी इस उक्ति और युक्ति रूप औषधोंसे उस कुमारका वह रोग दूर हो गया और वह शरीरसे पुष्ट होने लगा।

इस प्रकार यह कर्मसार प्रबंध समाप्त हुआ।

*

राजा लक्ष्मणसेन और उमापतिधरका प्रबंध।

२०९) **गौडदेशकी** लखणावती नगरीमें ल क्ष्म ण से न नामक राजा अपने उ मा प ति ध र नामक सर्वबुद्धिनिधान ऐसे सचिवके साथ, सारी राज्य व्यवस्थाका विचार करते हुए, राज्य करता था। वादमें वह, मानों अनेक मातंग (हाथी) के सैन्यके संगसे मदान्धता धारण करके, किसी वेश्याके संगरूप कलङ्कपंकमें डूव गया। उ मा प ति ध र ने यह व्यतिकर जाना तो, प्रकृतिसे क्रूर होनेके कारण स्वामीको वेकावू समझ कर, प्रकारान्तरसे उसे समझानेके लिये, उसने सभामंडपके भारपट्टपर, गुप्त-भावसे इन कविताओंको लिख दिया –

२४३. हे जल! शीतलता तो तुम्हारा ही गुण है, और फिर तुम्हारी स्वाभाविकी स्वच्छताकी तो वात ही क्या कही जाय–तुम्हारे ही स्पर्शसे अन्य अपवित्र वस्तुयें पवित्र होती हैं। इससे वढ़कर और तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है कि तुम्हीं तो शरीरधारियोंके जीव हो। फिर अगर तुम्हीं नीच पथसे जाते हो तो तुम्हें रोकनेमें कौन समर्थ है?

२४४. हे शिव! तुम अगर छोटे वैल पर चढते हो तो उससे दिग्गजोंकी क्या हानि है? तुम अगर साँपोंका आभूषण पहनते हो तो इससे सोनेका क्या नुकसान है? अगर अपने शिरपर इस जड़ किरण चन्द्रमाको धारण करते हो तो उससे त्रैलोक्यके दीपक सूर्यका क्या विगड़ता है? तुम जगत्के ईश हो तो फिर हम तुम्हे क्या कहें?

२४५. यद्यपि कटे हुए ब्रह्मशिरको वह धारण करता है, यद्यपि प्रेतोंसे उसकी मित्रता है, यद्यपि रक्ताक्ष हो कर मातृकाओंके साथ वह क्रीडा करता है, यद्यपि स्मशानमें वह प्रीति रखता है और यद्यपि सृष्टि करके वह उसका संहार कर देता है, तो भी, मैं उसमें मन लगा कर भक्ति-पूर्वक सेवा करता हूँ। क्यों कि त्रिलोक शून्य है और वह जगतका एक-मात्र ईश्वर है।

२४६. इस महान् प्रदोषकालमें तुम्हीं एक मात्र राजा (चंद्र) हो, और इसी लिये तो क्या कमलोंकी लक्ष्मीको वंद करके कुमुदोंकी श्रीको वढ़ा नहीं रहे हो? पर इसमें जो ब्रह्माका निवास है और पुष्पोंकी पंक्तिमें इसकी जो प्रतिष्ठा है उसको दूर करनेवाले तुम कौन हो? क्यों कि वह तो स्वयं विधाता भी करनेमें समर्थ नहीं है।

२४७ हे हार! तुम सद्वृत्त[1], सद्गुण, महार्ह, और अमूल्य हो कर प्रियाके घन ऐसे स्तनतटके उपयुक्त तुम्हारी सुंदर मूर्ति है। किन्तु हाय, पामरीके कठोर कंठमें लग कर टूट जानेसे तुमने अपनी वह गुणिता खो दी है।

किसी राजासभाके अवसरपर आये हुए राजाने इन कविताओंको देखा और उनका अर्थ समझ कर भीतर ही भीतर मंत्रीसे द्वेष धारण करने लगा। क्यों कि–

२४८ आजकल प्रायः सन्मार्गका उपदेश करना, उसी तरह कोपका कारण होता है, जैसे नकटेको दर्पण दिखाना।

इस न्यायसे कुपित हो कर राजाने उसे पदभ्रष्ट कर दिया। इसके बाद उस राजाने, एक बार, राजपाटिकासे लौटते हुए रास्तेमें दुर्गतिग्रस्त, निरुपाय और एकाकी ऐसे उस उमापतिधरको देखा, तो क्रोधपूर्वक उसे मार डालनेके लिये, हस्तिपालके द्वारा उस पर हाथी चलवा दिया। तब उसने महावतसे कहा कि–'जब तक, मैं राजाके सामने कुछ कह पाऊँ तब तक, तुम वेगसे हाथीको जरा थाम रखो'। उसकी बात सुन कर उसने वैसा ही किया, तो फिर वह उमापतिधर बोला–

२४९ जिसको, सज्जन ऐसे गुरु लोग उपदेश नहीं देते उस शिवका कैसा हाल हो रहा है?–नंगा फिरता है, शरीरमें धूल लगाता है, बैलकी पीठपर चढ़ता है, साँपोंसे खेला करता है, और जिसमेंसे लोहू टपकता है ऐसे हाथीके चमडेको पहन कर नाचता है। इस प्रकारके आचारबाह्य तथा अन्य कई प्रकारके [निंद्य] आचरणोंसे वह प्रेम रखे करता है।

इस प्रकार उसके विज्ञानरूपी वचनांकुशसे उस राजाका मनरूपी हाथी वश हुआ, और वह अपने चरित्रके विषयमें पश्चात्ताप करता हुआ अपनी खूब निंदा करने लगा। धीरे धीरे उस वासनासे मुक्त हो कर उसने फिरसे उसे अपना प्रधान बनाया।

इस प्रकार लक्ष्मणसेन और उमापतिधरका यह प्रबंध समाप्त हुआ।

*

काशीके जयचन्द्र राजाका प्रबन्ध।

२१०) काशीनगरीमें जयचन्द्र नामक राजा, महती साम्राज्य लक्ष्मीका पालन करता हुआ, पंगु (लंगडा) इस विरुदको धारण करता था। कारण यह था कि बडे भारी सैन्य समूहसे व्याकुलित होनेके कारण, वह गंगा-यमुना नदीरूप लाठीके सहारे विना कहीं आ-जा नहीं सकता था। वहाँ रहनेवाले किसी शालापतिकी सूहव नामक पत्नी, जिसने अपने सौन्दर्यसे तीनों लोकके स्त्रीजनोंको जीत लिया था, किसी समय भयानक ग्रीष्म ऋतुमें जलकेलि करके गंगाके किनारे खडी थी। तब उस खञ्जननयनाने देखा कि एक साँपके शिरपर खजन पक्षी बैठा है। वहीं पर नहानेके लिए आये हुए किसी ब्राह्मणके पैरों पड़ कर उसने उस असंभव शकुनका विचार पूछा। उस नैमित्तिकने कहा कि–'अगर मेरा सदा आदेश मानना मंजूर करो तो मैं इसका विचार निवेदन करूँ, नहीं तो नहीं'। उसने वैसा करनेकी प्रतिज्ञा की, तो ब्राह्मणने कहा कि–'आजसे सातवें दिन तुम इस राजाकी पटरानी होंगी'–ऐसा कह-सुन कर वे दोनों यथा-स्थान चले गये। जिस दिनके लिये निमित्तज्ञने निर्णय दिया था उसी दिन राजपाटिकासे लौटते हुए राजाने, किसी एक गलीमें अगण्य लावण्यसे सुभग अंगवाली उस शालापतिकी स्त्रीको खड़े देखा। उसे अपने चित्तका सर्वस्व चोरनेवाली

---

१ इस पद्यमें प्रयुक्त सद्वृत्त, सद्गुण और गुणित्व ये शब्द प्रसिद्ध अर्थके अतिरिक्त श्लेषसे हारके पक्षमें इन अर्थोंके वाचक हैं–सद्वृत्त=अच्छी गोलाईवाला, सद्गुण=अच्छे धागेवाला, गुणित्व=धागेकी बनावटवाला।

समझ कर उसने अपने पास रख लिया और पटरानी बनाया। इसके बाद उस कृतज्ञाने ब्राह्मणके प्रति की हुई अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके राजासे उस विद्याधर नामक ब्राह्मणको बुलानेके लिये प्रार्थना की। राजाने डुग्गी पिटवा कर विद्याधर नामक ब्राह्मणको बुलवाया तो उस नामके सात सौ ब्राह्मण आ कर उपस्थित हुए। उनमेंसे उस एकको पहिचान कर अलग बैठाया और बाकी सबको यथोचित सत्कारके साथ विदा किया गया। बादमें उस विपत्तिग्रस्त विद्याधरसे राजाने कहा कि–'जो इच्छा हो माँगो'। राजाके आदेशसे प्रमुदित हो कर उस ब्राह्मणने 'सदैव उसकी अंगसेवा' की प्रार्थना की। राजाने स्वीकार करके, उसके असीम चातुर्यकी पर्यालोचना करते हुए उसे सर्वाधिकारके भारका धारण करनेवाला धुरन्धर पद दिया। वह क्रमशः सम्पत्तिशाली बन गया। अपने अन्तःपुरकी बत्तीस सुंदरियोंके लिये ऊँची जातिके कर्पूरके बने हुए नित्य नये आभरण बनवाता और यह कह कर कि पुराने आभरण निर्माल्य हैं उन्हें एक छोटी कुईमें डलवा देता। इस प्रकार साक्षात् देवतावतारकी नाईं दिव्य भोगोंको भोगता हुआ [नित्य] अठारह हजार ब्राह्मणोंको यथेच्छ भोजन दान करनेके पश्चात् स्वयं भोजन करता।

२११) इसके बाद, विदेशी राजाके ऊपर चढ़ाई करनेके लिये राजाकी आज्ञासे, चतुर्दश विद्याओंके ज्ञाता विद्याधरने नाना देशोंमें घूमते हुए, एकबार एक ऐसे देशमें जा कर डेरा दिया जहाँ जलानेके लिये इन्धन (लकड़ी आदि) नहीं था। तब उन ब्राह्मणोंकी रसोईके समय, रसोईयोंके वस्त्र तेलमें भिगो कर उन्हींको इन्धन बना कर नित्यकी भाँति ही उनको भोजन कराया। इस तरह शत्रुओंको जीत कर जब वह लौट कर वापस नगरके समीप आया तो मालूम हुआ कि, पिण्याक (भोजन) के बनानेकी इच्छासे जो दुकूल जलाये गये, उससे राजा कुपित हो गया है। इससे उसने अपने घरको तो याचकोंके द्वारा लुटवा दिया और स्वयं तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। राजा भी फिर पीछे जा कर उसका अनुनय करने लगा, पर उसने स्वाभिमानवश, अपनी उस (भोजन बनानेकी) इच्छाके कारण राजाका वैसा आशय (क्रोधयुक्त भाव) हो गया था यह बता कर, जैसे तैसे उसकी अनुमति ले कर अपना अन्त साधन किया।

२१२) अनन्तर, सूहवदेवीने राजासे अपने पुत्रके लिये युवराज पदवी माँगी। राजाने कहा कि– 'खेलिनके लड़केको हमारे वंशमे राज्य नहीं दिया जाता'। इससे उसने राजाको मारनेके लिये म्लेच्छोंको बुलवाया। उस स्थान पर रहनेवाले पुरुषों (राजदूतों) से इस बातका हाल जान कर, राजाने एक दिगंबर भिक्षुकसे, जिसने पद्मावतीसे वर प्राप्त किया हुआ था, सादर निमित्त (कोई मांत्रिक उपाय) पूछा। उसने राजाको विश्वास पूर्वक कहा कि–'पद्मावतीका आदेश म्लेच्छागमनके विरुद्ध है'। इसके अनन्तर कुछ दिनके बाद, यह सुन कर कि म्लेच्छ नजदीक आ गये है, राजाने उस दिगम्बरसे फिर पूछा कि यह 'क्या बात है?' तो उसने उसी रातको राजाके सामने हीं पद्मावतीको होमादि देना आरम्भ किया। तब उसकी उस उत्तम आकर्षण-विद्याके बलसे, होमकुण्डकी ज्वालाओंमें प्रत्यक्ष हो कर, पद्मावतीने तुरुष्कों (तुर्कों) के आगमनका निषेध ही बताया। तब फिर उस क्रुद्ध दिगम्बरने उसके कान पकड़ कर अत्यन्त क्रोधसे कहा कि–'म्लेच्छ सेनाके निकट आ जानेपर भी तूं ऐसी मिथ्या बात बोल रही है'। इस तरह फटकारी जानेपर उसने कहा कि–'तूं जिस पद्मावतीको अति भक्तिके साथ यह पूछ रहा है वह तो हमारे प्रतापके बलसे कहीं भाग गई है। मैं तो उस म्लेच्छराजकी कुलदेवी हूं। मिथ्या बोल कर लोगोंमें विश्वास पैदा करके, उन्हें म्लेच्छोंके द्वारा विश्वास (प्राण-रहित) कराती रहती हूं'। ऐसा कह कर वह तिरोहित हो गई। बादमें प्रातःकालमें ही म्लेच्छ सेना द्वारा वाणारसी नगरीका घिरा जाना राजाने जान पाया। उनके धनुष्योंके टंकारोमे, राजाके चौदह सौ नगाडोंकी आवाज कहीं डूब गई और म्लेच्छ सेनाके भयसे

मनमें व्याकुल हो कर उस सूहवदेवी के पुत्रको अपने हाथीपर बैठा कर (उसके साथ) राजा गंगाके जलमें डूब मरा।

इस प्रकार यह जयचन्द्रका प्रबंध समाप्त हुआ।

*

जगद्देव क्षत्रियका प्रबंध।

२१३) त्रिविध वीरश्रेष्ठत्वको धारण करनेवाला जगद्देव नामक एक क्षत्रिय वीर हुआ। वह श्री **सिद्धराजके** द्वारा खूब सम्मानित होता था। फिर भी उसके गुणरूप मंत्रके वशीभूत हो कर शत्रुमर्दन ऐसे राजा **परमर्दीने** जब उसे आग्रहपूर्वक अपने यहा बुलाया, तो पृथ्वीरूप रमणीके केशकलापके समान उस कुन्तल देशमें वह गया। दरवानेपर पहुँच कर जब उसने राजाको अपने आनेकी खबर भिजवाई उस समय [राजाके आगे] एक वेश्या, नंगी हो कर 'पुष्पचलन' नृत्य कर रही थी। वह तत्काल ही लज्जित हो कर अपनी चादर ओढ कर वहीं बैठ गई। जब राजाके द्वारपालने जगद्देवको प्रवेश कराया तो राजाने उठकर आलिंगन दिया और प्रिय आलाप आदि किया। इस सम्मानके बाद, फिर उसे प्रधान परिधानदुकूल और लाखोंकी कीमतके अतुलनीय ऐसे दो अन्य वस्त्र भेंट स्वरूप दिये। बादमें जगद्देवके महामूल्यवान आसन पर बैठ जानेपर सभाका सभ्रम जब दूर हुआ, तो राजाने उस वेश्याको नाचनेका आदेश किया। तब उस उचितज्ञा चतुर नारीने कहा कि-' ससारके एकमात्र पुरुष श्री जगदेव नामक अब यहापर विद्यमान हैं इसलिये इनके सामने विना वस्त्रके नाचते मैं लजाती हू। स्त्रिया स्त्रियोंके सामने ही यथेष्ट चेष्टा कर सकती हैं '। उसकी इस लोकोत्तर प्रशसासे मनमें प्रमुदित हो कर जगद्देवने राजाके दिये हुए उन दोनों वस्त्रोंको उसे दे डाला।

इसके बाद, जब परमर्दीके प्रसादसे जगद्देवको किसी एक देशका आधिपत्य मिला तो उसे सुनकर उसका ऋणग्रस्त उपाध्याय उससे मिलने आया। उसने यह काव्य भेंट किया-

२५० हम दो आदमीके पुण्यको मानते हैं-एक तो अक्षत्रिय विधिसे वालिको मारनेवाले किसी भगवान् (रामचद्र) के, और दूसरे सगीतमें आसक्त कुन्तलपतिके। इनमेंसे एक (रामचद्र) ने तो मरुत्तनय (हनुमान्) की दोनों सुदर भुजाओं रूप कामधेनुका दोहन किया और दूसरे (कुन्तलपति) ने, हे प्रतिपक्ष (शत्रु) के लिये प्रत्यक्ष परशुराम, आप जैसे चिन्तामणिको प्राप्त किया।

इस काव्यके पारितोषिकमें उस स्थूललक्ष (लक्षण-सम्पन्न) ने आधा लाख दिया।

२५१ चकवेने पाथ (मुसाफिर) से पूछा कि ' हे मित्र ! बताओ पृथ्वीमें बसने लायक वह कौनसा देश है जहाँपर चिर कालतक रात्रि नहीं होती ? ' (इसपर पाथने कहा कि) ' श्री जगद्देव नामक पुरुष जो सुवर्णदान कर रहा है उससे थोडे ही दिनोंमें मेरु पर्वत समाप्त हो जायगा। और फिर सूर्यका छिपना बद हो कर एक मात्र अद्वैत ऐसा (विना रात्रिका) दिन ही बना रहेगा।

२५२ पृथ्वीकी रक्षा करनेमें दक्ष ऐसे दाहिना हाथवाले, दाक्षिण्यकी शिक्षा देनेमें गुरुके समान, कल्याणके स्थान और धन्यजन्म ऐसे जगदाता जगद्देवके विद्यमान होनेपर, विद्वानोंके घर भी ऐसे बन गये हैं कि जिनमें प्रतिदिन, मतवाले हाथी और घोडोंके बाधने योग्य वृक्षोंकी रस्सिया टूट जानेके कारण, नौकर लोग व्याकुल बने रहते हैं।

२५३ तुम्हारे जीवित रहते बलि, कर्ण और दधीचि जीते हैं और हमारे जीवित रहते दारिद्र्य जीता है।

२५४. हे ज ग दे व ! हम नहीं जानते कि किसका हाथ थक जायगा—दरिद्रोंको रचते रचते ब्रह्माका या उन्हें कृतार्थ करते करते तुम्हारा ।

२५५. हे ज ग दे व ! इस जगद्रूप देवमंदिरमें प्रतिष्ठित तुम्हारे यशरूपी शिवलिंगके ऊपर [आकाशके] नक्षत्रोंने अक्षतका रूप धारण किया है ।

[१७४] हे ज ग दे व ! चारों समुद्रोंमें डुबकी मारनेके कारण तुम्हारी कीर्ति मानों ठंडीसे जकड गई है, इसलिये अब ताप लेनेके निमित्त वह सूर्य-मण्डलको चली है ।

[१७५] क्षत्रियदेव श्री ज ग दे व भूपालका कल्याण हो ! जिसके यशरूपी कमलमें आकाशने भ्रमरका रूप धारण किया ।

[१७६] पृथ्वीमण्डलपर सुवर्ण वितरण करनेवाला तो एकमात्र ज ग दे व ही है और उसके मांगनेवालोंकी संख्या हजारोंकी है—ऐसा सोच कर, ऐ मेरे मन विषाद मत करो। सूर्य कितने हैं और प्रबल अन्धकारराशिमे डूबते हुए जन-समूहकी प्राणरक्षाके लिये यात्रामें प्रवृत्त उनके घोड़ोंके खुरसे खुदा हुआ यह दिङ्मण्डल कितना विस्तृत है !

ज ग दे व की दी हुई ‘ न नवम् ’ (नया नहीं है) इस समस्याकी पूर्ति एक पंडितने इस प्रकार की—

२५६. समुद्र अगाध है, पृथ्वीमण्डल विशाल है, आकाश विभु है, मेरु पर्वत ऊँचा है, विष्णु प्रथित-महिमा है, कल्पवृक्ष उदार है, गंगा पवित्र है, चंद्रमा अमृतवर्षी है और जगदेव वीर है—ये सब (विशेषण-युक्त विशेष्य) नये नहीं हैं ।

[१७७] तुझ समान जगद्दाता ज ग दे व के विद्यमान होनेपर, अब लोक साहसांक राजाके चरितके आश्चर्योंमें भी मन्दादर हो गये हैं तो फिर पार्थकी उस सच्ची कथाका कहना तो वृथा ही है। यह पृथ्वीमें बलि है, यह भूचर शक्र है। कृष्णको किसीने देखा नहीं, पृथ्वीमंडल कल्पवृक्षसे शून्य है । कामदेवका शोच न करना चाहिए। (—इस पद्यका भाव कुछ स्पष्ट नहीं ज्ञात होता.)

[१७८] हे ज ग दे व ! तुम्हारा यशोरूप दुर्वार चंद्रमा जब निरंतर ही अपनी किरणश्रेणीको दसों दिशाओंमें विकीर्ण करने लगा, तब सारे भुवनको राकाके लिये भयका स्थान समझ कर, ‘कुहू’ शब्द है सो एक मात्र कोकिलके कंठका शरणभूत हो कर रहा । (‘कुहू’ का एक अर्थ अमावस्याकी रात्रि है, और दूसरा कोकिलका शब्द है । जगदेवके यशरूपी चंद्रमाका निरंतर प्रकाश बना रहनेसे अमावस्याका अभाव हो गया, इसलिये कुहू शब्दका व्यवहार केवल, कोकिलके शब्दमें रह गया ।)

[१७९] हे प्रभु ज ग दे व ! तुम्हारे रूपमें मुग्ध हो कर, वातायन पर स्थित सुभ्रू (सुंदर भ्रुवों वाली) रमणियोंकी कमलदलसे द्रोह करनेवाली नाचती हुई आँखें सभय, सालस, सगर्व, सार्द्र, तिरछी, चकित, भ्रान्त और आर्त की नाईं, कहां नहीं पड़तीं हैं ।

इस प्रकारके बहुतसे काव्य हैं जो यथाश्रुत जानने चाहिये ।

राजा श्री प र म र्दी रा ज की पट्टदेवीको ज ग दे व ने अपनी भगिनी माना था। एक बार, राजाने सीमान्त भूपालको हरानेके लिए श्री ज ग दे व को भेजा । वह, वहाँ जब देवार्चन कर रहा था उसी समय छल करके आघात करनेवाले शत्रुने उसकी सेनामें उपद्रव मचाया। इसका हाल सुन कर भी वह ज ग दे व उस देवपूजासे बाहर नहीं निकला । प्रणिधि पुरुषोंके मुँहसे राजाने ज ग दे व का पराजय हुआ सुना तो यह अश्रुतपूर्व बात सुन कर

अपनी रानीसे परमर्दी ने [व्यंग्य करते हुए] कहा कि—' तुम्हारा भाई समरवीरताका तो बडा अहंकार धारण करता है लेकिन शत्रुओं द्वारा आक्रान्त हो कर वह वहाँसे भाग भी नहीं सका '। राजाकी इस मर्मभेदिनी परिहास वाणीको सुन कर रानीने प्रातःकालमें पश्चिमकी ओर देखा। राजाने पूछा ' क्या देखती हो ? ' इस पर रानीने कहा कि ' सूर्योदय '। तब राजाने कहा ' पगली, क्या कभी पश्चिम दिशामें भी सूर्योदय होता है ? ' इसपर वह बोली – 'पश्चिममें सूर्योदयका होना असंभव हो कर भी, कभी विधिके विधानके विरुद्धका होना संभव है, पर क्षत्रियोंमें देव जैसे जगदेवका पराजय होना तो संभव ही नहीं'। इस प्रकार उस दम्पतीका प्रिय आलाप हो रहा था। इधर, देवपूजाके बाद जगदेवने ५०० सुभटोंके साथ उठ कर, उस शत्रु राजाकी सेनाका क्रीडामात्र-ही-में इस तरह दलन कर डाला, जिस तरह सूर्य अन्धकारके समूहका, सिंह-शाव गजयूथका और प्रचण्ड अन्धड घनघोर मेघमालाका दलन करता है।

२१४) वह परमर्दी राजा, जगतमें एक उदाहरणभूत ऐसे परम ऐश्वर्यका अनुभव करता हुआ, एक निद्राके अवसरको छोड कर, दिनरात अपने ओजके प्रकाशका करनेवाला छुरिका-अभ्यास (छुरी चलानेकी कलाका परिश्रम) किये करता था। भोजनके अवसर पर रसोई परोसनेमें व्यस्त ऐसे एक एक रसोईयेको नित्य ही निर्दय भावसे उस छुरिकासे काट डालता था। इस प्रकार सालमें ३६० रसोईयोंका वह संहार करता हुआ ' कोप-कालानल 'के विरुदसे प्रसिद्ध हो गया।

२५७ हे आकाश, तुम फैल जाओ, दिशाओ, तुम आगे बढ़ो, हे पृथ्वी, तुम और भी चौडी हो जाओ, आदिकालके राजाओंके यशका उज्जृम्भण तो तुम लोगोंने प्रत्यक्ष किया ही है, अब परमर्दी राजाके यशोराशिका विकाश होनेसे देखो कि यह ब्रह्माण्ड, प्रस्फुटित बीजोंके कारण, फटे हुए दाडिमकी दशाको प्राप्त हो रहा है।

इत्यादि स्तुतियोंसे स्तुत हो कर वह राजा चिर कालतक साम्राज्यके सुखका अनुभव करता रहा।

२१५) उसका, सपादलक्षके राजा पृथ्वीराजके साथ युद्ध हुआ और समरांगणमें वह अपने सैन्यके पराजित होने पर, दिग्विमूढ हो कर, किसी एक दिशासे भागता हुआ अपनी राजधानीमें आया। उस परमर्दी राजाके द्वारा पूर्वमें अपमानित कोई सेवक, देश निकालेकी सजा पा कर पृथ्वीराजकी सभामें आया। उसके प्रणाम करनेके बाद राजाने उससे पूछा कि–' परमर्दीके नगरमें सुकृती लोग विशेष करके किस देवताकी पूजा करते रहते हैं ? ' इस प्रकार स्वामिके पूछनेपर उसने शीघ्र ही यह तत्कालोचित पद्य पढ़ा–

२५८. शिवकी पूजा करनेमें वह मंद है, कृष्णार्चन करनेकी उसे कोई तृष्णा नहीं है, दुर्गाको प्रणाम करनेमें वह स्तब्ध रहता है, विधाता रूपी ग्रह [उसके यहाँ पूजा न पानेसे] व्यग्र रहता है। ' हमारा स्वामी परमर्दी इसीको मुहमें रख कर पृथ्वीराज नरपतिसे रक्षा पा सका है ' इस बातको सोच कर वहाँकी प्रजा तृण ही की पूजा किये करती है।

इस स्तुतिसे प्रसन्न हो कर राजाने उसे यथेष्ट पारितोषिक दे कर अनुगृहीत किया। उसने (पृथ्वीराज) इक्कीस वार म्लेच्छराजाको हराया था। तब बाईसवीं वार वही म्लेच्छराज अपनी दुर्धर सेनाके साथ चढ़ कर पृथ्वीराजकी राजधानीके पास आ कर ठहरा। मक्खीकी तरह वारवार उडा देनेपर भी, इस प्रकार, शत्रुको फिर फिर आते देख उसकी तरफ राजाकी उपेक्षाका होना जाना, तो स्वामीकी असीम कृपाका पात्र और उसके दूसरे शरीरके जैसा वह तुंग नामक क्षात्रतेजधारी वीरश्रेष्ठ, अपनी छायाके जैसे पुत्रके साथ म्लेच्छ-राजकी सेनामें जा घुसा। रातके समय उसने देखा कि उस शत्रुके तंबूके चारों ओर एक खाई खुदी हुई है जिसमें खैरकी लकडीकी आग धधक रही है। यह देख वह अपने पुत्रसे बोला–' मैं इस खाईमें कूद पडता हू,

तुम मेरी पीठपर पैर रख कर जा कर म्लेच्छराजको मार डालो'। पिताके ऐसा आदेश करनेपर उसने कहा कि— 'यह काम मेरे लिये साध्य नहीं है कि अपने जीवनकी आकांक्षासे मैं पिताकी मृत्यु देखूं!; सो मैं ही इसमें पड़ता हूं और आप ही मेरी पीठपर पैर रख कर उसका अन्त कर डालें'। उसके वैसा करनेपर, स्वामीके कार्यको सिद्ध-प्राय हुआ मान कर आसानीसे उसने शत्रुको मार डाला और फिर जैसे आया था वैसे ही घर लौट गया। जब प्रभात होनेको आया तो अपने स्वामीको मरा देख कर वह म्लेच्छ सेना दीन हो कर भाग गई। गंभीरप्रकृति होनेके कारण उस तुंग सुभटने राजाको वह कुछ भी हाल नहीं बताया। किसी समय, राजमान्य होनेके कारण अत्यंत परिचित ऐसी उस तुंग सुभटकी पुत्रवधूको मंगलदर्शक हस्तकंकणसे रहित देख कर, राजाने संभ्रमभावसे उसका कारण पूछा। समुद्रकी नाईं गंभीर होनेके कारण, मौनमर्यादाके साथ प्रथम तो उसने कुछ भी नहीं बताया। तब राजाने अपनी शपथ दे कर पूछा। इस पर उसने यह कह कर कि—' यद्यपि अपना गुण कथन करना मेरे लिये दुष्कर कार्य है तथापि आज्ञा होने निवेदन करना पड़ता है' ऐसा कह कर प्रत्युपकारभीरु हो कर उसने वह वृत्तान्त जैसा घटा था वैसा ही निवेदन किया।

२५९. उच्च बुद्धिवाले मनुष्योंके चित्तकी यह कोई बडी ही अलौकिक कठोरता है कि किसीका उपकार करके फिर वे दूसरेसे प्रत्युपकार पानेके भयसे उनसे निःस्पृह हो रहते हैं।

इस प्रकार यह तुंगसुभट-प्रबंध समाप्त हुआ।

*

पृथ्वीराजका म्लेच्छोंके हाथ मारा जाना।

२१६) इसके अनन्तर, फिर कभी, उस म्लेच्छराजका पुत्र पिताका वैर स्मरण करके **सपादलक्ष**के राजा पृथ्वीराजके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे बडी तैयारीके सहित चढ़ कर आया। पृथ्वीराज की सेनाके वीर धनुर्धरोंके, वर्षाकालकी मूसलधार वृष्टिकी नाईं बरसते हुए, बाणोंकी मारसे वह स-सैन्य भगा दिया गया और फिर **पृथ्वीराजने** उसका पीछा किया। इस समय भोजन-विभागके अधिकारी पञ्चकुलने कहा कि— 'सात सौ सांढनियां जो भोजनकी सामग्री ढोतीं हैं वे पर्याप्त नहीं हैं, इसलिये महाराज कुछ और सांढनियां देनेकी कृपा करें'। राजा यह सुन कर बोला कि —' म्लेच्छराजको मार कर उसके ऊँटोंका झुंड कब्जे किया जायगा, और फिर तुम्हें माँगी हुई सांढनियां देनेका प्रबन्ध किया जायगा'। ऐसा कह कर उसे समझा दिया और फिर जब आगे प्रयाण करने लगा तो सोमेश्वर नामक प्रधानने वारंवार निषेध किया। राजाने इस भ्रमसे कि वह उस (म्लेच्छ) के पक्षमें है, उसके कान काट लिये। इस अत्यन्त पराभवके कारण, वह अपने स्वामीसे कुपित हो कर उस म्लेच्छपतिके पास चला गया। उसको अपना पराभव-वृत्तान्त कह कर, उसके मनमें विश्वास बिठाया और उसको पृथ्वीराजके पड़ावके पास ले आया। पृथ्वीराज एकादशीके पारणाके पश्चात् जब सोया हुआ था तो उसकी सेनाके वीरोंके साथ म्लेच्छोंकी लड़ाई छिड़वा दी। राजा गाढी नींदमें सो रहा था। उसी अवस्थामें तुर्कोंने उसे कैद कर लिया और वे अपने स्थानमें ले गये। फिर दूसरी एकादशीके पारणाके अवसरपर, जब वह राजा [कैदीकी हालतमें] देव-पूजा कर रहा था, उस समय म्लेच्छराजने रँधा हुआ मांस, पत्रके पात्रमें (दोनेमे) रखवा कर उसके तंबूमें भिजवाया। उसके देवपूजामें व्यस्त होनेके कारण, एक कुत्ता आ कर उस मांसको उठा ले गया। तब पहरेदारोंने कहा कि 'इसकी रक्षा क्यों नहीं करते?' इसपर राजाने कहा कि—' मेरी जिस भोजनसामग्रीको कभी सात सौ सांढनियां भी ठीक तरह नहीं ढो सकती थीं, उसी भोजनकी आज यह दुर्दशा है—इस बातको मैं अनाकुल हो कर कौतुकसे देख रहा हूं'। उन्होंने कहा कि—'क्या तुममें अब भी कुछ उत्साह शक्ति बाकी है?' तो उसने कहा ' यदि मैं अपने स्थानपर जा पहुँचूं

तो अपनी शारीरिक ताकात कैसी है सो दिखा दू '। पहरेदारोंने यह बात उस म्लेच्छराजको जा कर कही तो वह उसके साहसको देखनेकी इच्छासे, उसे उसकी राजधानीमें ले आया और राज-भवनमें ले जा कर उसको गादीपर विठाया। वादमें ज्यों ही उन्होंने देखा तो उसके महलकी चित्रशालामें ऐसे चित्र वने हुए नजर आये जिनमें सूअर म्लेच्छोंको मार रहे हैं। यह दृश्य देख वह तुर्कोंका राजा अपने मनमें अत्यन्त पीडित हुआ और वहीं पर उसने कुठार द्वारा पृथ्वीराजका सिर काट कर उसका सहार कर डाला।

इस प्रकार नृपति परमर्दी, जगदेव और पृथ्वीराज इन तीनोंका यह प्रबध समाप्त हुआ।

*

कौंकण देशकी उत्पत्ति कैसे हुई।

२१७) जहाँ समुद्र ही जिसकी परिखा (खाई) है ऐसे शतानन्दपुरमें महानद नामक राजा हुआ। उसकी रानीका नाम था मदनरेखा। अन्त पुर [में स्त्रियों] की प्रचुरता होनेसे राजा उसके प्रति विरक्त रहता था। इसलिये पतिको वशीभूत करनेकी इच्छासे वह नानाविध विदेशी जनों और कलाविदोंसे इस बारेमें पूछा करती। तव एक यथार्थवादी विश्वसनीय तान्त्रिकने उसे कुछ सिद्धयोग वताया। उसके प्रयोग करनेके अवसरपर उसे इस वाक्यका अनुस्मरण हो आया कि 'मत्रमूलके वलपर की हुई प्रीतिको पतिद्रोह कहते हैं'। तो उस योगचूर्णको समुद्रमें फेंक दिया। कहा है कि 'मत्र और औषधिका प्रभाव अचिन्त्य होता है'–इस लिये औषधके माहात्म्यसे वशीभूत हुआ समुद्र ही उसका वशवर्ती हो कर, मूर्तरूप (मनुष्यस्वरूप) बना कर उसके साथ रातमें आ कर रतिरमण करने लगा। इससे वह गर्भवती हो गई। तब उसके ऐसे चिन्होंको देख कर राजा कुपित हो कर उसे किसी प्रवास आदिका दण्ड देनेकी तदबीर सोचने लगा। इससे उसकी मृत्यु निकट समझ कर समुद्रदेव प्रत्यक्ष हुआ और अपना परिचय देते हुए बोला कि–' मैं समुद्रका अधिष्ठाता देव हूँ, इसलिये डरना मत '। फिर वह राजासे बोला–

२६०. शीलवती कुलीन कन्याको, विवाह करके, जो सम दृष्टिसे नहीं देखता, वह बड़ा भारी पापिष्ठ कहा गया है।

इसलिये इस स्त्रीकी अवज्ञा करनेवाले ऐसे तुझको मैं अन्त पुर और परिवारके साथ अगाध जलमें डुबो दूँगा '। यह सुन कर वह भयभ्रान्ता रानी उसका अनुनय करने लगी। इस पर समुद्रने यह कह कर कि– ' यह मेरा ही लड़का होगा और इसलिये मैं ही कहीं कहींका जल हटा कर इसे साम्राज्यके योग्य नई भूमि दूँगा '–ऐसा कह कर फिर उसने कहीं कहींसे जल हटा कर अतरीप (वेट) बना दिये जो लोगोंमें सब ' कौंकण ' नामसे प्रसिद्ध हुए।

इस प्रकार यह कौंकण प्रबंध समाप्त हुआ।

*

ज्योतिषी वराहमिहिरका प्रवन्ध।

२१८) पाटलीपुत्र नगरमें वराह नामक एक ब्राह्मणका लड़का था जो जन्मसे ही शकुन ज्ञानमें श्रद्धालु था। गरीब होनेके कारण पशु चरा कर अपना निर्वाह किये करता था। एक दिन [जगलमें] किसी एक पत्थर पर लग्न लिख कर उसे विना मिटाये ही घर लौट आया। यथासमय उचित कृत्य कर लेनेके बाद रातमें भोजन करनेको वैठा तो उस लग्नके विसर्जन न करनेका स्मरण हो आया। तब उसी समय निर्भय भावसे वहाँ गया तो देखा कि उसपर एक सिंह वैठा है। उसने इसकी भी परवा न की और उसके पेटके नीचे

हाथ डाल कर लग्न मिटाने लगा। तब इसके अनन्तर वह सिंहका रूप त्याग करके सूर्यरूपमें प्रत्यक्ष हुआ और कहने लगा 'वर माँगो'। तब उसने माँगा कि—'मुझे समस्त नक्षत्र ग्रह-मंडलको [प्रत्यक्ष] दिखा दो'। यह सुन सूर्य उसे अपने विमानपर चढ़ा कर ले गया और [सारा ग्रहचार बता कर] एक वर्ष बाद वहीं ले आ कर छोड़ गया। इस तरह वह ग्रहोंके वक्र, अतिचार, उदय, अस्त आदिकी प्रत्यक्ष परीक्षा करके पुनः अपने स्थानमे आया। मिहिर (सूर्य) का प्रसाद प्राप्त होनेसे व रा ह मि हि र इस नामसे प्रसिद्ध हो कर वह श्री न न्द नामक नृपतिका परम मान्य हुआ और उसने 'वा रा ही सं हि ता' नामक एक नया ज्योतिषशास्त्र बनाया।

२१९) एक वार, अपने पुत्र जन्मके अवसरपर, उसने अपने घरमें घटिका रख कर उससे जन्मकालका शुद्ध लग्न ले कर जातक ग्रंथके प्रमाणसे ज्योतिष (जन्मपत्र) बनाया। स्वयं प्रत्यक्ष किये हुए ग्रहचक्रके ज्ञानके बलपर उस पुत्रकी आयु एक सौ वर्षकी निर्णीत की। उस महोत्सवमें, श्री भ द्र बा हु नामक एक जैनाचार्य—जो उसके छोटे भाई थे—को छोड़ कर, राजासे ले कर रंक तक कोई ऐसा नहीं रहा था जो कुछ उपहार हाथमें ले कर उसके वहां नहीं गया हो। तब उस नैमित्तिकने जिनभक्त श क टा ल मंत्री के आगे, उन सूरिके न आनेके बारेमें उलाहनेके तौरपर कहा। तब उस मंत्रीने, उन महात्माको, जो संपूर्ण शास्त्रके ज्ञाता थे और त्रिकालके भावोंको हथेलीपर रखे हुए आँवलेके फलकी तरह जानते थे, यह बात कह सुनाई। तो उन्होंने कहा कि—'आजसे बीसवें दिन उस लड़केकी, बिल्लीके निमित्तसे, मृत्यु होगी इसलिये यह समझ कर हम नहीं आये'। उनकी यह उपदेश-वाणी व रा ह मि हि र से कही गई। तब उसने अपने कुटुंबको, उस बालककी भावी विपदसे आवश्यक रक्षा करनेके लिये कहा और बिल्लीसे बचा रखनेके लिये सौ सौ उपाय करने लगा। फिर भी निर्णीत दिनकी रातको उस बालकके सिरपर अर्गला (दरवाजेको बंद करनेके लिये लकडी या लोहेकी बनी हुई एक पट्टी) गिर जानेसे अचानक वह मर गया। फिर उस शोकशंकुसे उसका उद्धार करनेकी इच्छासे श्री भ द्र बा हु उसके घर आये। वहाँ उन्होंने देखा कि उसके घरके आँगनमें ज्योतिषकी सभी पुस्तकें इकट्ठी करके जलानेके लिये रखीं पड़ी हैं। तब उन्होंने पूछा कि 'यह क्या बात है?' तो उस सांवत्सर (ज्योतिषी) ने बड़े दुःखके साथ, उन जैनमुनिको उपालंभ देते हुए कहा—'ये पुस्तकें बड़े भारी मोहान्धकारको उत्पन्न करनेवाली हैं इसलिये अब निश्चय ही इन्हें जला दूँगा; क्यों कि इन्होने मुझे धोकेमें डाला है'। उसके ऐसा कहनेपर अपने शास्त्रज्ञानके बलसे बालकका जन्मलग्न ठीक तरह निकाल कर उन्होने सूक्ष्म दृष्टिसे उसका ग्रह-बल बताया तो वह बीस ही दिनका आया। इस प्रकार उसकी शास्त्रविरक्ति जब दूर की गई तो वह ज्योतिषी बोला कि '—आपने जो बिडालसे मृत्यु बताई वह तो ठीक नहीं साबीत हुई'। तब उन्होंने उस अर्गलाको वहाँ मँगवाई, जिसके गिरनेसे मृत्यु हुई थी, तो उसमें बिड़ालकी आकृति खुदी हुई पाई गई। 'क्या भवितव्यतामें भी कभी कुछ परिवर्तन हो सकता है?' ऐसे उस महर्षिने कहते हुए कहा कि—

२६१. किस बातके लिये रोया जाय? यह शरीर क्या चीज़ है? ये परमाणु तो अविनाशी हैं। यदि संस्थान-विशेषके लिये ही शोक करना है, तब तो कभी भी प्रसन्न ही नहीं होना चाहिये।

२६२. यह सब भाव (अस्तित्व) अभावोत्पन्न है और मायाके विभवसे संभावित है। इसका अंत भी अभाव ही मे संस्थित है। इस बातके ज्ञानसे सज्जनोंको भ्रम नहीं पैदा होता।

—इस प्रकारकी युक्तिपूर्वक उक्तिसे उसे समझा कर वे महर्षि अपने स्थानपर आये। इस तरह समझाये जाने-पर भी वह, मिथ्यात्व रूप धत्तूरके प्रभावसे सच्चे सुवर्णमें भ्रान्तिवाला हो कर, उनके प्रति द्वेषभाव धारण कर रहा। अतः [ईर्ष्यावश] अभिचार कर्मसे, उनके भक्तों और उपासकोंमेंसे किसीको कष्ट पहुंचाने लगा और

किसीको मारने लगा। अपने प्रौढ ज्ञानके द्वारा इन लोगोंका यह वृत्तान्त जान कर उन्होंने विघ्नकी शान्तिकेलिये '**उवसग्गहर पास**' इस नूतन स्तोत्रकी रचना की।

इस तरह यह वराहमिहिर-प्रबध समाप्त हुआ।

*

सिद्धयोगी नागार्जुनका वृत्तान्त।

२२०) ढ क नामक पर्वत पर रहनेवाले र ण सिं ह नामक राजपूतको एक भू प ल नामकी पुत्री थी जिसने अपने सौन्दर्यसे नागलोककी बालाओंको भी जीत लिया था। उसे देख कर वा सु कि नागका उस पर अनुराग हो गया। उसने उसके साथ समोग किया और उससे ना गा र्जु न नामक पुत्र पैदा हुआ। उस पा ता ल पा ल (नाग) ने पुत्रस्नेहसे मोहित हो कर उसे सभी औषधियोंके फल, मूल और पत्रोंका भक्षण कराया। इन औषधियोंके प्रभावसे वह महासिद्धियोंसे अलङ्कृत हुआ। सिद्धपुरुष होनेके कारण पृथ्वी-पर्यटन करता हुआ वह शा त वा ह न नृपतिके पास गया, जहाँ उसे राजाके कलागुरु होनेकी भारी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। तो भी वह गगन-गामिनी विद्याका अध्ययन करनेकेलिये श्री पा द लि प्ता चा र्य के पास पा द लि प्त पु र गया। निरभिमान हो कर उनकी सेवा करने लगा। भोजनके समय, पादलेपके द्वारा आकाशमें उड कर अष्टापद आदि तीर्थोंको नमस्कार करके वे आचार्य वापस आये, तो उनके चरण धो कर रस, वर्ण और गन्धकी परीक्षासे उसमें १०७ महौषधियोंका होना उसने जाना। बादमें गुरुकी आज्ञाकी परवा न करके उसने स्वय वैसा ही पादलेप किया। इससे मुर्गे और मोरकी नाईं कुछ कुछ उडता हुआ वह एक खड्डेमें गिर पडा और चोट लगनेसे उसका सारा शरीर जर्जरित हो गया। तब गुरुने पूछा कि 'यह क्या बात है?' तो फिर उसने वह सब वृत्तान्त यथावत् निवेदन किया। उसकी इस चतुरतासे चकित हो कर उसके सिरपर अपना करकमल रखते हुए उन्होंने कहा कि–'साठी चावलके पानीमें उन औषधोंको मिलाकर पादलेप करो और इस तरह आकाश गामी बनो'। इस तरह उनके अनुग्रहसे उसे वह सिद्धि प्राप्त हुई। उन्हींके मुहसे यह भी सुना कि श्री पा र्श्व ना थ की मूर्तिके सामने समस्त-स्त्रीलक्षणयुक्त पतिव्रताके हाथसे निमर्दित हो कर जो रस सिद्ध किया जाता है वह कोटिवेधी होता है। [उसने उस मूर्तिकी गवेषणा करते हुए जाना कि–] पूर्व कालमें स मु द्र वि ज य दशार्ह (यादव) ने त्रिकालवेदी श्री नेमिनाथके मुखसे सुन कर, महातिशायी श्री पार्श्वनाथका एक रत्नमय बिंब निर्माण करके द्वा रा व ती के प्रासादमें स्थापित किया था। द्वा रा व ती के जलनेके बाद, जबसे वह पुरी समुद्रमें डूब गई तबसे, वह बिंब समुद्रमें वैसे ही विद्यमान रहा। बादमें देवताके प्रभावसे ध न प ति नामक जहाजी व्यापारीका जहाज टकराया। 'यहाँ पर एक जिनबिंब है' ऐसी देवताकी वाणी सुन कर ध न प ति ने वहाँ नाविकोंको उसे निकालनेको कहा। उन्होंने सात कच्चे धागोंसे बाध कर उसे बाहर निकाला और उसके प्रभावसे चिन्तितसे भी अधिक लाभ प्राप्त हुआ जान, उसे अपनी नगरीमें ले आ कर अपने बनाये हुए प्रासादमें स्थापित किया। ना गा र्जु न ने उस सर्वातिशायी बिंबको, अपने सिद्धरसकी सिद्धिके लिये चुरा कर, से ढी न दी के किनारे ला कर रखा। उस बिंबके सामने, श्री शा त वा ह न राजाकी एक मात्र पत्नी च न्द्र ले खा को, सिद्धव्यन्तरके द्वारा उडवा कर रोज उससे रसमर्दन करवाता। इस प्रकार वहाँ बारबार आने-जानेके कारण उसके साथ घनिष्ठ बधुभाव पैदा हो गया। इससे उसने ना गा र्जु न से इस रस-मर्दनका हेतु पूछा। उसने भी अपनी कल्पनासे कोटिवेध रसका वह यथावत् वृत्तान्त कहा और वर्णनातीत रूपसे उसका सम्मान करके उसके प्रति अनन्यसामान्य सौजन्य बताया। इसके बाद एक दिन उसने अपने पुत्रोंसे यह वृत्तान्त कहा। वे दोनों इसके लोभी हो कर राज्य त्याग करके ना गा र्जु न द्वारा अलंकृत उस भूमिमें आ कर गुप्त वेश बना कर रहे। उस रसके ग्रहण करनेकी इच्छासे, जिसके वहाँ ना गा र्जु न भोजन किये करता था, उसे अर्थदान करके अपने

वशमें कर, उसकी वात पूछने लगे। वह भी इस वातके जाननेकी इच्छासे, नागार्जुनके लिये नमक ज्यादा दे कर रसोई बनाती। इस तरह ६ महीना वीत जानेपर रसोईमें खारापनका अनुभव करते हुए नागार्जुनने उसका दोष निकाला। तब उसने इशारेसे उन्हें सूचित किया कि अब रस सिद्ध हो गया है। भानजे बने हुए इन लड़कोंने उस रसको उड़ा लेनेकी लालसासे,–परम्परा द्वारा यह जान कर कि वासुकिने इसका मृत्यु कुशके शस्त्रसे होना बताया है, उसी शस्त्रसे उसे मार डाला। पर वह रस तो सुप्रतिष्ठ देवताधिष्ठित होनेके कारण तिरोहित हो गया। जहाँ वह रस स्तंभित किया गया था वहीं पर स्तंभनक नामक श्री पार्श्वनाथका तीर्थ प्रसिद्ध हुआ, जो रसको भी मात करनेवाला, सकल लोकका अभिलषित फलदाता है। वादमें कुछ कालके व्यतीत होनेपर वह मूर्ति, मुखमात्र जितने भागको छोड कर बाकी भूमिके अंदर दब गई।

स्तंभनक पार्श्वनाथका प्रादुर्भाव।

२२१) इसके अनन्तर, श्री अभयदेव सूरिने शासन देवताके आदेशसे, ६ महीनेतक माया रहित हो कर आचाम्लका व्रत करके, खड़िया (पट्टीपर लिखनेकी धोली मिट्टीकी डलिया) के प्रयोगसे जब नवाङ्ग वृत्तिकी रचना समाप्त की तो उनके शरीरमें भारी कुष्ठ रोग प्रादुर्भूत हो गया। तब पातालका पालक धरणेन्द्र नामक नागराज सफेद सर्पका रूप बना कर आया और उनके शरीरको जीभसे चाट कर उन्हें नीरोग किया। फिर श्रीमान् अभयदेव सूरिको उस तीर्थकी यात्राका उपदेश दिया। उन्होंने श्रीसंघके साथ वहाँ आ कर गोपाल बालकोंके द्वारा उस भूमिका पता लगाया, जहाँ एक गाय रोज दूधकी धारा छोड़े करती थी। वहाँ जा कर एक उत्तम ऐसे नये द्वात्रिंशतिका स्तवनकी रचना की। उसके ३३ वें पद्यकी रचना होनेपर श्री पार्श्वनाथका वह बिंब प्रकट हुआ। फिर देवताके कथनसे उन्होंने उस पद्यको गुप्त रखा।

२६३. जो स्वामी, अपने जन्मके चार सहस्र वर्ष पूर्व ही इंद्र, वासुदेव और वरुणके द्वारा अपने वास स्थानपर पूजे गये, इसके बाद कान्तीके धनिक धनेश्वर द्वारा तथा फिर महान् नागार्जुन द्वारा जिनकी पूजा की गई, वे स्तंभनकपुरमें स्थित श्री पार्श्वनाथ जिन तुम्हारी रक्षा करें।

इस प्रकार नागार्जुनकी उत्पत्ति तथा स्तंभनक तीर्थके अवतारका यह प्रबंध समाप्त हुआ।

*

कवि भर्तृहरिकी उत्पत्तिका वर्णन।

२२२) प्राचीन कालमें, अवन्तिपुरीमें कोई ब्राह्मण पाणिनि व्याकरणके अध्यापनका कार्य करता था। वह नियमसे नित्य सिप्रा नदीके तटपर स्थित चिन्तामणि गणेशको प्रणाम किये करता था। किसी समय विद्यार्थियोंने फक्किका-व्याख्यान आदिके प्रश्नोंसे उसे उद्विग्न कर दिया था, इसलिये वर्षाकालमें जब वह नदी भर कर बह रही थी तो वह उसमें कूद पड़ा। दैवयोगसे एक उखड़े हुए वृक्षका मूल उसके हाथमें आ गया जिसका सहारा पा कर वह तीरपर पहुँच गया। वहाँपर साक्षात् परशुरामको देख कर प्रणाम किया। वे उसके उत्साहके ऐसे अनुष्ठानसे प्रसन्न हो कर बोले कि 'इच्छा हो सो मांगो'। उसने पाणिनिके व्याकरणका संपूर्ण रहस्यज्ञान मांगा। उन्होंने उसका देना स्वीकार किया और उसे 'खडिया' प्रदान की। उससे उसने प्रतिदिन व्याकरणकी व्याख्या बनानी शुरू की जो छह महिनेके अंतमें समाप्त हुई। फिर शीघ्र ही गणेशकी अनुज्ञा ले कर, उस प्रथम आदर्शके साथ, वह पुरीमें प्रविष्ट हुआ। [रातको] नगरके किसी एक महोल्लेके चौकमें बैठा ही बैठा सो गया। तब सवेरे उसे वहाँ उस तरह पड़ा देख किसी एक वेश्याकी दासियोंने, वेश्यासे उसका हाल कहा। उसने उन्हींसे उसे मँगवा कर अपने हिंडोलेकी खाटपर रखवाया। तीन दिन और रातके बाद जब उसकी नींद कुछ कुछ खुली तो उस चित्रशालाकी आश्चर्यजनक चित्रकारीको देख कर वह अपनेको स्वर्गलोकमें उत्पन्न हुआ समझा। तब उस

वेश्याने सब वृन्तान्त कहा और स्नान-पान-भोजन आदिसे उसे सन्तुष्ट किया। फिर वह राजसभामें गया। वहां पर पाणिनि व्याकरणकी यथास्थित व्याख्या कर बतानेपर राजा तथा अन्य पंडितोंने उसका बड़ा सत्कार किया। वहाँ जो कुछ पुरस्कार रूपमें उसे मिला वह सब उसने उस वेश्याको समर्पण कर दिया।

२२३) फिर उसके क्रमशः चारों वर्णोंकी चार स्त्रियाँ हुईं। इनमेंसे क्षत्रियाणीके गर्भसे विक्रमादित्य तथा शूद्राके गर्भसे भर्तृहरि पुत्र हुआ। हीनजातिका होनेके कारण भर्तृहरिको रज्जुके संकेतसे भूमिगृहमें बैठा कर गुप्त वृत्तिसे पढ़ाया जाता था। अन्य तीनों लड़कोंको प्रत्यक्ष (पासमें बैठा कर) पढ़ाया जाता था। उन्हें इस तरह पढाते हुए—

२६४ दान भोग और नाश—द्रव्यकी ये तीन गति हैं। [और जो न देता है न भोग करता है उसके द्रव्यकी तीसरी ही गति (नाश) होती है।]

यह जब पढ़ाया गया तो भर्तृहरिने रज्जुका संकेत नहीं किया और उन तीनों प्रत्यक्ष छात्रोंने आगेके उत्तरार्धका पाठ पूछा। तब कुपित होकर उस उपाध्यायने कहा—'अरे वेश्यापुत्र, अभी तक रस्सीको क्यों नहीं हिलाता?' तब वह प्रत्यक्ष आ कर क्रुद्ध कर शास्त्रकी निंदा करता हुआ कहने लगा—

२६५ सौ सौ प्रयास करके प्राप्त किये हुए और प्राणोंसे भी अधिक मूल्यवान् ऐसे धनकी एक दान ही गति हो सकती है। अन्य तो [गति नहीं] विपत्ति है।

इस पाठसे [उन सबने] वित्तकी फिर एक ही गति मानी। उस भर्तृहरिने वैराग्यशतक आदि अनेक प्रबंध बनाये।

इस प्रकार भर्तृहरिकी उत्पत्तिका यह प्रबंध समाप्त हुआ।

*

वाग्भट वैद्यका प्रबंध।

२२४) धारानगरीमें, मालवमण्डलके भूषणरूप श्री भोजराजका एक आयुर्वेदज्ञ वैद्य वाग्भट नामक था। उसने आयुर्वेदोक्त कुपथ्य करके, उसके प्रभावसे पहले रोग उत्पन्न किया और फिर सुश्रुत कथित पथ्य औषधोंसे उसका निग्रह किया। पानीके बिना कितने समय तक जिया जा सकता है इस बातकी परीक्षाके लिये जल छोड़ दिया। तीन दिनके बाद प्याससे तालु और ओठ सूख गये। तब उसने इस प्रकार कहा—

२६६ कहीं गर्म, कहीं ठंडा, कहीं गर्म करके ठंडा किया हुआ और कहीं औषधके साथ [इस प्रकार पानी सब हालतमें दिया जाता है] पानी कहीं भी मना नहीं किया गया है।

इस प्रकार पानीके सत्कारका उसने यह वाक्य पढ़ा। उसने अपना अनुभूत 'वाग्भट' नामक ग्रंथ बनाया। उसका जामाता जो लघु वाहड कहलाता था वह भी एक समय, अपने श्वसुर ऐसे उस वृद्ध वाहडके साथ राजमंदिरमें गया। सवेरे ही श्री भोजराजके शरीरकी देख भाल कर वृद्ध वाहड (वाग्भट) ने कहा कि—'आज आपका शरीर नीरोग है'। तो यह सुन कर लघु वाहडने मुह मरोडा। तब श्री भोजके उसका कारण पूछनेपर उसने कहा कि—'आज स्वामीके शरीरमें, रात्रिके शेषमें राजयक्ष्माका प्रवेश हुआ है, जो कृष्णच्छायासे सूचित होता है'। इस प्रकार देवताके आदेशसे अतीन्द्रिय भाव बतला देनेके कारण राजा उसके कला-कलापसे चमत्कृत हुआ और व्याधिका उससे प्रतीकार पूछा। तब उसने तीन लाखके मूल्यसे बननेवाले रसायनका प्रयोग बताया। ६ महीनेके बाद उतना द्रव्य व्यय करके वह रसायन सिद्ध किया गया और सायंकाल काचकी कुप्पीमें भर कर उस रसायनको राजाके बिस्तरके पास रख दिया। सवेरे देवतार्चनके बाद राजाने जब यह रसायन खाना चाहा तो उस रसायनकी पूजा-पुरस्कार आदि सब सामग्री तैयार की गई।

जिनपूजाका माहात्म्य ।

२३०) प्राचीन कालमें, शंखपुर नामक नगरमें शंख नामका राजा था। वहाँ पर, नाम और कर्म दोनोंहीसे 'धनद' (धन देने वाला) नामका एक सेठ था । उसने एक वार सोचा कि लक्ष्मी हाथीके समान चंचल है, अतः वह हाथमें उपहार ले कर राजाके पास आया और उसे संतुष्ट किया । राजाकी दी हुई भूमिमें, अपने चार पुत्रोंके साथ सलाह करके, शुभलग्नमें उसने एक जिनमंदिर वनवाया। उसमें, प्रतिष्ठित बिंबोंकी स्थापना करके उस प्रासादके व्यय-निर्वाहके लिये आमदनीके अनेक मद कायम किये। उसकी पूजाके लिये अनेक पुष्प, वृक्ष, लता आदिसे अलंकृत एक सुंदर वागीचा वनवा दिया और उसके कार्यचिन्तक गोष्ठिक नियुक्त किये । इसके अनन्तर, पूर्वकृत दुष्कर्मके फलके उदयसे क्रमशः उसकी लक्ष्मी घट गई और वह कर्ज़दार हो गया । मान-प्रतिष्ठाके म्लान हो जानेके कारण वह किसी गाँवमें जा कर रहने लगा । नगरमें जा-आ कर लड़के जो कुछ पैदा करते उसीपर गुज़र करता हुआ वह काल व्यतीत करने लगा । एक वार, जब चातुर्मासिक पर्व निकट आया तो वहाँ जानेवाले पुत्रोंके साथ वह धनद भी शंखपुर पहुँचा । वहाँ अपने वनाये हुए प्रासादकी सीढ़ियों पर चढते, उसके उद्यानकी पुष्प चुननेवाली (मालिन) ने उसे फूलोंकी डाली भेंट की । परमानंद निर्भर हो कर उसीसे उसने जिनेंद्रकी पूजा की । रातमें गुरुके सामने अपनी दुरवस्थाकी बड़ी निंदा करने लगा । तब उन्होंने उसे कपर्दी यक्षका आराधन करनेके लिये मंत्र दिया । फिर एक कृष्ण चतुर्दशीकी रातको उस मंत्रकी आराधना करके कपर्दी यक्षको प्रत्यक्ष किया । गुरुके उपदेशानुसार उससे, चातुर्मासिक दिनके अवसर पर जो पुष्प-चतुःसरिका (फूलकी चौसरी लड़ी) से जिनेशकी पूजा की थी उसके पुण्यफलकी याचना की । उसने कहा कि–'एक फूलकी पूजाका पुण्यफल भी, विना सर्वज्ञके, मैं देनेमें असमर्थ हूं '। फिर भी उस कपर्दी यक्षने, उस साधर्मिकके प्रति अतुल्य वात्सल्यभाव धारण करके, उसके घरके चारों कोनोंमें, सुवर्णपूर्ण चार कलश निधिरूपमें रख दिये, और वह तिरोहित हो गया । प्रातःकाल वह अपने घर आया और धर्मकी निंदा करनेवाले उन पुत्रोंको वह धन समर्पण किया । वे भी आग्रहके साथ पितासे उस धनलाभका कारण पूछने लगे । इसपर, उनके हृदयमें धर्मके प्रभावका आविर्भाव करनेके लिये, जिनपूजाके प्रभावसे संतुष्ट हुए कपर्दी यक्ष द्वारा, इस संपत्तिके प्राप्त होनेकी वात कह सुनाई । वे भी सम्पत्ति पा कर फिर उसी जन्मस्थानमें जा कर रहे और अपने धर्मस्थानोंका व्ययनिर्वाह करने लगे । फिर विविध भाँति जिन शासनकी प्रभावना करते हुए वे विधर्मियोंके मनोंमें भी जैन धर्मके प्रभावको स्थापित करते रहे ।

इस प्रकार जिनपूजा संबंधी यह धनदका प्रबंध समाप्त हुआ ।

*

श्री मेरुतुंगाचार्य विरचित प्रबंधचिन्तामणिमें,
विक्रमादित्यके कहे हुए पात्रविवेचनसे ले कर जिनपूजासंबंधी धनदके प्रबंध तकका वर्णनवाला,
यह प्रकीर्ण नामक पाँचवाँ प्रकाश समर्थित हुआ ।

[इस प्रकाशकी ग्रंथसंख्या ७७४ है । समग्र ग्रंथकी श्लोक संख्या ३१५० है]

———*———

ग्रन्थकारकी प्रशस्ति।

बहुश्रुत और गुणवान् ऐसे वृद्ध जनोंकी प्राप्ति प्राय दुर्लभ हो रही है और शिष्योंमें भी प्रतिभाका वैसा योग न होनेसे शास्त्र प्राय नष्ट हो रहे हैं। इस कारणसे, तथा भावी बुद्धिमानोंको उपकारक हो ऐसी परम इच्छासे, सुधासत्रके जैसा, सत्पुरुषोंके प्रबन्धोंका संघटनरूप यह ग्रन्थ मैंने बनाया है ॥ १ ॥

यह, प्रबन्धसंग्रहका चिन्तामणि, चिरकाल तक हाथपर रहनेसे स्यमन्तक मणिका भ्रम पैदा करता है और हृदयमें स्थापन करनेपर प्रशंसनीय ऐसे विमल कौस्तुभ मणिकी कलाका सृजन करता है। सो इस ग्रन्थके अध्ययनसे विद्वान् लोग श्रीपति (विष्णु) की नाईं शोभित होते हैं ॥ २ ॥

मन्दबुद्धि हो कर भी, मैंने जैसा सुना वैसा ही, प्रबन्धोंका संकलन करके यह ग्रन्थ बनाया है। पण्डित लोग मत्सरताका त्याग करके, अपनी प्रज्ञाके उन्मेषसे इसकी उन्नति ही करें ॥ ३ ॥

ग्रहों रूपी कौड़ियोंसे जब तक द्युलोकमें सूर्य और चन्द्रमा, जुआड़ीकी तरह क्रीड़ा करते रहें तब तक आचार्यों द्वारा उपदिष्ट होता हुआ यह ग्रन्थ विद्यमान रहो ॥ ४ ॥

विक्रमादित्य संवत्के १३६१ वर्ष बीतनेपर, वैशाख मासकी पूर्णिमाके दिन यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

[गद्यमें फिर यही कथन] राजा श्री विक्रमके समयसे १३६१ वर्ष बीतनेपर वैशाख सुदि १५ रवि वारको, आज यहाँ श्री वर्द्धमान (काठियावाडके आधुनिक वढवान नगर) में यह प्रबन्धचिंतामणि ग्रन्थ समाप्त किया गया।

परिशिष्ट

कुमारपाल राजाका अहिंसाके साथ विवाह-संबन्धका रूपकात्मक प्रबन्ध*

श्रीमान् हेमचन्द्रके समान तो गुरु और श्रीमान् कुमारपालके समान जिनभक्त राजा न तो हुआ और न [अब कभी] होगा ॥ १ ॥

प्रभु श्री हेमाचार्यके पास ज्ञान-दान प्राप्त करके उसके पश्चात् श्री चौलुक्यचक्रवर्ती कुमारपालने जो हिंसाका निवारण किया था उसका [रूपकात्मक] प्रबन्ध इस प्रकार है—एक अवसर पर, अणहिल्लपुरमें, श्री कुमारपाल नामक राजाने, घुड़दौड़की क्रीड़ा करनेके लिये जाते समय, एक ऐसी बालिकाको देखा जिसने अपने सौंदर्यसे सुरसुन्दरियोंको भी मात कर दिया था और जिसका मुख बाल-चन्द्रमाके समान मनोहर था। यद्यपि वह

* टिप्पणी—यह परिशिष्टात्मक प्रबंध, इस ग्रन्थकी बहुसंख्यक पोथियोंमें लिखा हुआ मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार मेरुतुङ्ग सूरिने ही इसकी रचना की है-पर ऐतिहासिक न हो कर यह एक रूपकात्मक प्रबंध है इसलिये इसको परिशिष्टके रूपमें ग्रन्थके अन्तमें जोड़ दिया मालूम देता है। कुमारपालने अपने धर्मगुरु आचार्य हेमचन्द्रसूरिके पास जैनधर्मकी गृहस्थ दीक्षा (श्रावकधर्मव्रत) स्वीकार करते समय, सबसे पहले जब अहिंसा व्रतका स्वीकार किया, उस समयको लक्ष्य करके इस रूपकात्मक प्रबंधका प्रणयन किया गया है। इसमें अहिंसाको एक राजकन्या बनाई है जो आचार्य हेमचन्द्रके आश्रममें पलकर बड़ी उम्रवाली—वृद्धकुमारी हो गई है। अन्यान्य राजाओंके अधार्मिक आचरण देख कर वह किसीके साथ विवाह करना नहीं चाहती, किन्तु, कुमारपाल जो आचार्य हेमचन्द्रका शिष्य बना है उसके धर्मभावसे मुग्ध हो कर, आचार्यके आदेशसे वह उसका पाणिग्रहण कर लेती है—बस यही इस प्रबंधका तात्पर्य है।

सदाचार-प्रसरण-शीला थी फिर भी धीमी चालसे चलनेवाली थी। वह मुनियोंके साथ क्रीडा किया करती थी। अपनी सुकोमल वाणीके प्रपञ्चसे उसने त्रैलोक्यको चमत्कृत कर दिया था, और उसकी आकृति मन्द मुसकानसे खूब मधुर हो रही थी। इस बालिकाको देख कर उसके रूपसे हृत-चित्त हो कर राजाने किसी निकटस्थ प्रसन्नचित्त (साधुजन) से पूंछा कि–'भला यह लड़की कौन है?' उसने कहा कि–'अपार ऐसे शास्त्र-सागरके पारको देख लेनेके कारण जिन्होंने 'कलिकाल सर्वज्ञ'की प्रसिद्धि प्राप्त की है; द्वादश भेदोंवाली तपस्याकी आराधनाके द्वारा, अष्ट महासिद्धियोंको जिन्होंने वशमें कर लिया है; समग्र भूपालोंके शिरःप्रदेशकी मणियोंने जिनके चरणोंका चुंबन किया है; उन्हीं महर्षि भगवान् आचार्य श्री हेमचंद्रके आश्रममें रहनेवाली यह अहिंसा नामक कन्या है। इसके यथार्थ रूपका निरूपण करनेमें स्मृति और पुराणके वचन तो पर्याप्त नहीं है; किन्तु समस्त जंतुओंके पितृ-स्वरूप श्री जिनेन्द्र देवके उपदिष्ट स्पष्ट सिद्धान्तों और उपनिषदों द्वारा आवासित हृदयवाले किसी मुनिश्रेष्ठने इसकी स्थितिकी रीतिका पूरा निरूपण किया है–अन्य किसीने वैसा नहीं किया। यह वचन सुन कर राजा अपने आवासमें लौट आया। पर उस कन्याका स्वरूप जान कर, उसका अंगीकार करनेके लिये परम उत्सुक वह राजा, उसके पाणिग्रहणके द्वारा अपनी भाग्य-सम्पद आदिको कृतार्थ करनेकी कामनासे, अपने 'विवेक' नामक परम मित्रके बताये हुए मार्गसे उन मुनियोंके आश्रममें जा पहुंचा। उस कन्याके सामने उसीका 'सदाचार' नामक भाई खेल रहा था। उसीने जा कर सम-चित्तवृत्तिवाले महर्षि श्री हेमचंद्र सूरिको राजाके आगमनका वृत्तान्त बतलाया। राजाने पृथ्वीतलपर मस्तक टेक कर, उन्हें भक्ति और हर्षके साथ, प्रणाम किया और फिर उस कन्याका स्वरूप पूंछा। इस पर वे बोले–'हे नरपुंगव! सुनो, त्रैलोक्यके एकमात्र सम्राट् श्री **अर्हद्धर्म**की पट्ट महादेवी श्रीमती **अनुकंपा** देवीके कुक्षि-सरोवरकी राजहंसी जैसी, निःसीम सुन्दरी यह '**अहिंसा**' नामक कन्या है। जिस लग्नमें यह कन्या पैदा हुई थी उस लग्नके ग्रहबलको इसके सर्वज्ञ पिताने इस प्रकार निर्दिष्ट किया था–'यह अतीव पुण्यवती, सुदतियोंकी शिरोमणि कन्या है। पुत्रजन्मोत्सवसे भी अधिक प्रशंसनीय इसका जन्म है। क्यों कि–

> लक्ष्मी [रूप कन्यासे] समुद्रको और वाग्देवी [रूप कन्यासे] ब्रह्माको विश्रुत देख कर, कुपुत्रके दुःखसे
> सूर्य और चन्द्रमा ताप और कलंकका त्याग नहीं करते हैं॥ २॥

इस लिये क्रमशः बढ़ती हुई यह कन्या अपने अनुरूप वर न पानेके कारण वृद्ध-कुमारी हो जाने पर किसी अनुरूप राजासे साग्रह विवाहित होगी। इस प्रकार सतियोंमें श्रेष्ठ यह कन्या अपने पति और पिता दोनोंको उन्नतिकी पराकाष्ठापर पहुँचा देगी। और इससे विवाह करनेवाला वह पुरुष भी खेलहीमें महा-मोह नामक राजाको जीत कर परमानन्दका भाजन बनेगा।' यह सुन कर राजा बोला–'प्रभो! यह **अर्हद्धर्म**की पुत्री इस समय आपके ही चरण कमलोंकी उपासना करती है, अतः इसका विवाह आपहीके कहनेसे होगा, अन्य किसीसे नहीं। सो पूज्य-पाद मुझपर प्रसन्न हों, विषादगण विषण्ण हो, महामोहका विजय करना प्रारंभ हो, और [उससे] मैं परमानन्द प्राप्त करूं।' उसके इस कथनके बाद गुरु बोले–'यह वृद्धा कुमारी है, इसका संकल्प दुष्पूरणीय है। वह संकल्प इसीके मुँहसे सुन कर विवाह करना चाहिये, अन्यथा नहीं।' इस प्रकार उनकी अमृतकी जैसी वह वाणी सुन कर, उसने कन्याके पास सुबुद्धि नामक दासी भेज कर उसे बुलवाया। वह दासी उस कन्याके पास जा कर भक्ति-पूर्वक प्रणाम करके बोली–'स्वामिनि, राजकन्ये, [आज] तुम धन्यतमा हो, जो तुम्हें, अठारह देशोंके सम्राट्, और समस्त सामन्तोंके मस्तक-मणियोंकी किरण-मालासे जिनका चरण अलंकृत है वह चौलुक्य-चक्रवर्ती तुम्हारे साथ विवाह करना चाहते है।' उसकी इस बातसे कुछ मुँह बना कर, उपहासके उल्लासके साथ, उसने कहा–'सखि, जिस महान् साम्राज्यका अन्त नरक है उसके लोभकी बातका विस्तार

करना रहने दे। मैं तो अनुकूल प्रेमीको चाहती हूँ। पुरुष प्राय परुष आशयवाले, और नाना प्रकारके अनुरागवाले होते हैं, उनसे मेरा क्या काम है। क्यों कि–

रूप यौवन सम्पन्ना कन्याका अविवाहित भी रहना वरन् अच्छा है, किन्तु कलाहीन, अननुकूल, कु-पतिसे विडंबित होना [अच्छा] नहीं ॥ ३ ॥

पर सुनो,–अगर दरिद्र हो कर भी पति जो प्रियकारी हो तो उससे विवाहित स्त्रीको जैसा सुख होता है वैसा सुख ईश्वर (बड़े धनसपन्न) से भी नहीं प्राप्त होता। [देखो न] भागीरथी (गगा) को शिव तो शिरपर धारण करते हैं, पर लक्ष्मीके पति (विष्णु) उसे पैरसे भी नहीं छूते।

सो मुझे वरण करनेकी अभिलाषा तो वृथा ही समझो। क्यों कि मेरी प्रतिज्ञाका किसी महाराजासे भी पूरा होना कठिन है।' ऐसा कहनेवाली उस युवतीसे वह (दासी) बोली–'सखि ! मैं तुम्हारी प्रियकारिणी सखी हूँ, कुछ अपलाप तो करनेकी नहीं, सो तुम अपना अभिमत मुझे स्पष्ट कह बताओ। मेरा भी नाम सुबुद्धि है, मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा उस कुमारपाल राजासे पूरी कराऊगी।' ऐसा कहनेपर वह बोली–

सत्यवक्ता, परलक्ष्मीका त्यागी, समस्त जीवोंको अभय-दाता, और सदा अपनी ही स्त्रीसे सतुष्ट, [ऐसा जो पुरुष होगा] वही मेरा पति होगा ॥ ५ ॥

दुर्गतिके बधु जैसे दूत स्वभाववाले सात पुरुषों (अर्थात्, सात व्यसनों) को जो अपने चित्तसे दूर निकाल फेंक देगा वही मेरा पति होगा ॥ ६ ॥

मेरे सहोदर भाई सदाचारको अपने हृदयासनपर बैठा कर एक चित्तसे जो उसकी सेवा करेगा वही मेरा पति होगा ॥ ७ ॥

उसकी इस बातको सुन कर वह बोली–' ऐ सुलोचने ! सुनो, मैं यथार्थनामा (सुबुद्धि) तब हूँगी जब तुम्हारी प्रतिज्ञाको पूरा करनेके लिये, श्री हेमसूरिको आगे कर, समस्त लोकके सामने, तुम्हारे इन प्रतिज्ञात अर्थोंका समर्थन करा कर, तुम्हें परिणीत कराऊँगी। और तभी, तुम मुझे अपनी चतुर सखी मानना, नहीं तो तिनकेसे भी गयी बीति समझना।' यह कह कर, फिर राजाकी सभामें जा कर उसने उसकी वह कठिन प्रतिज्ञा कह सुनाई। उसकी इस अवज्ञाभरी प्रतिज्ञाके कठोर भारसे हृदयमें सन्तप्त हो कर राजा बड़ी बेचैनी धारण करने लगा। तब सुबुद्धिने कहा–'हे श्रीनिधे ! धीरज धरो, पौरुष-शालियोंको दुष्कर क्या है? और इस बाधाके दूर करनेके उपाय भी तो हैं। महर्षि हेमचन्द्रका अनुसरण करो और उनका उपदेश सुनो।' इस प्रकार उसकी बात सुन कर विनयका सहारा पा कर वह राजा सूरिके पास गया। उनके पद-पद्मोंमें प्रणाम कर उनको कन्याकी उस प्रतिज्ञाका वृत्तान्त कहा। [सूरि बोले–] 'बस ! यदि परिणयनकी चाह है तो फिर उसकी प्रतिज्ञा पूरी करो। यह कन्या अपने पतिकी निःसीम उन्नतिके लिये होगी। क्यों कि–

उत्तम वंशोत्पन्न, धन्य और गुणाधिका सती कन्यासे विवाह करके कौन प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त करता? लक्ष्मी और पार्वतीके साथ विवाह कर गोप (कृष्ण) और उग्र (शिव) ने जिस तरह [प्रतिष्ठा] पाई थी। ॥ ८ ॥

उनकी यह बात सुन कर, दुरित समूहको दूर कर देनेवाली ऐसी हस्ताञ्जली किये हुए उस राजाने, अनेक प्रकारके अभिग्रह धारण करके, उस कन्याका वाग्दान प्राप्त किया और वह बड़ा प्रमुदित हुआ। स० १२१६ मार्गशीर्ष सुदि द्वितीयाको, बलवान् लग्नमें, संवेग नामक हाथीपर आरूढ हो, रत्नत्रयसे अलङ्कृत, शुभमनरूप वस्त्र धारण करके, दक्षिण हस्तमें कंकण बाँध कर, वह [हेमसूरिकी] पौषधशालाके द्वारपर आया। उस समय श्वेतच्छत्र द्वारा उसका आतप निवारण किया जा रहा था, श्रद्धा नामक बहन उसकी लवण-आरती उतार रही थी,

गुरुभक्ति, देशविरति, समिति, गुप्ति आदि सखियाँ वरातिन वन कर मंगल गान कर रहीं थीं; अमारि-घोषणाके पटह वज रहे थे; परिग्रह-परिमाणरूप व्रतके मिषसे याचक जनोंको यथेष्ट दान दिया जा रहा था; पापरूप कचरेको दूर हठाया जा रहा था; सद्बोध पुष्पोंसे सन्न्यायकी राजवीथियाँ सुगंधित की जा रहीं थीं; तत्र कन्याकी माँ अनुकंपा महादेवी ने श्री अर्हन् के साक्षी रहते प्रोक्षण किया। इस प्रकार उस राजाने अहिंसाका पाणिग्रहण किया। उस समय, तारामेलक पर्वमें परमानन्द हुआ। इसके वाद, नवांगवेदी महोत्सवके स्थानमें, ३६ हजार श्लोक ग्रन्थपरिमाण, हेमसूरिकृत **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** नामक शास्त्र स्थापित किया गया। वेदीके पात्र-स्थापन और पाँच कपर्दक (कोडियों) के स्थापनकी जगह; वीस-संख्यक **वीतरागस्तव** स्थापित किये गये। शमी काष्ठके स्थानपर द्वादश प्रकाशात्मक **योगशास्त्र** ग्रन्थ स्थापित किया गया। उसके परिकरके रूपमें, हेमसूरिके अन्यान्य लक्षण, साहित्य, तर्क और इतिहास प्रमुख शास्त्रोंकी रचना हुई। मूलगुण और उत्तर गुणोंसे इस वेदिकाको दृढ करके, उसमें ज्ञानरूप अग्नि जलाई गई, और 'चत्तारिमंगल' रूप इस मांगलिक सूत्रके उच्चारणसे मंगल किया गया। उस समय उस कन्याके मुखमण्डनके लिये, राजाने ७२ लाख रुपयोंकी आमदनीवाला **'रुदती कर'** (अर्थात् निःसन्तान विधवा स्त्रियोंके राज्यग्राह्य धन) का त्याग करने रूप दान किया। उसी समय उसका पट्टबन्ध किया गया (—उसे पट्ट महादेवी वनाया गया), और उसके पिताके निवास-योग्य १४४४ विहार वनवाये गये। फिर हिंसा (जो राजाकी पूर्वपत्नी थी) अपनी सौत अहिंसाकी इस प्रकारकी उन्नतिको देख कर, अपना पराभव निवेदन करनेके लिये, अपने पिता विधाताके पास गई। वहुत दिन वाद देखनेके कारण तथा पराभवके दुःखसे विरूपसी वनी हुई उसको न पहचान, पिताने उससे पूंछा कि—

'सुंदरी! तुम कौन हो?'—'हे तात विधाता! मैं तुम्हारी प्रिय पुत्री हिंसा हूं!'—'तूं ऐसी दीनकी तरह क्यों है?'—'पराभवके कारण।'—'वह (पराभव) किससे हुआ?'—'क्या वताऊं! 'कहो न'—'हेमाचार्यके कहनेसे, उस परम गुणवान् कुमारपाल नृपतिने मुझे अपने हृदय, मुंह, हाथ और उदरसे उतार कर, पृथ्वीतलसे निकाल दिया ॥ ९ ॥

उसकी यह वात सुन कर ब्रह्मा वोले कि—'सत्यप्रतिज्ञ ऐसा कुमारपाल देव जो पहले तुझमें अनुरक्त हो कर भी, उस भेषधारी साधुके कथनको सुन कर, अव विरक्त हो गया है; तो फिर मैं अव तेरे लिये कोई ऐसा अच्छा पति ढूंढ निकालूँगा जो तेरा ही एकच्छत्र राज्य कर देगा। इसलिये तुम धीर धरो'—यह कह कर उसे अपने समीप रखा। अहिंसा देवीके साथ श्री कुमारपाल नृपति अपने इस जीवन-ही-में अतुलित महानन्दका अनुभव करता हुआ, चौदह वर्ष तक, सुख पूर्वक राज्य करता रहा। इसके वाद उसकी एक पहली प्रिया जो कीर्ति थी उसको देशान्तरमें पठा कर, जव उसने स्वर्गको अलंकृत किया, तो उसी समय उसके प्रेमकी प्रसादपूर्ण क्रीड़ाओंका स्मरण करती हुई वह अहिंसा देवी भी, कलिमलिन जनोंके पापस्पर्शका परिहार करनेकी इच्छासे, उसके साथ 'सहगमन' कर गई।

इस प्रकार श्री कुमारपालका अहिंसाके साथ विवाह-संवन्ध वतानेवाला यह परिशिष्टात्मक प्रवन्ध समाप्त हुआ।

———:o:———